VIDYA UNIVERSITY PRESS

TOUCH n PASS

सर्वश्रेष्ठ परीक्षा पथ-प्रदर्शक

B.A.
प्रथम वर्ष
(सर्टिफिकेट कोर्स)
सेमेस्टर-I

अर्थशास्त्र

सूक्ष्म अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

SYLLABUS

UNIT-I **Introduction :** Problem of scarcity and choice: scarcity, choice and opportunity cost; production possibility frontier; economic system. Demand and supply; law of demand, determinants of demand, shifts of demand versus movements along a demand curve, market demand, law of supply, determinants of supply, shifts of supply versus movements along a supply curve, market supply, market equilibrium. Applications of demand and supply: consumer surplus, producer surplus. Elasticity : price elasticity of demand, calculating elasticity, determinants of price elasticity, other elasticities.

UNIT-II **Consumer Theory :** Budget constraint, concept of utility, diminishing marginal utility, Diamond-water paradox, income and substitution effects; consumer choice: indifference curves, derivative of demand curve from indifference curve and budget constraint. Theory of Revealed Preference.

UNIT-III **Production and Costs:** (a) Production : behaviour of profit maximizing firms, production process, production functions, law of variable proportions, choice of technology, isoquant and isocost lines, cost minimizing equilibrium condition. (b) Costs : costs in the short run, costs in the long run, revenue and profit maximizations, minimizing losses, short run industry supply curve, economies and diseconomies of scale, long run adjustments.

UNIT-IV **Market Structures :** (a) Perfect Competition : a. Assumptions : theory of a firm under perfect competition, demand and revenue; equilibrium of the firm in the short run and long run; long run industry supply curve: increasing, decreasing and constant cost industries.
(b) Imperfect Competition : Monopolistic competition: Assumptions, SR & LR price and output determinations under monopolistic competition, economic efficiency and resource allocation; oligopoly: assumptions, oligopoly models, game theory, role of government.

UNIT-V **Theory of a Monopoly Firm :** Concept of imperfect competition; short run and long run price and output decisions of a monopoly firm; concept of a supply curve under monopoly; comparison of perfect competition and monopoly social cost of monopoly, price discrimination; remedies for monopoly: Antitrust law, natural monopoly.

UNIT-VI **Consumer and Producer Theory :** (a) Consumer and Producer Theory in Action: Externalities, marginal cost pricing, internalising externalities, public goods; imperfect information: adverse selection, moral hazard, social choice, government inefficiency. (b) Markets and Market Failure: Market adjustment to changes in demand, efficiency of perfect competition; sources of market failure: imperfect markets, public goods, externalities, imperfect information; evaluating the market mechanism.

UNIT-VII **Income Distribution and Factor pricing :** Input markets: demand for inputs; labour markets, land markets, profit maximisation condition in input markets, input demand curves, distribution of Income.

UNIT-VIII **Welfare Economics :** Concept & Definition of Welfare Economics; Normative & Positive Economics. Concepts of Social Welfare. Role of Value Judgement in Welfare Economics, Individual & Social Welfare. Pareto Optimality, Conditions of Pareto Optimality. New Welfare Economics: Kaldor-Hicks Welfare Criterion. Scitovsky Paradox & Scitovsky's Double Criterion. Grand Utility Possibility Frontier. Social Welfare Function.

VIDYA®
UNIVERSITY PRESS

पंजीकृत कार्यालय
विद्या लोक, टी०पी० नगर, बागपत रोड,
मेरठ, उत्तर प्रदेश (NCR) 250 002
फोन : 0121-2513177, 2513277
www.vidyauniversitypress.com

© प्रकाशक

सम्पादन एवं लेखन
शोध एवं अनुसन्धान प्रकोष्ठ

मुद्रक
विद्या यूनिवर्सिटी प्रेस

TOUCH n' PASS

विषय-सूची

UNIT-I : परिचय : दुर्लभता एवं चयन की समस्या ...3
UNIT-II : उपभोक्ता सिद्धान्त ...45
UNIT-III : उत्पादन एवं कीमत ...67
UNIT-IV : बाजार संरचना : पूर्ण एवं अपूर्ण प्रतियोगिता ...95
UNIT-V : एकाधिकारी फर्म का सिद्धान्त ...118
UNIT-VI : उपभोक्ता एवं उत्पादक सिद्धान्त ...130
UNIT-VII : आय वितरण एवं साधन कीमत ...147
UNIT-VIII : कल्याणकारी एवं नवकल्याणकारी अर्थशास्त्र ...161
मॉडल पेपर ...176

UNIT-I

परिचय : दुर्लभता एवं चयन की समस्या

Introduction : Problem of Scarcity and Choice

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. रॉबिन्स द्वारा 'अर्थशास्त्र में दुर्लभता की अवधारणा' के विषय में दी गई परिभाषा लिखिए।

Write Robins' definition regarding the 'Concept of Scarcity in Economics'.

उत्तर अर्थशास्त्र में दुर्लभता की अवधारणा के विषय में रॉबिन्स द्वारा दी गई परिभाषानुसार, "अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो लक्ष्यों तथा विकल्पात्मक प्रयोग वाले दुर्लभ साधनों के बीच सम्बन्धात्मक रूप से मानव व्यवहार का अध्ययन करता है।"

प्र.2. चयन की समस्या से आप क्या समझते हैं? यह किन कारणों से होती है?

What do you understand by problem of choice? What are its couses?

उत्तर साधनों की सीमितता के कारण जो आर्थिक समस्या उत्पन्न होती है, उसे चयन की समस्या कहते हैं। यह समस्या दो कारणों से उत्पन्न होती है—1. आवश्यकताओं की बहुलता तथा 2. साधनों की दुर्लभता।

प्र.3. उत्पादन सम्भावना वक्र की एक प्रमुख मान्यता लिखिए?

Write one main belief of production possibility curve.

उत्तर उत्पादन सम्भावना वक्र की प्रमुख मान्यता है—अर्थव्यवस्था में केवल दो वस्तुएँ—उपभोक्ता और पूँजी—विभिन्न अनुपातों में उत्पादित की जाती हैं।

प्र.4. प्रौद्योगिकीय प्रगति से अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाला प्रभाव लिखिए?

Write the effect of technological progress on economy.

उत्तर प्रौद्योगिकीय प्रगति से अर्थव्यवस्था की उत्पादक दक्षता में वृद्धि होती है।

प्र.5. बेकारी का स्तर आप कैसे जान सकते हैं?

How can you know the level of unemployment?

उत्तर अर्थव्यवस्था में साधनों की बेकारी का स्तर साधनों के पूर्ण रोजगार की मान्यता शिथिल करने से, जान सकते हैं।

प्र.6. उत्पादन सम्भावना वक्र से क्या आशय है?

What do you mean by production possibility curve?

उत्तर उत्पादन सम्भावना वक्र अर्थव्यवस्था की केन्द्रीय समस्याओं को चित्रित करने वाला औजार है।

प्र.7. माँग के नियम के कोई दो प्रमुख अपवाद बताइए।

Write any two main exceptions to the law of demand.

उत्तर माँग के नियम के दो प्रमुख अपवाद हैं—1. माँग का नियम प्रतिष्ठासूचक वस्तुओं के सम्बन्ध में लागू नहीं होता।
2. निम्नकोटि की वस्तुओं पर माँग का नियम लागू नहीं होता।

प्र.8. माँग को प्रभावित करने वाले कोई दो प्रमुख घटक बताइए।

Write any two main components that affect demand.

उत्तर माँग को प्रभावित करने वाले मुख्य घटक अग्र प्रकार हैं—

TOUCH 'n' PASS

1. वस्तु के मूल्य में परिवर्तन होने पर वस्तु की माँग में भी परिवर्तन हो जाता है। वस्तु का मूल्य बढ़ने पर उस वस्तु की माँग कम हो जाती है और वस्तु का मूल्य घटने पर उस वस्तु की माँग बढ़ जाती है।
2. यदि उपभोक्ताओं की रुचि तथा समाज में प्रचलित फैशन में परिवर्तन हो जाता है तो नये फैशन की वस्तुओं की माँग में वृद्धि हो जाती है। इसके विपरीत वस्तुओं के फैशन से बाहर हो जाने पर उनकी माँग में कमी हो जाती है।

प्र.9. माँग की आय लोच से आपका क्या अभिप्राय है?

What do you mean by income elasticity of demand?

उत्तर किसी वस्तु की माँग मात्रा का एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक तत्त्व उपभोक्ता की आय है। माँग की आय लोच से आशय माँग की उस परिवर्तित मात्रा से है जो अन्य बातों के समान रहते हुए उपभोक्ता की आय में परिवर्तन के उत्तर (Response) में होता है।

$$(e_y) = \frac{\text{माँगी गई मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{आय का आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$e_y = \frac{\Delta X / X}{\Delta Y / Y} \cdot \frac{\Delta X}{\Delta Y} \cdot \frac{Y}{X}$$

जहाँ, ΔX = माँग में परिवर्तन, X = प्रारम्भिक माँग, ΔY = आय में परिवर्तन, Y = प्रारम्भिक आय।

प्र.10. एक व्यक्तिगत पूर्ति वक्र की रचना कीजिए।

Construct a Personal Supply Curve.

उत्तर व्यक्तिगत पूर्ति वक्र किसी फर्म के उत्पादक या विक्रेता की पूर्ति की स्थिति को स्पष्ट करता है, जो निम्नांकित चित्र से समझा जा सकता है—

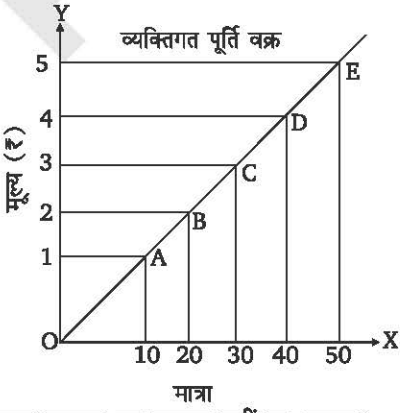

प्र.11. पूर्ति के नियम के कोई दो प्रमुख अपवाद बताइए।

Write any two exceptions to the law of supply.

उत्तर पूर्ति के नियम के दो प्रमुख अपवाद हैं—

1. नाशवान वस्तुओं पर भी यह नियम लागू नहीं होता क्योंकि इनके नष्ट या खराब होने के डर के कारण विक्रेता कम कीमत पर भी इनकी अधिक मात्रा बेचने का प्रयत्न करते हैं।
2. सामाजिक प्रतिष्ठा या कलात्मक वस्तुओं की पूर्ति को भी कीमत के अनुसार घटाया या बढ़ाया नहीं जा सकता।

प्र.12. पूर्ति तालिका एवं पूर्ति वक्र में क्या अन्तर है? संक्षेप में लिखिए।

What is the difference between supply table and supply curve? Write in brief.

उत्तर पूर्ति तालिका एक ऐसी तालिका है जो वस्तुओं की विभिन्न कीमतों पर बिक्री के लिए प्रस्तुत की जाने वाली विभिन्न मात्राओं को दर्शाती है, इसके विपरीत पूर्ति वक्र वह वक्र है जो एक निश्चित समय में वस्तु की विभिन्न कीमतों पर बिक्री के लिए प्रस्तुत की जाने वाली विभिन्न मात्राओं को दर्शाता है।

प्र.13. प्रो० मार्शल का उपभोक्ता की बचत से सम्बन्धित कथन लिखिए।

Write Prof. Marshall's statement related to consumer's surplus.

उत्तर प्रो० मार्शल के अनुसार, "वस्तु के प्रयोग से वंचित रहने की अपेक्षा एक उपभोक्ता जो कीमत देने को तत्पर होता है और वास्तव में जो कीमत वह देता है उसका अन्तर ही अतिरिक्त सन्तुष्टि की आर्थिक माप है, इसे 'उपभोक्ता की बचत' कह सकते हैं।"

प्र.14. उपभोक्ता की बचत उत्पन्न होने के कोई दो प्रमुख कारण लिखिए।

Write any two main causes for the rise of consumer's surplus.

उत्तर उपभोक्ता की बचत उत्पन्न होने के दो प्रमुख कारण हैं—

1. उपभोक्ता वस्तु की उस इकाई पर अपना उपभोग बन्द कर देता है, जिसके उपभोग से प्राप्त उपयोगिता और उसके लिए दी गई कीमत बराबर हो जाती है।
2. बाजार में वस्तु की प्रत्येक इकाई की कीमत समान होती है। वस्तु की कीमत उसकी सीमान्त उपयोगिता के बराबर होती है।

प्र.15. माँग की लोच से आप क्या समझते हैं?

What do you understand by elasticity of demand?

उत्तर किसी वस्तु की कीमत में एक प्रतिशत परिवर्तन होने से वस्तु की माँग में जो परिवर्तन होता है, उसे 'माँग की लोच' कहते हैं।

प्र.16. बाजार मूल्य से आपका क्या अभिप्राय है?

What do you understand by market price?

उत्तर बाजार मूल्य वह मूल्य है जो बाजार में माँग तथा पूर्ति की शक्तियों के अस्थायी सन्तुलन द्वारा तय होता है। बाजार मूल्य दिन में कई बार परिवर्तित होता है, क्योंकि माँग तथा पूर्ति के सन्तुलन बनते-बिगड़ते रहते हैं।

प्र.17. सामान्य मूल्य से क्या आशय है?

What do you mean by normal price?

उत्तर दीर्घकाल में माँग एवं पूर्ति के बीच सन्तुलन द्वारा जो मूल्य निर्धारित होता है, उसे सामान्य मूल्य कहते हैं।

प्र.18. वस्तु की लोच को मार्शल की इकाई विधि द्वारा कितने प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं?

How many types can elasticity of goods can be expressed by Marshall's unit method?

उत्तर मार्शल की इकाई विधि द्वारा वस्तु की लोच निम्नलिखित तीन प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं—

1. **माँग की लोच इकाई के बराबर** ($E_p = 1$) —यदि कीमत में परिवर्तन के परिणामास्वरूप वस्तु पर किए गए कुल व्यय में कोई परिवर्तन नहीं होता अर्थात् कुल व्यय स्थिर रहता है तो वस्तु की माँग की लोच इकाई के बराबर होती है।
2. **माँग की लोच इकाई से अधिक** ($E_p > 1$) —जब किसी वस्तु पर किए गए कुल व्यय की धनराशि उसकी कीमत में कमी के साथ बढ़ जाती है एवं कीमत में वृद्धि के साथ घट जाती है तो वह माँग की लोच इकाई से अधिक कही जाती है।
3. **माँग की लोच इकाई से कम** ($E_p < 1$) —जब किसी वस्तु पर किए गए कुल व्यय की राशि, कीमत में कमी के साथ कम हो जाती है एवं कीमत में वृद्धि के साथ अधिक हो जाती है तो वह माँग की लोच इकाई से कम होती है।

प्र.19. माँग की लोच को परिभाषित कीजिए तथा माँग की मूल्य सापेक्षता का सूत्र भी लिखिए।

Define elasticity of demand and also write the formula for price relativity of demand.

उत्तर **श्रीमती जोन रॉबिन्सन के अनुसार,** "माँग की लोच को किसी कीमत अथवा किसी उपज पर कीमत में मामूली परिवर्तन के फलस्वरूप खरीदी जाने वाली मात्रा में होने वाले सापेक्षित परिवर्तन को कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से भाग देकर निकाला जा सकता है।"

$$\text{माँग की मूल्य (कीमत) सापेक्षता } (E_p) = \frac{\text{माँग में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{आय में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

प्र.20. लोचदार माँग को पूर्णतया प्रदर्शित करने वाला एक सम्पूर्ण चित्र बनाइए।

Make the diagram that completely shows elastic demand.

उत्तर

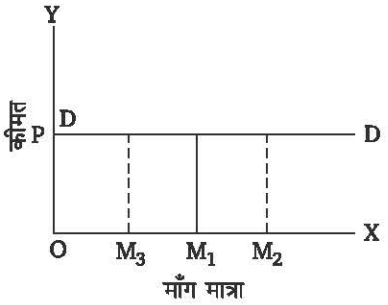

TOUCH 'n' PASS

प्र.21. माँग का नियम तथा माँग की लोच में क्या अन्तर है? संक्षेप में समझाइए।

What is the difference between the law of demand and elasticity of demand. Explain in brief.

उत्तर माँग की लोच की धारणा माँग के नियम पर ही निर्भर रहती है। माँग के नियमानुसार किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन से उसकी माँग से भी परिवर्तन हो जाता है किन्तु माँग का नियम यह स्पष्ट नहीं करता कि कीमत परिवर्तन के परिणामस्वरूप वस्तु की माँग से किस अनुपात में परिवर्तन होता है। यही परिवर्तन विभिन्न वस्तुओं के सन्दर्भ में अधिक या कम हो सकता है। अर्थशास्त्र में कीमत में परिवर्तन के परिणामस्वरूप माँग में जिस गति से परिवर्तन होता है, उसे माँग की लोच कहते हैं।

प्र.22. माँग की आय लोच से आप क्या समझते हैं?

What do you understand by income elasticity of demand?

उत्तर यदि उपभोक्ता के आय स्तर में परिवर्तन होने के कारण उसकी माँग में भी परिवर्तन हो जाता है तो उसे 'आय लोच' कहते हैं। माँग की आय लोच की निम्नलिखित सूत्र द्वारा गणना की जा सकती है—

$$\text{माँग की आय लोच } (E_i) = \frac{\text{माँग में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{आय में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

प्र.23. राशिपातन में माँग की मूल्य सापेक्षता की क्या उपयोगिता है?

What is the utility of price relativity of demand in dumping?

उत्तर जब एकाधिकारी अपनी वस्तु को स्वदेशी बाजार में लागत से अधिक मूल्य पर और विदेशी बाजार में लागत से कम मूल्य पर बेचता है तो वह राशिपातन कहलाता है। राशिपातन करते समय भी एकाधिकारी विभिन्न बाजारों की माँग की मूल्य सापेक्षता को ध्यान में रखता है।

प्र.24. लोचदार माँग ($E_p = 1$) से आप क्या समझते हैं?

What do you understand by elastic demand?

उत्तर यदि किसी वस्तु की माँग में ठीक उसी अनुपात में परिवर्तन होता है जिस अनुपात में वस्तु की कीमत में परिवर्तन हुआ है तो उसे लोचदार माँग कहते हैं। यदि किसी वस्तु की कीमत में 25% वृद्धि (अथवा कमी) हो जाने पर उसकी माँग में भी 25% की कमी (अथवा वृद्धि) हो जाए तो उसे लोचदार माँग कहते हैं।

प्र.25. वस्तु की माँग को प्रभावित करने वाले कीमत सम्बन्धी दो प्रमुख घटक लिखिए।

Write two main components related to price that affect the demand of foods.

उत्तर 1. **मूल्य स्तर**—बहुत ऊँचे अथवा नीचे मूल्य की वस्तुओं की माँग मूल्य निरपेक्ष होती है लेकिन मध्यम मूल्य वाली वस्तुओं की माँग मूल्य सापेक्ष होती है।

2. **समय का प्रभाव**—साधारणत: समय जितना कम होता है, वस्तुओं की माँग भी उतनी ही अधिक मूल्य निरपेक्ष होती है एवं समय जितना अधिक होता है, माँग उतनी ही अधिक मूल्य सापेक्ष होती है।

प्र.26. आप मार्शल की इकाई विधि द्वारा माँग की लोच को किस प्रकार माप सकते हैं?

How can you measure elasticity of demand by Marshall's unit method?

उत्तर मार्शल की इकाई विधि के अन्तर्गत मूल्य परिवर्तन से पहले तथा परिवर्तन के बाद में कुल व्यय के परिवर्तनों की तुलना करके सम्बन्धित वस्तु की माँग की लोच का अनुमान लगाया जाता है। इसे कुल व्यय रीति (Total Outlay Method) भी कहा जाता है। इसका सूत्र है—

कुल व्यय = कीमत × माँग की मात्रा

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. 'दुर्लभता' की समस्या के कारण कौन-सी समस्याएँ जन्म लेती हैं?

Which problems arise due to the problem of scarcity?

उत्तर दुर्लभता की समस्या के कारण अग्रलिखित समस्याएँ जन्म लेती हैं—

(i) **आर्थिक कुशलता प्राप्त करने की समस्या** अर्थात् क्या साधनों का कुशलता से प्रयोग हो रहा है।
(ii) **साधनों के पूर्ण प्रयोग की समस्या** अर्थात् क्या समस्त उपलब्ध साधनों का पूर्ण रूप से उत्पादन हेतु उपयोग हो रहा है।
(iii) **आर्थिक विकास की समस्या** अर्थात् क्या अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता एवं राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो रही है।
(iv) **साधनों के आवंटन की समस्या** अर्थात् साधनों से किन वस्तुओं का एवं कितनी-कितनी मात्रा में उत्पादन किया जाए।
(v) **उत्पादन तकनीकी के चयन की समस्या** अर्थात् वस्तुओं का उत्पादन कैसे किया जाए।
(vi) **राष्ट्रीय उत्पादन के वितरण की समस्या** अर्थात् समाज में वस्तुओं का वितरण किस प्रकार हो।

प्र.2. उत्पादन सम्भावना वक्र किन मान्यताओं पर आधारित है? संक्षेप में समझाइए।
On which beliefs is production possibility curve dependent? Explain in brief.

उत्तर उत्पादन सम्भावना वक्र निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है—
1. अर्थव्यवस्था में केवल दो वस्तुएँ X (उपभोक्ता) और Y (पूँजी) विभिन्न अनुपातों में उत्पादित की जाती हैं।
2. दोनों में से कोई एक अथवा दोनों वस्तुएँ उत्पादित करने हेतु समान साधन प्रयोग किए जा सकते हैं, जिन्हें दोनों के बीच बिना किसी अवरोध के शिफ्ट किया जा सकता है।
3. साधनों की पूर्तियाँ स्थिर हैं लेकिन उन्हें सीमाओं के अन्दर दोनों वस्तुओं के उत्पादन के लिए पुन: आवंटित किया जा सकता है।
4. उत्पादन तकनीकें दी हुई एवं स्थिर हैं।
5. अर्थव्यवस्था के संसाधन पूर्ण रोजगार में लगे हैं एवं तकनीकी रूप से दक्ष हैं।
6. समय अवधि अल्प है।

प्र.3. गिफिन विरोधाभास क्या है? संक्षेप में लिखिए।
What is Giffin's Paradox? Write in brief.

उत्तर गिफिन के अनुसार, निम्न कोटि की वस्तुओं पर माँग का नियम लागू नहीं होता। दूसरे शब्दों में, घटिया वस्तुओं की कीमतें गिरने पर उनकी माँग बढ़ती नहीं, अपितु कम हो जाती है। इसलिए इस अपवाद को 'गिफिन विरोधाभास' (Giffin's Paradox) के नाम से जाना जाता है। गिफिन वस्तुएँ माँग के नियम का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अपवाद हैं। प्राय: निम्न कोटि की वस्तुओं अथवा घटिया वस्तुओं को 'गिफिन वस्तुएँ' कहते हैं। उदाहरणार्थ, मांस की तुलना में ब्रेड, देसी घी की तुलना में वनस्पति घी, गेहूँ की तुलना में बाजरा निम्न कोटि की वस्तुएँ हैं।
गिफिन के अनुसार निम्न कोटि की वस्तु होने के लिए निम्नलिखित शर्तों का पूरा होना आवश्यक है—
1. वस्तु घटिया किस्म की हो एवं उसका ऋणात्मक आय प्रभाव शक्तिशाली हो।
2. उस वस्तु का प्रतिस्थापन प्रभाव कमजोर हो।
3. उस वस्तु पर उपभोक्ता अपनी आय का काफी बड़ा भाग व्यय करता हो।

प्र.4. व्युत्पन्न माँग से आप क्या समझते हैं?
What do you understand by derived demand?

उत्तर व्युत्पन्न माँग है। व्युत्पन्न माँग के विचार को प्रो० मार्शल, सैमुअल्सन आदि प्रख्यात अर्थशास्त्रियों ने परिभाषित किया है। प्रो० सैमुअल्सन के शब्दों में, "व्युत्पन्न माँग (Derived Demand) इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि जब लाभ अर्जित करने वाली फर्में किसी साधन की माँग करती हैं तो वे ऐसा इसलिए करती हैं, जिससे वे साधन की सहायता से ऐसी वस्तु का उत्पादन कर सकें, जिनको उपभोक्ता वर्तमान या भविष्य में क्रय करने को तत्पर हो। अत: उत्पत्ति के साधनों की माँग उपभोक्ताओं की अन्तिम वस्तुओं के लिए उत्पन्न इच्छा के कारण होती है।" व्युत्पन्न माँग प्रत्यक्ष माँग न होकर परोक्ष माँग है। उदाहरणार्थ, जब हमें मकान की आवश्यकता होती है तो हम ईंट, सीमेंट, श्रम आदि की माँग करते हैं। इसी प्रकार भोजन बनाने के लिए हम कोयला, लकड़ी अथवा मिट्टी के तेल की माँग करते हैं। इनमें ईंट, सीमेंट, श्रम अथवा कोयला, लकड़ी या मिट्टी के तेल की माँग कही जाएगी।

प्र.5. माँग में वृद्धि एवं कमी को सचित्र समझाइए।
Explain the increase and decrease in demand with diagrams.

उत्तर माँग में होने वाले परिवर्तनों का कारण मात्र कीमत ही नहीं होती है बल्कि अन्य तत्त्व; जैसे—उपभोक्ता की आय, फैशन, रुचि तथा जनसंख्या आदि बातें भी होती हैं।

माँग में वृद्धि—यदि माँग को प्रभावित करने वाले तत्त्वों में इस प्रकार परिवर्तन हो जाए कि दी हुई कीमत पर वस्तु की माँग पहले से अधिक हो जाए तो यह स्थिति में वृद्धि की होगी। इसे चित्र 1 के द्वारा समझ सकते हैं जिसमें DD माँग वक्र परिवर्तित होकर D_1D_1 वक्र हो जाता है जिससे कीमत OP पर माँग बढ़कर OQ_1 हो जाती है।

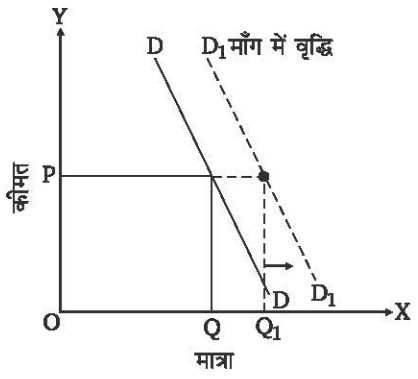

चित्र 1

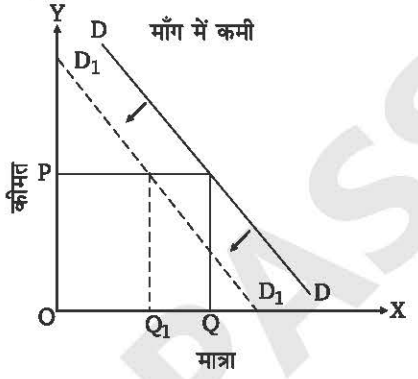

चित्र 2

माँग में कमी—माँग में कमी की धारणा माँग में वृद्धि के विपरीत है। जब माँग को प्रभावित करने वाले कारक इस तरह परिवर्तित हो जाएँ कि निर्धारित कीमत पर वस्तु की माँग पहले की अपेक्षा घट जाए तो वह स्थिति माँग की कमी कहलाएगी। इसे चित्र 2 से स्पष्ट किया गया है जिसमें DD माँग वक्र बायीं तरफ परिवर्तित होकर D_1D_1 हो जाता है तथा कीमत OP पर माँग घटकर OQ_1 हो जाती है।

प्र.6. आर्थिक प्रणाली से आपका क्या अभिप्राय है? इसकी प्रमुख परिभाषाएँ दीजिए।

What do you mean by economic system? Give its main definitions.

उत्तर आर्थिक प्रणाली ऐसी संस्थाओं का ढाँचा है जिसके द्वारा समाज की समस्त आर्थिक क्रियाओं का संचालन किया जाता है। आर्थिक प्रणाली के संस्थागत ढाँचे से अभिप्राय उस कार्य विधि से होता है जिसके अन्तर्गत किसी पूर्व-निर्धारित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सोचने का, निर्णय लेने का और आर्थिक क्रियाएँ सम्पन्न करने का मार्ग निर्धारित किया जाता है। ये सभी आर्थिक क्रियाएँ संगठित होकर एक आर्थिक प्रणाली की संरचना करती हैं।

प्रत्येक देश किसी-न-किसी आर्थिक प्रणाली पर आधारित है और आर्थिक प्रणाली की भिन्नता के अनुसार अर्थव्यवस्था का संचालन भी भिन्न-भिन्न है, किन्तु यह एक सार्वभौमिक सत्य है कि देश में चाहे कोई भी आर्थिक प्रणाली कार्यशील क्यों न हो, अर्थव्यवस्था में एक केन्द्रीय प्रवृत्ति तथा एक निश्चित उद्देश्य सदैव विद्यमान रहता है, जिसके अन्तर्गत देश के संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग करते हुए देश की अर्थव्यवस्था को उन्नत बनाने की चेष्टा की जाती है।

परिभाषाएँ—विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक प्रणाली को भिन्न-भिन्न शब्दों में परिभाषित किया है, जिनमें मुख्य निम्नलिखित हैं—

निकल्सन (Nicholson) के शब्दों में, "एक आर्थिक प्रणाली नियमों, उद्देश्यों तथा प्रोत्साहनों की सामाजिक रूपरेखा है जो एक समाज में लोगों के बीच आर्थिक सम्बन्धों को नियन्त्रित करती है और आधारभूत आर्थिक प्रश्नों के उत्तर के लिए रूपरेखा प्रदान करती है।"

श्रीमती जोन रॉबिन्सन (Mrs. Joan Robinson) के अनुसार, "किसी भी आर्थिक प्रणाली को नियमों के एक समूह की, उनके औचित्य को प्रमाणित करने के लिए एक विचारधारा की तथा व्यक्ति के विवेक की जिसके द्वारा उसे पूरा करने के लिए प्रयत्न कर सके, आवश्यकता होती है।"

श्रीमती जॉन रॉबिन्सन ने अपनी परिभाषा में आर्थिक प्रणाली के क्रियान्वयन पक्ष पर अधिक बल दिया है। उनके विचार में प्रत्येक आर्थिक प्रणाली की एक नियमावली होती है जिसका क्रियान्वयन करने के लिए व्यक्ति विशेष का विवेक आवश्यक होता है।

अर्थव्यवस्था तथा आर्थिक प्रणाली के बीच अन्तर होता है। **एक अर्थव्यवस्था से अभिप्राय एक संगठन से है जिसके माध्यम से लोग अपनी जीविका अर्जित करते हैं। एक आर्थिक प्रणाली से अभिप्राय उन आदर्शों, नियमों या प्रथाओं से है जो एक अर्थव्यवस्था को निर्देशित करते हैं।**

प्र.7. पूँजीवाद के कुछ प्रमुख दोषों पर प्रकाश डालिए।

Throw light on some main demerits of capitalism.

उत्तर पूँजीवाद के दोष—पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली के दोषों को निम्नलिखित बिन्दुओं के रूप में क्रमबद्ध किया जा सकता है—

1. **सम्पत्ति एवं आय की असमानताएँ**—पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली में आय और सम्पत्ति का असमान वितरण होता है जो समाज में सामाजिक एवं राजनीतिक असमानताएँ उत्पन्न करता है। आय की असमानताओं के कारण देश की सम्पत्ति और पूँजी का केन्द्रीकरण कुछ ही व्यक्तियों के हाथों में हो जाता है और समाज में गरीब और अमीर की खाई बढ़ जाती है। आय की यह असमानता समाज में एक असन्तुलन उत्पन्न करती है और समाज दो वर्गों में बँट जाता है—सम्पन्न (Have) एवं विपन्न (Have-Not) जिसके परिणामस्वरूप समाज में वर्ग-संघर्ष उत्पन्न होता है। आय की असमानताओं के कारण तथा उत्पत्ति के संसाधनों पर कुछ ही व्यक्तियों का अधिकार हो जाने के कारण अमीर और अधिक अमीर तथा गरीब और अधिक गरीब होता चला जाता है, जिसके कारण समाज के लाभ के अवसर सम्पन्न वर्ग के हाथों में केन्द्रित होकर रह जाते हैं।
2. **सामाजिक अशान्ति एवं वर्ग-संघर्ष**—पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली में आर्थिक असमानताएँ सामाजिक अशान्ति उत्पन्न करती हैं। आर्थिक आधार पर समाज का दो वर्गों में विभाजित होने के कारण सामाजिक शोषण उत्पन्न होता है जो **वर्ग-संघर्ष** (Class-Struggle) का मार्ग प्रशस्त करता है। पूँजीपतियों की लाभ में वृद्धि करने का लालच उत्पादन प्रक्रिया को पूँजी गहन बना देती है जिसके कारण श्रमिकों का स्थान पूँजीगत उपकरण ले लेते हैं और व्यक्तियों की बढ़ती बेरोजगारी के कारण उनकी आर्थिक स्थिति और अधिक दयनीय हो जाती है।
3. **एकाधिकारी प्रवृत्ति का उदय**—पूँजीवादी प्रणाली में पूर्ण प्रतियोगिता की उपस्थिति अपरिहार्य होने के कारण एकाधिकारी प्रवृत्तियों का बढ़ना पूँजीवादी देशों की अर्थव्यवस्था में दृष्टिगोचर होता है। एकाधिकारी प्रवृत्तियों का बढ़ना उत्पादकों के मध्य गलाकाट प्रतियोगिता (Cut-throat competition) का परिणाम है, जिसमें प्रत्येक उत्पादक अपने प्रतिद्वन्द्वी को उत्पादन प्रक्रिया से बाहर निकालने एवं बाजार पर अधिक आधिपत्य स्थापित करने का प्रयास करता है।
4. **व्यापार चक्रों की उपस्थिति**—पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली में माँग एवं पूर्ति बलों के स्वतन्त्र कार्य करने के कारण समय-समय पर माँग एवं पूर्ति बलों में असन्तुलन उपस्थित होते रहते हैं, जिसके कारण व्यापार चक्र के उच्चावचन अर्थव्यवस्था में आर्थिक अस्थिरता बनाए रखते हैं। व्यापार चक्रों के उच्चवचनों—मन्दीकाल (Depression) तथा स्फीति काल (Inflation) दोनों का ही समाज के विभिन्न वर्गों पर दुष्प्रभाव पड़ता है।
5. **सामाजिक कल्याण की अनुपस्थिति**—पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली में व्यक्तिगत हित एवं कल्याण की भावना सर्वोपरि होती है तथा सामाजिक कल्याण की भावना पूर्ण रूप से अनुपस्थित रहती है। लाभ उद्देश्य पर ही उत्पादक वर्ग कार्य करता है तथा जन कल्याण एवं आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन की उपेक्षा करता है। इस अधिकतम व्यक्तिगत लाभ की भावना के कारण समाज में श्रमिक वर्ग का शोषण होता है तथा जनकल्याण का उद्देश्य गौण होकर रह जाता है।
6. **सामाजिक परजीविता**—पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली में उत्तराधिकार के नियम के कारण अनर्जित आय पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्थानान्तरित होती रहती है, जिसके कारण समाज मे पूँजी एवं धन का केन्द्रीकरण होता चला जाता है। सम्पन्न वर्ग का उत्तराधिकारी बिना किसी त्याग, परिश्रम एवं प्रयास के एक बड़ी सम्पत्ति का मालिक बन जाता है, जिससे समाज में आय की असमानताएँ तो बढ़ती ही हैं, साथ ही सम्पन्न वर्ग परजीवी होता चला जाता है। सामाजिक परजीविता की यह बुराई इस वर्ग को आलसी, विलासी बना देती है।
7. **बेरोजगारी का भय**—पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली में पूर्ण रोजगार स्तर पर अर्थव्यवस्था को लम्बे समय तक बनाए रखना सम्भव नहीं होता। लाभ की इच्छा में जब उद्यमी उत्पादन करते चले जाते हैं तब अति-उत्पादन (Over-production) की समस्या उत्पन्न होती है जिसके कारण उद्यमी उत्पादन स्तर का संकुचन करते हैं। परिणामस्वरूप बेरोजगारी एवं गरीबी की समस्या उत्पन्न होती है।

प्र.8. माँग फलन क्या है? यह कितने प्रकार का होता है? स्पष्ट रूप से समझाइए।

What is demand function? It is of how many types? Explain clearly.

उत्तर माँग फलन—माँग-फलन, किसी वस्तु की माँग तथा उसको प्रभावित करने वाले कारकों के मध्य फलनात्मक सम्बन्ध को व्यक्त करता है। इससे प्रकट होता है कि किसी वस्तु की माँग उस वस्तु की कीमत या उपभोक्ता की आय या अन्य निर्धारक तत्वों से किस प्रकार सम्बन्धित है।

माँग के दो पहलूओं (व्यक्तिगत माँग तथा बाजार माँग) से सम्बन्धित माँग फलन भी दो प्रकार का होता है—

1. **व्यक्तिगत माँग फलन**—व्यक्तिगत माँग फलन बाजार में किसी एक उपभोक्ता की किसी वस्तु के लिए माँग तथा उसके निर्धारक तत्वों के मध्य सम्बन्ध को प्रकट करता है।

व्यक्तिगत माँग के सम्बन्ध में हम यह परिकल्पना करते हैं कि किसी व्यक्ति द्वारा किसी वस्तु की माँगी गयी मात्रा निम्न बातों से प्रभावित होती है—

(1) माँगी गयी वस्तु की कीमत (2) उपभोक्ता (या व्यक्ति) की आय (3) अन्य सम्बन्धित वस्तुओं की कीमत (4) उपभोक्ता या माँग करने वाले व्यक्ति की रुचि एवं अधिमान (5) भविष्य की सम्भावनाएँ।

यदि हम उक्त वक्तव्य (Statement) को संकेताक्षरों (symbols) के रूप में गणितीय भाषा में संक्षेप में लिखें, तो यह इस प्रकार का हो सकता है—

$$D_X = f(p_x, p_r, Y, T, E)$$

यहाँ D_X वस्तु X की माँग, p_x = वस्तु X की कीमत p_r = सम्बन्धित वस्तुओं की कीमत, Y = उपभोक्ता की आय, T = उपभोक्ता की रुचि एवं अधिमान, E = भविष्य की सम्भावना (कीमतों में वृद्धि अथवा कमी की)।

उपर्युक्त समीकरण को गणित की भाषा में माँग फलन कहा जाता है, जिसका अर्थ यह है कि किसी वस्तु की माँग उस वस्तु की कीमत, अन्य सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतों, उपभोक्ता की आय, उपभोक्ता की रुचि एवं अधिमान तथा भविष्य में कीमतों में होने वाले परिवर्तन का फलन होती है। अर्थात्, इनमें से यदि किसी एक में परिवर्तन होता है तो माँग में भी परिवर्तन हो जाता है।

2. **बाजार माँग फलन**—बाजार माँग फलन से ज्ञात होता है कि किसी वस्तु की बाजार माँग (या बाजार में किसी वस्तु की कुल माँग) विभिन्न निर्धारक तत्वों से किस प्रकार सम्बन्धित है। यह किसी वस्तु की बाजार माँग तथा उसके विभिन्न निर्धारकों के बीच फलनात्मक सम्बन्ध को प्रकट करता है। बाजार माँग फलन को निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है—

$$Mkt.\ D_X = f(p_x, p_r, Y, T, E, N, Y_d)$$

यहाँ, $Mkt.\ D_X$ = वस्तु-X की बाजार माँग, p_x = वस्तु-X की कीमत, p_r = सम्बन्धित वस्तुओं की कीमत, Y = उपभोक्ता की आय, T = उपभोक्ता की रुचि तथा अधिमान, E = भविष्य की सम्भावना, N = जनसंख्या का आकार, Y_d = आय का वितरण।

व्यक्तिगत माँग को प्रभावित करने के अतिरिक्त अन्य कारक जैसे—जनसंख्या का आकार तथा समाज में आय का वितरण भी बाजार माँग को प्रभावित करते हैं।

जनसंख्या का आकार बढ़ने (या घटने) से वस्तु के क्रेताओं की संख्या में वृद्धि (या कमी) हो जाती है। जनसंख्या की रचना भी बाजार माँग को प्रभावित करती है। स्त्रियों की संख्या में वृद्धि हो जाने पर उन वस्तुओं की माँग बढ़ जाती है, जिन्हें स्त्रियाँ खरीदती हैं।

बाजार माँग पर **समाज में आय के वितरण** का भी प्रभाव पड़ता है। यदि आय का वितरण समान है तो माँग अधिक होगी तथा आय के असमान वितरण की स्थिति में माँग कम होगी, क्योंकि असमान वितरण की स्थिति में अधिकांश लोगों के पास वस्तुओं को खरीदने के लिए धन नहीं होगा।

प्र.9. माँग की लोच को रेखाचित्र की सहायता से स्पष्ट कीजिए।

Make clear the elasticity of demand with a diagram.

उत्तर माँग की लोच की परिभाषा—माँग की लोच अथवा माँग की कीमत लोच का अभिप्राय कीमत के सूक्ष्म परिवर्तन के कारण उत्पन्न होने वाले माँग की मात्रा में परिवर्तन की माप से है।

मार्शल के अनुसार, "माँग की लोच का बाजार में कम या अधिक होना इस बात पर निर्भर करता है कि वस्तु की कीमत में एक निश्चित मात्रा में परिवर्तन होने पर उसकी माँग में सापेक्ष रूप से अधिक या कम अनुपात में परिवर्तन होता है।"
सैम्युअलसन के शब्दों में, "माँग की लोच का विचार कीमत के परिवर्तन के फलस्वरूप माँग की मात्रा में परिवर्तन के अंश, अर्थात् माँग में प्रतिक्रियात्मकता के अंश को बताता है।"

$$\text{माँग की लोच } (e_d) = \frac{\text{माँग में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

संलग्न चित्र में DD माँग वक्र है। यह माँग वक्र यह बताता है कि अन्य तत्वों के स्थिर रहने पर माँग एवं वस्तु की कीमत में प्रतिलोम सम्बन्ध होता है। चित्र में बिन्दु P पर उपभोक्ता OC वस्तु कीमत पर OA वस्तु मात्रा का उपभोग कर रहा है। कीमत में ΔP कमी होने पर उपभोक्ता वस्तु की उपभोग मात्रा ΔQ बढ़ा देता है। दूसरे शब्दों में, कीमत की कमी के कारण उपभोक्ता की माँग में वृद्धि हो जाती है।

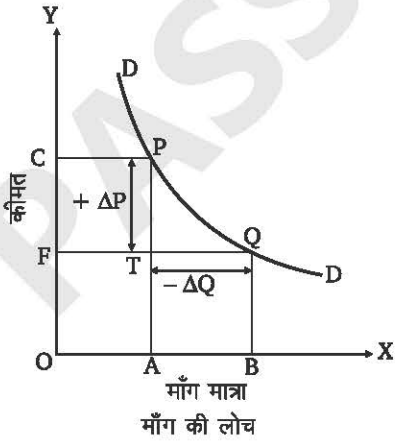

माँग की लोच

चित्रानुसार,

$$e_d = \frac{\text{वस्तु की मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{वस्तु की कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$= \frac{-\Delta Q / Q}{\Delta P / P}$$

जहाँ, $-\Delta Q$ = माँग में कमी, Q = आरम्भिक माँग, $+\Delta P$ = कीमत में वृद्धि, P = आरम्भिक कीमत

माँग की लोच ऋणात्मक (Negative) होती है, क्योंकि वस्तु की माँग और उसकी कीमत में विपरीत सम्बन्ध होता है। किन्तु मात्रात्मक रूप में,

$$e_d = \frac{\Delta Q / Q}{\Delta P / P}$$

प्र.10. माँग की आड़ी लोच क्या है? उदाहरण सहित समझाइए।

What is cross-elasticity of demand? Explain with example.

उत्तर माँग की आड़ी लोच—आड़ी लोच के विचार का प्रतिपादन वस्तुत: **मूर** (Moore) ने अपनी पुस्तक 'Synthetic Economics' में किया था, किन्तु इस विचार की विस्तृत एवं वैज्ञानिक व्याख्या **रॉबर्ट ट्रिफिन** (Robert Triffin) ने अपनी पुस्तक 'Theory of Value' में की है।

कुछ वस्तुएँ इस प्रकृति की होती हैं कि एक वस्तु की कीमत परिवर्तन दूसरी वस्तु की माँग को भी परिवर्तित कर देता है जबकि दूसरी वस्तु की कीमत अपरिवर्तित रहती है।

दूसरे शब्दों में, वस्तु X की वस्तु Y से प्रति-मूल्य सापेक्षता (Cross Elasticity) को निम्नांकित सूत्र द्वारा व्यक्त या जा सकता है—

$$e = \frac{\text{वस्तु } X \text{ की माँग में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{वस्तु } Y \text{ की कीमत में अनुपातिक परिवर्तन}} \quad \Rightarrow \quad e = \frac{\Delta X / X}{\Delta P_y / P_y} = \frac{\Delta X}{\Delta P_y} \cdot \frac{P_y}{X}$$

जहाँ, $\Delta X = X$ वस्तु की माँग में परिवर्तन (वस्तु Y की कीमत परिवर्तन के कारण)
$X = X$ वस्तु की प्रारम्भिक माँग (वस्तु Y की कीमत परिवर्तन से पूर्व)
ΔP_y = वस्तु Y का कीमत परिवर्तन
P_y = वस्तु Y की प्रारम्भिक कीमत

माँग की आड़ी लोच तीन प्रकार की वस्तुओं में उपस्थित हो सकती है—

1. **स्थानापन्न वस्तुओं में**—दो पूर्ण स्थानापन्न वस्तुओं में प्रतिस्थापन दर सदैव स्थिर तथा एक समान रहेगी। चाय तथा कॉफी (Tea and Coffee), थम्स अप तथा कैम्पा कोला (Thums up and Campa Cola) ऐसी ही वस्तुएँ हैं।

स्थानापन्न वस्तुओं के बीच माँग की आड़ी लोच अधिक होती है। **पूर्ण स्थानापन्न वस्तुओं में माँग की आड़ी लोच अनन्त (Infinite) होती है, किन्तु कमजोर स्थानापन्नों (Poor Substitutes) में माँग की आड़ी लोच कम होती है।** चित्र 1 में स्थानापन्न वस्तुओं की माँग की आड़ी लोच शून्य से अधिक प्रदर्शित की गयी है क्योंकि वस्तु Y की कीमत वृद्धि स्थानापन्न वस्तु X की मात्रा में वृद्धि करेगी तथा वस्तु Y की कीमत कमी स्थानापन्न वस्तु X की मात्रा में कमी करेगी। ऐसी दशा में माँग की आड़ी लोच धनात्मक (Greater than Zero) होगी।

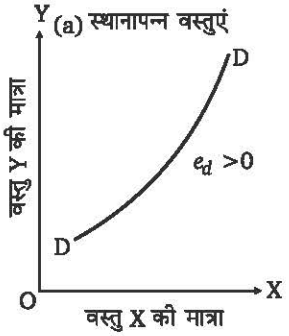

चित्र 1 : वस्तु X तथा वस्तु Y परस्पर स्थानापन्न

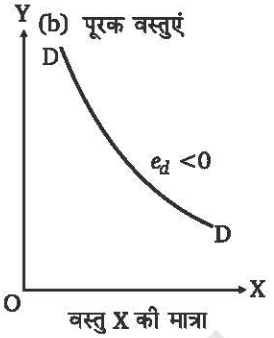

चित्र 2 : वस्तु X तथा वस्तु Y परस्पर पूरक

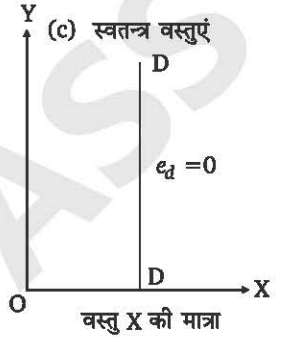

चित्र 3 : वस्तु X तथा वस्तु Y परस्पर स्वतन्त्र

2. **पूरक तथा संयुक्त माँग वाली वस्तुओं में**—कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं जिनकी माँग एक साथ की जाती है। स्कूटर तथा पेट्रोल, पेन तथा इंक, डबल रोटी तथा मक्खन आदि ऐसी ही श्रेणी की वस्तुएँ हैं। ऐसी वस्तुओं में यदि एक वस्तु की कीमत में वृद्धि होती है तो उससे सम्बन्धित वस्तु की माँग में कमी हो जाएगी चाहे दूसरी वस्तु की कीमत अपरिवर्तित ही क्यों न रहे। ऐसी दशा में **आड़ी लोच ऋणात्मक** (Negative) अथवा शून्य से कम हो जाएगी। चित्र 2 में ऋणात्मक आड़ी लोच ($ed < 0$) प्रदर्शित की गयी है।
3. **स्वतन्त्र वस्तुओं में**—स्वतन्त्र वस्तुओं के सम्बन्ध में **माँग की आड़ी लोच शून्य होगी।** स्वतन्त्र वस्तुएँ न तो स्थानापन्न वस्तुओं की श्रेणी में आती हैं और न ही पूरक वस्तुओं की श्रेणी में। चित्र 3 में ऐसी वस्तुओं के मध्य माँग की आडी लोच स्पष्ट की गयी है।

प्र.11. यदि कॉफी की कीमत ₹ 4.50 प्रति 100 ग्राम से बढ़कर ₹ 5 प्रति 100 ग्राम हो जाए और फलस्वरूप उपभोक्ताओं द्वारा चाय की माँग 6,000 ग्राम से बढ़कर 7,000 ग्राम हो जाए तो चाय की कॉफी के लिए माँग की आड़ी लोच की गणना कीजिए।

If the price of 100 grams coffee increases from ₹ 4.50 to ₹ 5 and as a result, the consumers' demand for tea increases from 5,000 grams to 7,000 grams, calculate the cross-elasticity of demand of tea for coffee.

हल

$$e_c = \frac{P_Y}{Q_X} \times \frac{\Delta Q_X}{\Delta P_Y}$$

दिया है,

Q_X = 6,000 ग्राम

ΔQ_X = (7,000 – 6,000) = 1,000 ग्राम

P_Y = ₹ 4.50 या 450 पैसे

$$\text{माँग की आड़ी लोच } (e_c) = \frac{450}{6,000} \times \frac{1,000}{50} = 1.5$$

माँग की आड़ी लोच = 1.5

TOUCH 'n' PASS

प्र.12. एक वस्तु की कीमत 5 प्रतिशत गिर जाने के कारण उसकी माँग में 12 प्रतिशत की वृद्धि हो जाती है माँग की कीमत लोच ज्ञात कीजिए और बताइए कि माँग लोचदार है या बेलोचदार है।

A 5% drop in the price of a good leads to a 12% increase in its demand. Find price elasticity of demand. Also tell whether the demand is elastic or inelastic.

हल

$$\text{माँग की लोच} = (-)\frac{\text{माँग में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}} = \frac{12\%}{(-)\,5\%} = 2.4$$

माँग की लोच = 2.4 है अत: माँग लोचदार है।

प्र.13. पूर्ति से आप क्या समझते हैं? पूर्ति तथा स्टॉक में अन्तर लिखिए।

What do you understand by supply? Write the differences between supply and stock.

उत्तर पूर्ति का अर्थ—साधारण बोलचाल की भाषा में पूर्ति का अभिप्राय किसी वस्तु के स्टाक (stock) या उस वस्तु की उपलब्ध मात्रा से लगाया जाता है। प्राय: हम कह सकते हैं कि आजकल मिट्टी के तेल व बिजली-पानी की आपूर्ति अच्छी है। इसका अर्थ हुआ कि सब चीजें उपलब्ध हो रही हैं। यदि इस बात को उलट दिया जाय तो हम कहेंगे, आजकल मिट्टी के तेल व बिजली-पानी की आपूर्ति बहुत कम है। ऐसा कहने का अर्थ हुआ कि इन वस्तुओं का अभाव हो चुका है, वस्तुएँ उपलब्ध नहीं हैं। जहाँ पर्याप्तता है वहाँ पूर्ति है, जहाँ अपर्याप्तता है वहाँ पूर्ति नहीं है। परन्तु अर्थशास्त्र में जब हम पूर्ति शब्द का प्रयोग करते हैं, तब इस शब्द का खास उद्देश्य होता है और इसी में हम इस शब्द का प्रयोग करते हैं।

अर्थशास्त्र में पूर्ति शब्द का अर्थ किसी वस्तु की उस मात्रा से लगाया जाता है, जिसे कोई विक्रेता 'एक निश्चित समय' तथा 'एक निश्चित कीमत' पर बाजार में बेचने के लिए तैयार होता है। यदि हम यह कहे कि आज बाजार में 100 कुन्तल कोयला उपलब्ध है, तो अर्थशास्त्रीय दृष्टिकोण से यह बात पूर्ति के पक्ष को स्पष्ट नहीं कर सकती, क्योंकि इस कथन में दो मुख्य बातों को छोड़ दिया गया है, जैसे—कोयले की कीमत तथा समय, इन दो तथ्यों के अभाव में पूर्ति का उपर्युक्त कथन अस्पष्ट है। यदि उपर्युक्त कथन को इस प्रकार कहें कि ₹ 40 प्रति कुन्तल की दर से 15 दिन तक बाजार में 100 कुन्तल कोयला उपलब्ध है, तो यह कथन पूर्ति की सही व्याख्या करेगा।

पूर्ति के अर्थ को स्पष्ट करते हुए **प्रो. मेयर्स** (Prof. Mayers) ने लिखा है कि, **"पूर्ति वह सारणी है, जिसमें सबसे कम कीमत पर एक निश्चित समय में या एक विशेष अवधि में जैसे एक दिन, एक सप्ताह आदि, जबकि पूर्ति की शर्तें समान रहती हैं, बेचने के लिए प्रस्तुत की गयी वस्तु की मात्राएँ प्रदर्शित की जाती हैं।"**

पूर्ति तथा स्टॉक में अन्तर (Difference between Supply and Stock)—यहाँ पूर्ति व स्टाक (stock) के अन्तर को भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है। स्टाक का अभिप्राय वस्तु की कुल मात्रा से है, जो किसी समय बाजार में विक्रेता के पास मौजूद रहती है, जबकि पूर्ति स्टाक का वह भाग है जिसे विक्रेता एक निश्चित समय और निश्चित मूल्य में बेचने के लिए तैयार होता है।

प्र.14. पूर्ति वक्र के खिसकाव एवं पूर्ति वक्र के संचलन से आप क्या समझते हैं?

What do you understand by the shifting of supply curve and movement of supply curve?

उत्तर पूर्ति वक्र खिसकाव—जब पूर्ति में वृद्धि द्वारा पूर्ति वक्र दायीं तथा पूर्ति में कमी द्वारा पूर्ति वक्र बायीं ओर खिसक जाता है तब उसे 'पूर्ति वक्र का खिसकाव' कहा जाता है। इसे चित्र-1 द्वारा दर्शाया जा सकता है।

इस चित्र से स्पष्ट है कि वस्तु की अपनी कीमत समान (OP) रह रही है और पूर्ति वक्र (SS) बायीं एवं दायीं ओर अन्य तत्त्वों में परिवर्तन के कारण S_1S_1 एवं S_2S_2 का आकार बना रहा है। इसे पूर्ति वक्र का खिसकाव कहते हैं।

पूर्ति वक्र पर संचलन—पूर्ति वक्र पर संचलन वस्तु की अपनी कीमत में परिवर्तन होने से उसकी मात्रा में परिवर्तन को प्रकट करता है। जब वस्तु की अपनी कीमत बढ़ जाती है तो पूर्ति की मात्रा भी बढ़ जाती है जिससे पूर्ति वक्र पर दायीं ओर ऊपर की ओर संचलन होता है। दूसरी ओर जब वस्तु की अपनी कीमत कम हो जाती है तो पूर्ति की मात्रा भी कम हो जाती है जिसे पूर्ति का संकुचन कहते हैं। इसे पूर्ति वक्र पर बायीं तरफ नीचे की ओर संचलन होता है। इसे चित्र-2 द्वारा समझाया गया है—

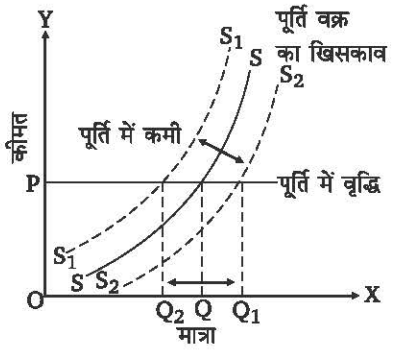

चित्र 1

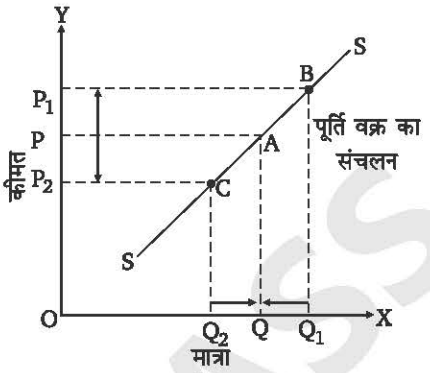

चित्र 2

उपरोक्त चित्र से पूर्ति वक्र पर संचलन स्पष्ट होता है। जब कीमत OP होती है तो पूर्ति OQ है। कीमत बढ़ने पर पूर्ति भी बढ़ जाती है अर्थात् OP_1 कीमत हो जाने पर पूर्ति भी OQ_1 हो जाती है। Q से Q_1 अथवा बिन्दु A से B की ओर संचलन पूर्ति का विस्तार कहलाता है तथा बिन्दु A से C की ओर पूर्ति का संकुचन कहलाता है।

प्र.15. बाजार मूल्य एवं सामान्य मूल्य का तुलनात्मक विवरण दीजिए।

Write comparative detail of market price and normal price.

उत्तर

बाजार मूल्य तथा सामान्य मूल्य की तुलना
(Comparison between Market Price and Normal Price)

बाजार मूल्य व सामान्य मूल्य की तुलना निम्नलिखित है—

क्र० सं०	बाजार मूल्य (Market Price)	सामान्य मूल्य (Normal Price)
1.	बाजार मूल्य अति अल्पकालीन मूल्य है।	सामान्य मूल्य दीर्घकालीन मूल्य है।
2.	बाजार मूल्य किसी समय विशेष में बाजार में प्रचलित रहता है।	सामान्य मूल्य में अमूर्तता (abstraction) होती है, फिर भी इस मूल्य में इस दृष्टि से वास्तविकता है कि यह एक केन्द्र-बिन्दु (focal) की भाँति होता है जिसके चारों ओर बाजार मूल्य घूमता है।
3.	बाजार मूल्य माँग एवं पूर्ति की शक्तियों का अस्थायी सन्तुलन है। अस्थायी सन्तुलन के कारण यह दिन में कई बार बदलता है। माँग और पूर्ति के सन्तुलन बनते-बिगड़ते रहते हैं जिसके कारण बाजार मूल्य में भी काफी उतार-चढ़ाव आते हैं।	सामान्य मूल्य के निर्धारण में लम्बा समय लगता है। दीर्घकाल में पूर्ति को माँग के अनुकूल बढ़ाया-घटाया जा सकता है। इस प्रकार माँग-पूर्ति की स्थायी शक्तियों से अन्तिम सन्तुलन (final equilibrium) प्राप्त होता है। यही कारण है कि सामान्य मूल्य में एकाएक परिवर्तन नहीं आते हैं।
4.	बाजार मूल्य में असामान्य लाभ एवं असामान्य हानि हो सकती है।	सामान्य मूल्य उत्पादन लागत के बराबर होता है। समय की अधिकता के कारण इसमें असामान्य लाभ एवं हानि नहीं होती है।
5.	बाजार मूल्य की प्रवृत्ति सामान्य मूल्य के बराबर रहने की होती है। वह हमेशा सामान्य मूल्य के चारों ओर चक्कर लगाता है और अन्त में उसी में मिल जाता है।	सामान्य मूल्य लम्बे समय तक घटता-बढ़ता नहीं है। इसकी प्रवृत्ति उत्पादन लागत के बराबर होने की होती है।
6.	बाजार मूल्य पुनरुत्पादनीय और निरुत्पादनीय दोनों ही प्रकार की वस्तुओं का होता है।	सामान्य मूल्य केवल पुनरुत्पादनीय वस्तुओं का होता है। निरुत्पादनीय वस्तुओं की पूर्ति स्थिर होती है जिनका मूल्य 'भावुकता' से तय होता है, न कि उत्पादन लागत से।

TOUCH 'n' PASS

प्र.16. सरकार या वित्त मन्त्री के लिए माँग की मूल्य सापेक्षता (लोच) के महत्त्व को समझाइए।
Explain the importance of price relativity of demand (elasticity) for the government or the finance minister.

उत्तर वर्तमान समय में सरकारें भिन्न-भिन्न आर्थिक क्रियाकलापों को सम्पन्न करती हैं। अत: माँग की मूल्य सापेक्षता का विचार सरकार के लिए निम्न प्रकार उपयोगी है—

1. माँग की मूल्य सापेक्षता का विचार सरकार को यह तय करने में सहायता करता है कि वह किन-किन उद्योगों एवं सेवाओं को सार्वजनिक सेवाएँ घोषित करके उनका नियन्त्रण, प्रबन्धन एवं स्वामित्व अपने हाथ में ले।
2. समाज के विभिन्न वर्गों पर कर भार के वितरण को जानने के लिए सरकार माँग की मूल्य सापेक्षता के विचार की सहायता लेती है। सामान्य रूप से उन वस्तुओं पर ऊँची दर से कर लगाए जाते हैं, जिनकी माँग मूल्य निरपेक्ष है।
3. सरकार विदेशी विनिमय दर के निर्धारण में माँग की लोच का सहारा लेती है। यदि सरकार अपनी मुद्रा का अवमूल्यन अथवा पुनर्मूल्यन करना चाहती है तो इसके लिए उसे आयात-निर्यात की माँग की लोच का सावधानी के साथ परीक्षण करना पड़ता है।
4. वित्त मन्त्री कर लगाते समय माँग की मूल्य सापेक्षता के विचार को दृष्टिगत रखता है। सामान्यत: करारोपण की दृष्टि से वस्तुएँ अधिक उपयुक्त होती हैं, जिनकी माँग मूल्य निरपेक्ष है और जिनका उपभोग निर्धन व्यक्तियों द्वारा नहीं किया जा रहा है।
5. व्यापार-चक्रों पर नियन्त्रण करने, अर्थव्यवस्था में मुद्रा प्रसार तथा मुद्रा संकुचन के प्रभावों को नष्ट करने तथा विकास साधनों को अन्तरित करने में यह विचार सरकार का पथप्रदर्शन करता है।

प्र.17. उपभोक्ता की बचत के महत्त्व की संक्षेप में विवेचना कीजिए।
Briefly discuss the importance of consumer's surplus.

उत्तर उपभोक्ता की बचत के महत्त्व को निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

1. **सैद्धान्तिक महत्त्व**—(i) यह सिद्धान्त कल्याणवादी अर्थशास्त्र का आधार है।
   (ii) यह सिद्धान्त किसी वस्तु के प्रयोग मूल्य एवं विनिमय मूल्य का अन्तर बताता है।
   (iii) उपभोक्ता की बचत का विचार हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित करता है कि अनेक छोटी-छोटी वस्तुओं (जैसे—दियासलाई, समाचार-पत्र, पोस्टकार्ड आदि) से हमें त्याग की गई उपयोगिता (मुद्रा) की तुलना में कहीं अधिक उपयोगिता प्राप्त होती है।
2. **व्यावहारिक महत्त्व**—(i) उपभोक्ता की बचत के अनुसार हम दो देशों के निवासियों या एक ही देश के निवासियों की आर्थिक दशाओं की तुलना कर सकते हैं।
   (ii) एकाधिकारी अपनी वस्तु का मूल्य निर्धारण करते समय यह देखता है कि उपभोक्ता को वस्तु से कितनी बचत प्राप्त हो रही है। जिस वस्तु से उपभोक्ता को अधिक बचत प्राप्त होती है, उस वस्तु के मूल्य को वह ऊँचा रखता है और जिस वस्तु से उपभोक्ता को कम बचत प्राप्त होती है, उस वस्तु के मूल्य को नीचा रखता है।
   (iii) वित्त मन्त्री कर लगाते समय उपभोक्ता की बचत की धारणा का विशेष ध्यान रखता है।
   (iv) सभी देश ऐसी वस्तुओं का आयात करते हैं, जो अपने देश में महँगी व दूसरे देश में सस्ती मिलती हैं।
   (v) सरकारी सहायता तब ही दी जाती है जबकि उपभोक्ता की बचत में होने वाली वृद्धि सरकार की आय में होने वाली कमी से अधिक हो।
   (vi) अन्य बातें समान रहने पर ऐसी परियोजनाओं को प्राथमिकता दी जाती है, जो उपभोक्ताओं को अधिक बचत प्रदान करती हैं। इस दृष्टि से आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाने वाली, शीघ्र फलदायी और श्रमप्रधान परियोजनाएँ अधिक उपयोगी होती हैं।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. आर्थिक समस्या क्या है? इसकी परिभाषा देते हुए इसके विभिन्न कारणों पर प्रकाश डालिए।
What is economic problem? Throwing light on its different causes, give its definition.

उत्तर

आर्थिक समस्या
(Economic Problem)

मनुष्य की आवश्यकताएँ असीमित होती हैं, जबकि उनको सन्तुष्ट करने वाले साधन सीमित अथवा दुर्लभ होते हैं। साधन न केवल दुर्लभ होते हैं, अपितु इनके विभिन्न एवं वैकल्पिक उपयोग भी होते हैं। **आवश्यकताओं की तुलना में साधनों की दुर्लभता, आर्थिक समस्या को जन्म देती है।** इस दशा में व्यक्ति विशेष को अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए यह चयन (choice) करना पड़ता है कि असीमित आवश्यकताओं में से कौन-सी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करे तथा उनके लिए कौन-से साधनों का प्रयोग करे। अत: आवश्यकताओं के असीमित होने तथा उनकी तुलना में वैकल्पिक प्रयोग वाले साधनों के दुर्लभ होने के कारण चयन की समस्या उत्पन्न होती है। चयन की समस्या प्रमुख आर्थिक समस्या है। अत: **अर्थशास्त्र का चयन (या चुनाव) का शास्त्र या विज्ञान कहा जाता है।**

अर्थशास्त्र को परिभाषित करते हुए **रॉबिन्स** ने 1932 में प्रकाशित अपनी पुस्तक "An Essay on the Nature and Significance of Economic Science" में लिखा है कि "**अर्थशास्त्र वह विज्ञान है, जो विभिन्न उपयोगों वाले सीमित साधनों तथा उद्देश्यों से सम्बन्ध रखने वाले मानवीय व्यवहार का अध्ययन करता है।**"

इस तरह, प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **रॉबिन्स** के अनुसार, अर्थशास्त्र में मनुष्यों के उन कार्यों का अध्ययन किया जाता है, जिन्हें वे अपनी **असीमित आवश्यकताओं** (Ends) को पूरा करने वाले **सीमित साधनों** (Scarce Means) की प्राप्ति के लिए करते हैं। ये साधन न केवल सीमित होते हैं, अपितु इनके **वैकल्पिक प्रयोग** (Alternative uses) भी होते हैं। इस तरह, अर्थशास्त्र (1) असीमित आवश्यकताओं को पूरा करने वाले, (2) सीमित साधनों, जिनके विभिन्न या वैकल्पिक उपयोग दो होते हैं, (3) के चयन का अध्ययन है।

अर्थशास्त्र का सम्बन्ध दुर्लभता की अवस्था में चयन करने से है—यदि दुर्लभता न होती, तो कोई आर्थिक समस्या या 'चयन' से सम्बन्धित कोई समस्या भी न होती। संसाधनों की दुर्लभता की अनुपस्थिति में असीमित आवश्यकताओं की धारणा का कोई अस्तित्व न होता। जब संसाधन सीमित नहीं और आवश्यकताएँ असीमित नहीं, तो फिर चयन की समस्या कहाँ? तब चयन की समस्या न होती, न तो आर्थिक समस्या तथा न होता अर्थशास्त्र।

आर्थिक समस्या की परिभाषाएँ (Definitions of Economic Problem)

1. **लेफ्टविच** (Leftwitch) के अनुसार, "आर्थिक समस्या का सम्बन्ध मनुष्य की वैकल्पिक आवश्यकताओं के लिए सीमित साधनों के वितरण तथा इन साधनों का अधिक-से-अधिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए प्रयोग करने से है।"
2. **एरिक रोल** (Erich Roll) के अनुसार, "आर्थिक समस्या मूल रूप से चुनाव से उत्पन्न होने वाली समस्या है। इस चुनाव का सम्बन्ध वैकल्पिक प्रयोगों वाले सीमित साधनों के प्रयोग से है। यह साधनों के उपयुक्त उपयोग की समस्या है।"

आर्थिक समस्या के कारण
(Causes of Economic Problem)

आर्थिक समस्या मूल रूप से साधनों की दुर्लभता तथा साधनों के बचत पूर्ण प्रयोग अर्थात् 'चुनाव' की समस्या है। यह सीमित साधनों के वैकल्पिक प्रयोगों में से चुनाव की समस्या है। यह साधनों के कुशल प्रयोग एवं प्रबन्ध की समस्या है।

अन्य शब्दों में, **दुर्लभता और चयन (या चुनाव) की समस्या ही आर्थिक समस्या है, यह (आर्थिक) समस्या निम्नलिखित कारणों से उत्पन्न होती है—**

1. **असीमित आवश्यकताएँ**—मानवीय आवश्यकताएँ असीमित हैं। कोई भी व्यक्ति इन्हें पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं कर सकता। ज्यों ही हम एक आवश्यकता को पूरा करते हैं, दूसरी और उत्पन्न हो जाती है और मनुष्य सदैव इन आवश्यकताओं के जाल में उलझा रहता है। कुछ आवश्यकताएँ बार-बार उत्पन्न होने वाली होती है। इसी तरह, कुछ आवश्यकताएँ समय, शिक्षा, ज्ञान और आर्थिक विकास के साथ बढ़ती जाती हैं।

2. **सीमित साधन**—माँग की तुलना में आर्थिक साधनों की मात्रा सीमित होती है। यदि साधनों की प्रचुरता रहती, तो कोई आर्थिक समस्या उत्पन्न नहीं होती। अत: साधनों की सीमितता ही आर्थिक समस्या का मुख्य कारण है।
3. **आवश्यकताओं की तीव्रता में अन्तर**—सभी आवश्यकताएँ समान रूप से महत्त्वपूर्ण नहीं होती हैं। कुछ आवश्यकताएँ दूसरों की तुलना में अधिक तीव्र होती हैं। अत: प्रत्येक व्यक्ति इन्हें आवश्यकता अथवा तीव्रता के आधार पर पूरा करता है।
4. **साधनों का वैकल्पिक प्रयोग**—साधनों के विभिन्न एवं वैकल्पिक प्रयोग होते हैं। साधनों के वैकल्पिक प्रयोग भी आर्थिक समस्या का कारण बनते हैं। प्रत्येक गृहस्थ को अपने दिए हुए साधनों से विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करना होता है। इससे चुनाव की समस्या उत्पन्न होती है कि किस आवश्यकता को पहले पूरा किया जाए तथा किसे बाद में पूरा किया जाए।

इस तरह, 'साधनों की दुर्लभता' ही एक तरह से आर्थिक समस्या का मूल कारण है। साधन की दुर्लभता के कारण ही चुनाव अथवा साधनों के किफायतपूर्ण उपयोग (Economising the use of resources) की समस्या उत्पन्न होती है।
साधनों के किफायतपूर्ण उपयोग की आवश्यकता इसलिए पड़ती है, क्योंकि हमारी माँग की तुलना में इसकी पूर्ति कम होती है। साधनों की किफायत अथवा मितव्ययिता पूर्ण उपयोग का अर्थ है कि उपलब्ध साधनों का इष्टतम उपयोग करना।
साधनों के किफायत की धारणा हमें यह याद दिलाती है कि उपलब्ध सीमित साधन का उपयोग इस तरह किया जाना चाहिए ताकि वह अधिकतम आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायक बने। "विभिन्न वैकल्पिक उपयोगों में से निश्चित उद्देश्य के लिए आदर्श चुनाव करना ही साधनों की किफायत कहलाता है।"

प्र.2. दुर्लभता तथा चुनाव की समस्या का समुचित विवेचन कीजिए।
Give a detailed discussion of scarcity and choice.

उत्तर

दुर्लभता की समस्या
(Problem of Scarcity)

आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने वाले अधिकतर साधन अर्थात् वस्तुएँ तथा सेवाएँ सीमित या दुर्लभ होती हैं। यदि साधनों की बहुलता होती, तो कोई आर्थिक समस्या न उत्पन्न होती। अत: साधनों की सीमितता ही आर्थिक समस्या का मुख्य कारण है।

दुर्लभता का अर्थ (Meaning of Scarcity)

दुर्लभता एक सापेक्ष धारणा है। इसका अर्थ है माँग की तुलना में पूर्ति का अभाव, भले ही साधनों की कीमत शून्य ही क्यों न हो। अन्य शब्दों में, साधन अर्थात् वस्तुएँ एवं सेवाएँ दुर्लभ इसलिए कही जाती हैं, क्योंकि इनकी माँग इनकी पूर्ति से अधिक होती है अर्थात् $D > S$.
जहाँ, D साधनों की माँग और S साधनों की पूर्ति है।
मकोनल के शब्दों में, **"दुर्लभता वह स्थिति है, जिसमें एक निश्चित समय में साधनों की उपलब्धता उनकी माँग से कम होती है।"** दुर्लभता तुलनात्मक है, इससे तात्पर्य यह है कि वस्तुएँ एवं उन्हें उत्पादन करने वाले साधन उनकी आवश्यकताओं की तुलना में कम होती है।

दुर्लभता

आवश्यकता को सन्तुष्ट करने के लिए संसाधनों की उपलब्धता	<	आवश्यकता को सन्तुष्ट करने वाले साधनों की आवश्यकता

उल्लेखनीय है कि,
(i) दुर्लभता कीमत का कारण बनती है। जो वस्तु जितनी अधिक दुर्लभ (सीमित) होती है, उसकी कीमत उतनी ही अधिक होती है, जैसे—हीरे की कीमत।
(ii) दुर्लभता कम, तो कीमत भी कम; जैसे—पानी की कीमत।
(iii) दुर्लभता नहीं, तो कीमत भी नहीं; जैसे—सूर्य की रोशनी।

परन्तु ध्यान रखें कि किसी भी वस्तु की शून्य कीमत का अर्थ यह नहीं होता कि उस वस्तु की दुर्लभता नहीं है। उदाहरण के लिए, एक सरकारी अस्पताल में मरीजों को दवाइयां बिना कोई कीमत लिए या निःशुल्क दी जाती हैं। फिर भी दवाइयों की माँग उसकी पूर्ति से अधिक हो सकती है। यह दुर्लभता की स्थिति है।

प्रचुरता क्या है?—किसी वस्तु (जैसे—ग्रीष्मकाल में सूर्य की रोशनी) की प्रचुरता से अभिप्राय है शून्य कीमत पर उसकी आवश्यकता से अधिक उपलब्धता। इसके विपरीत, दुर्लभता से अभिप्राय उस स्थिति से है, जिसमें शून्य कीमत पर भी किसी वस्तु की माँग उसकी पूर्ति से अधिक है।

चयन या चुनाव की समस्या
(Problem of Choice)

हम अपनी असीमित आवश्यकताओं को सन्तुष्ट नहीं कर सकते, क्योंकि उन्हें सन्तुष्ट करने वाले साधन सीमित अथवा दुर्लभ होते हैं तथा उनके विभिन्न एवं वैकल्पिक उपयोग होते हैं। अत: हमें अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए यह चुनाव करना पड़ता है कि किन आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करें तथा उनके लिए किन साधनों का प्रयोग करें। अत: आवश्यकताओं के असीमित होने तथा उनकी तुलना में वैकल्पिक उपयोग वाले साधनों के दुर्लभ होने के कारण चुनाव की समस्या उत्पन्न होती है।

चयन (या चुनाव) का अर्थ (Meaning of Choice)

चयन से अभिप्राय उपलब्ध सीमित विकल्पों में से चुनने की प्रक्रिया है। चयन की समस्या इसलिए उत्पन्न होती है, क्योंकि—
(i) आवश्यकताएँ असीमित हैं। (ii) साधन दुर्लभ हैं। (iii) साधनों के वैकल्पिक उपयोग होते हैं।
इस तरह, चयन की आवश्यकता उस समय होती है, जब असीमित आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए वैकल्पिक उपयोग वाले दुर्लभ साधनों का उपयोग किया जाता है। अत: **चयन का मुख्य कारण दुर्लभता ही है।**

दुर्लभता और चयन की परस्पर सम्बद्धता—दुर्लभता तथा चयन परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं। निर्णय लेने की प्रक्रिया के सभी स्तरों पर दुर्लभता और चयन को अलग नहीं किया जा सकता है।

(i) **उपभोक्ता के स्तर पर** (At the Consumer's Level)—**'दुर्लभता'** का अभिप्राय है **'सीमित आय'** और **'चयन'** का अभिप्राय है आय का विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं को क्रय करने के लिए इस प्रकार बंटवारा करना ताकि उपभोक्ता को **'अधिकतम सन्तुष्टि'** प्राप्त हो।

(ii) **उत्पादक के स्तर पर** (At the Producer's Level)—**'दुर्लभता'** का अभिप्राय है उत्पादन के सीमित साधन और 'चयन' का अभिप्राय है विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए उत्पादन के लिए साधनों का इस तरह बंटवारा करना ताकि उत्पादक को अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके।

(iii) **राष्ट्रीय स्तर पर** (At the National Level)—'दुर्लभता' का अभिप्राय है सीमित राष्ट्रीय संसाधन और 'चयन' का अभिप्राय है संसाधनों का इस तरह प्रयोग करना ताकि सामाजिक कल्याण का अधिकतम स्तर प्राप्त हो सके।

(iv) **अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर** (At the International Level)—'दुर्लभता' का अभिप्राय है सीमित अन्तर्राष्ट्रीय संसाधन तथा 'चयन' का अभिप्राय है संसाधनों का इस तरह प्रयोग करना ताकि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके।

संक्षेप में,

1. **'दुर्लभता'** का कारण 'चयन' होता है।
2. **'चयन'** से अभिप्राय है निर्णय लेने की प्रक्रिया।
3. निर्णय लेने की प्रक्रिया का सम्बन्ध है सीमित साधनों के इस प्रकार के प्रयोग किए जाने से, जिससे—
   (i) उपभोक्ता अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करे,
   (ii) उत्पादक अधिकतम लाभ प्राप्त करे,
   (iii) एक राष्ट्र अधिकतम सामाजिक कल्याण प्राप्त करे।

प्र.3. अवसर लागत की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए इसकी विभिन्न परिभाषाएँ दीजिए। अवसर लागत को उत्पादन सम्भावना वक्र की सहायता से स्पष्ट कीजिए।

Making clear its meaning, give different definitions of opportunity cost. Make it clear with the help of production possibility.

***अथवा* अवसर लागत को परिभाषित कीजिए।** **(2021)**

***Or* Define opportunity cost.**

उत्तर

अवसर लागत की अवधारणा
(Concept of Opportunity Cost)

अवसर लागत की अवधारणा अर्थशास्त्र की एक महत्त्वपूर्ण धारणा है। हम जानते हैं कि उत्पादन के साधन तथा आर्थिक पदार्थ सीमित हैं तथा इनके वैकल्पिक प्रयोग होते हैं। अत: जब हम किसी साधन या आर्थिक पदार्थ का उपयोग किसी एक प्रयोग या विकल्प में करते हैं, तो दूसरे प्रयोगों या विकल्पों में उपयोग करने के अवसर का त्याग करना पड़ता है। अत: किसी साधन या आर्थिक पदार्थ के प्रयोग की अवसर लागत दूसरे सर्वश्रेष्ठ प्रयोग में त्याग के मूल्य के बराबर होती है।

इस तरह, अवसर लागत दूसरे सर्वश्रेष्ठ हानि के सन्दर्भ में एक अवसर का चयन करने की लागत है, स्पष्टतया चयन में अवसर लागत शामिल है। अवसर लागत की धारणा को उत्पादन सम्भावना वक्र की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है।

अवसर लागत की परिभाषाएँ (Definitions of Opportunity Cost)

विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गई अवसर लागत की परिभाषाएँ इस प्रकार हैं—

1. **सैम्युअल्सन** (Samuelson) के अनुसार, "अवसर लागत आर्थिक वस्तु या साधन के दूसरे सर्वश्रेष्ठ उपयोग (या अवसर या विकल्प) या त्यागे गए विकल्प का मूल्य है।"
2. **प्रो. बेन्हम** (Benham) के अनुसार, "मुद्रा की वह मात्रा, जिसे कोई विशिष्ट इकाई किसी दूसरे सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक प्रयोग में प्राप्त कर सकती है। कभी-कभी उसकी हस्तान्तरण आय कही जाती है।"
3. **श्रीमती जॉन रॉबिन्सन** (Mrs. John Robinson) के मतानुसार, "वह कीमत जो कि साधन की एक दी हुई इकाई को किसी उद्योग में बनाए रखने के लिए आवश्यक है, उसकी हस्तान्तरण आय (Transfer earnings) या हस्तान्तरण कीमत (Transfer price) कही जाती है।"
4. **प्रो. स्टिगलर** (Stigler) के अनुसार, "लागतों की सामान्य स्वीकृत व्याख्या, वैकल्पिक सिद्धान्त (या अवसर लागत) में निहित है। किसी वस्तु A के उत्पादन में उत्पादक सेवा (productive service) X की लागत, किसी अन्य वस्तु (जैसे B या C आदि) की वह अधिकतम मात्रा है, जो कि X उत्पादित करेगी। अन्य शब्दों में, A वस्तु की अवसर लागत B वस्तु की वह मात्रा है, जो A वस्तु का उत्पादन करने के लिए छोड़ दी गई है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम अवसर लागत की धारणा को कुछ उदाहरणों द्वारा अच्छी तरह स्पष्ट कर सकते हैं। मान लीजिए कि साधनों की एक निश्चित मात्रा द्वारा 100 कुन्तल गेहूँ या 120 कुन्तल चावल का उत्पादन किया जा सकता है। यदि साधनों द्वारा केवल गेहूँ का उत्पादन किया जाता है, तो 100 कुन्तल गेहूँ की अवसर लागत 120 कुन्तल चावल होगी।

रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण—अवसर लागत की व्याख्या रेखाचित्र 1 की सहायता से भी की जा सकती है। चित्र में रेखा AB दी हुई समयावधि में दो वस्तुओं X तथा Y के विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करती है, जिसका कि अर्थव्यवस्था में उत्पादन होता है। किसी समय अर्थव्यवस्था में रेखा AB के बिन्दु P पर X वस्तु की OM मात्रा तथा वस्तु Y की OR मात्रा का उत्पादन हो रहा है।

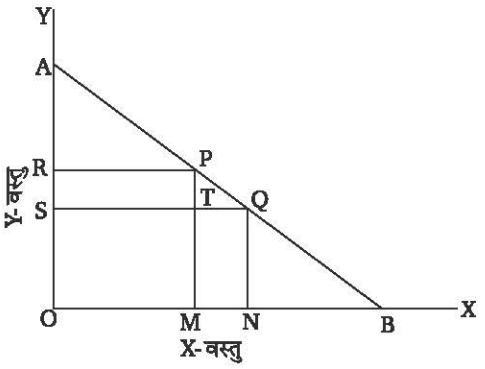

चित्र 1

इसी तरह बिन्दु Q पर X वस्तु ON मात्रा तथा Y वस्तु की OS मात्रा का उत्पादन होता है। यदि अर्थव्यवस्था में उत्पादन P बिन्दु से Q बिन्दु पर आता है, तो उसका अर्थ यह हुआ कि वस्तु X की अतिरिक्त मात्रा MN या TQ का उत्पादन करने के लिए वस्तु Y की मात्रा में RS या PT की कमी करनी होगी अर्थात् त्याग करना होगा अर्थात् वस्तु X की अतिरिक्त इकाई MN की अवसर लागत वस्तु Y की मात्रा RS होगी।

पुन: यदि उत्पादन बिन्दु Q से बदल कर बिन्दु P पर होता है, तो वस्तु Y की अतिरिक्त मात्रा SR प्राप्त करने के लिए वस्तु X की मात्रा NM का परित्याग करना होगा। दूसरी दशा में, Y वस्तु की अतिरिक्त इकाई SR का अवसर लागत X वस्तु की NM मात्रा होगी।

उपर्युक्त स्पष्टीकरण से पूर्व कुछ मान्यताओं को इंगित करना आवश्यक होगा। यथा—

(i) एक दी हुई समयावधि में उत्पादन के साधनों की मात्रा निश्चित रहती है।

(ii) अर्थव्यवस्था में दो वस्तुओं X तथा Y का उत्पादन किया जा रहा है।
(iii) अर्थव्यवस्था में पूर्ण प्रतियोगिता तथा पूर्ण रोजगार की स्थिति है।

अवसर लागत तथा उत्पादन सम्भावना वक्र की धारणा
(Opportunity Cost and Concept of Production Possibility Curve)

अवसर लागत की धारणा को उत्पादन सम्भावना वक्र की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र 2 में उत्पादन सम्भावना वक्र AB को प्रकट किया गया है। एक दिए हुए साधन की सहायता से Y-अक्ष पर गेहूँ का तथा X-अक्ष पर चने का उत्पादन मूल्य प्रकट किया गया है। यह चित्र इन मान्यताओं पर बनाया गया है कि (i) उत्पादन तकनीक स्थिर है, (ii) साधनों का पूर्ण उपयोग हो रहा है। चित्र 2 से ज्ञात होता है कि साधनों; जैसे—भूमि, श्रम और पूँजी का एक विशेष मात्रा में प्रयोग करने से गेहूँ का उत्पादन ₹ 8,000 मूल्य का और चने का उत्पादन ₹ 6,000 मूल्य का हो रहा है। यदि साधनों का प्रयोग गेहूँ के उत्पादन के लिए किया जाएगा, तो गेहूँ की अवसर लागत ₹ 6,000 होगी, क्योंकि यह दूसरे सर्वश्रेष्ठ प्रयोग अर्थात् चने की उत्पादन लागत है।

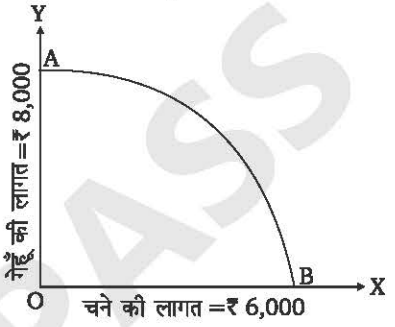

चित्र 2

संक्षेप में, किसी साधन के एक विशेष काम में प्रयोग किए जाने की अवसर लागत उस साधन का वह मूल्य है, जो उसे अपने दूसरे सर्वश्रेष्ठ विकल्प में प्राप्त हो सकता है। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि अवसर लागत की धारणा का आधार त्यागे जाने वाली वस्तु या अवसर का विकल्प है। उदाहरण के लिए, एक फर्म अपने स्वयं स्वामित्व (Self Owned) तथा स्वयं प्रयोग (Self Employed) वाले साधनों अर्थात् अपने निजी साधनों के लिए कोई भुगतान नहीं करती, परन्तु उनकी भी अवसर लागत होती है, क्योंकि उनके द्वारा किसी एक वस्तु का, उत्पादन करने के लिए किसी दूसरी वस्तु का, जिसका उनकी सहायता से उत्पादन हो सकता था, त्याग करना पड़ता है।

प्र.4. उत्पादन सम्भावना वक्र की सहायता से केन्द्रीय समस्याओं की व्याख्या कीजिए।
Explain central problems with the help of production possibility curve.

उत्तर

उत्पादन संभावना वक्र तथा केन्द्रीय समस्याएँ
(Production Possibility Curve and Central Problems)

1. किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाए तथा कितनी मात्रा में किया जाए?
(What to Produce and How Much to Produce?)

संलग्न चित्र 1 से ज्ञात होता है कि यदि सारे साधन गेहूँ के उत्पादन पर खर्च कर दिये जायें जैसा बिंदु D से ज्ञात होता है तो गेहूँ का उत्पादन 12 टन किया जा सकेगा इसके विपरीत यदि सारे साधन कपड़े के उत्पादन पर खर्च कर दिए जाएँगे तो जैसा बिंदु A से ज्ञात होता है कपड़े की 24 गांठों का उत्पादन किया जा सकेगा। उत्पादन संभावना वक्र AD पर गेहूँ तथा कपड़े के वे सभी संभव संयोग आते हैं जिनका उस समय उत्पादन किया जाता है जब साधनों का पूरी तरह से कुशलतापूर्वक उपयोग किया जा रहा है। अन्य शब्दों में, यदि भौतिक तथा मानवीय साधनों का पूर्ण उपयोग किया जाए तो गेहूँ तथा कपड़े का उत्पादन संभावना वक्र पर ही होगा तथा इस रेखा के किसी भी बिंदु जैसे B, C द्वारा प्रकट होगा। B बिंदु द्वारा ज्ञात होता है कि कपड़े की 20 गांठों तथा 4 टन गेहूँ का उत्पादन होगा। बिंदु C से ज्ञात होता है कि कपड़े की 8 गांठों तथा 12 टन गेहूँ का उत्पादन होगा। इसका अभिप्राय यह है कि गेहूँ का अधिक उत्पादन करने के लिए कपड़े के उत्पादन का त्याग करना पड़ेगा क्योंकि उत्पादन के साधन सीमित हैं। परिणामस्वरूप उत्पादन के साधनों के विभिन्न प्रयोगों में बंटवारे की समस्या उत्पन्न होती है।

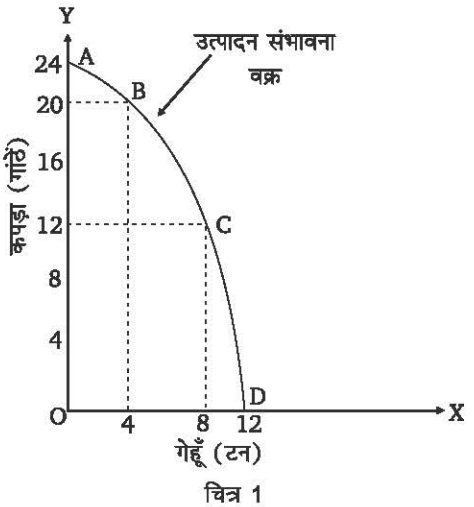

चित्र 1

2. उत्पादन कैसे करना है? (How to Produce?)

अर्थव्यवस्था की दूसरी केन्द्रीय समस्या यह है कि उत्पादन कैसे करना है? इस समस्या का संबंध उत्पादन की विधि या तकनीक के चुनाव से है। इस स्थिति को चित्र 2 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र 2 से ज्ञात होता है कि यदि अर्थव्यवस्था एक ऐसी तकनीक का प्रयोग करेगी जो उत्पादन के सभी साधनों का प्रयोग करती है, परन्तु अकुशल है तो उत्पादन की मात्रा बिंदु E द्वारा प्रकट की जाएगी। यह बिन्दु E, उत्पादन संभावना वक्र PP के अन्दर स्थित है। इससे सिद्ध होता है कि अकुशल तकनीक का प्रयोग करने के फलस्वरूप उत्पादन कम होता है। यदि उत्पादन की कुशल तकनीक का प्रयोग किया जाएगा तो या तो किसी एक वस्तु का अधिक उत्पादन संभव हो सकेगा जैसा कि बिंदु A या C से ज्ञात होता है या दोनों वस्तुओं का उत्पादन अधिक किया जा सकेगा जैसा कि बिंदु B से ज्ञात होता है।

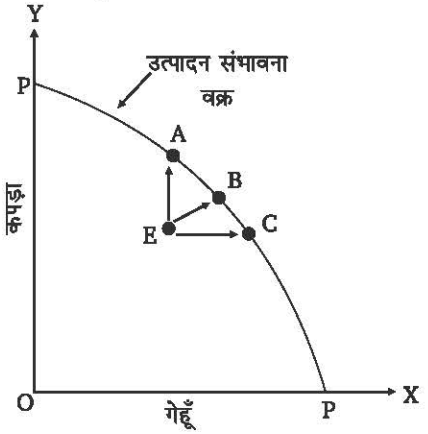

चित्र 2

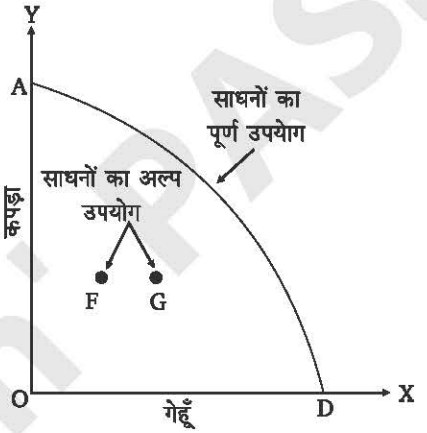

चित्र 3

3. साधनों का पूर्ण उपयोग (Fuller Utilisation of Resources)

साधनों के पूर्ण उपयोग की समस्या को चित्र 3 द्वारा स्पष्ट किया गया है। जब AD उत्पादन संभावना वक्र के किसी बिंदु द्वारा प्रकट किये गये संयोगों का उत्पादन किया जाता है तब साधनों का पूर्ण उपयोग होता है। इसके विपरीत यदि उत्पादन संभावना वक्र AD के अन्दर किसी बिंदु जैसे F या G पर उत्पादन किया जाता है तो यह साधनों के अल्प उपयोग की स्थिति होगी अर्थात् साधनों का अल्प उपयोग किया जाएगा।

4. साधनों का विकास (Growth Resources)

साधनों का विकास तभी संभव होता है जब समाज उपलब्ध साधनों में वृद्धि कर सके या उत्पादकता में वृद्धि हो। इसके फलस्वरूप, जैसा कि चित्र 4 से ज्ञात होता है, उत्पादन संभावना AD दाई ओर खिसक कर PP हो जाएगा। उत्पादन संभावना वक्र दाईं ओर खिसक कर साधनों में होने वाली वृद्धि को प्रकट करता है। PP वक्र के द्वारा प्रकट संयोग, AD वक्र के संयोगों की तुलना में कपड़े तथा गेहूँ की अधिक मात्रा को प्रकट कर रहे हैं। इस प्रकार PP वक्र आर्थिक विकास को प्रकट करता है।

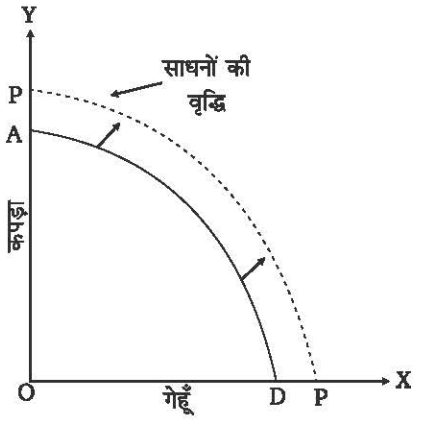

चित्र 4

प्र.5. माँग के विभिन्न प्रकारों का सविस्तार उल्लेख कीजिए।
Explain in detail different kinds of demand.

उत्तर

माँग के प्रकार
(Kinds of Demand)

किसी वस्तु की माँगी जाने वाली मात्रा मुख्य रूप से तीन बातों पर निर्भर करती है—

(1) वस्तु की कीमत, (2) उपभोक्ता की आय तथा (3) सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतें।
अत: इन बातों को ध्यान में रखते हुए अर्थशास्त्रियों ने माँग के तीन प्रकार बताए हैं—1. कीमत माँग, 2. आय माँग, तथा 3. आड़ी या तिरछी माँग।

1. कीमत माँग (Price Demand)

अन्य बातें समान रहने पर कीमत माँग वह माँग है, जिसे एक उपभोक्ता एक निश्चित समय में विभिन्न कल्पित मूल्यों पर खरीदने को तैयार रहता है। यहाँ 'अन्य बातें समान रहें' शब्द का अर्थ यह है कि जब उपभोक्ता किसी वस्तु की माँग करता है, तब उसकी आय (Y), सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतों (p_r) तथा रुचि एवं अधिमान फैशन, आदि में परिवर्तन नहीं होना चाहिए। संक्षेप में, वस्तु की माँग उसकी कीमत पर ही निर्भर करती है। दूसरे शब्दों में, X-वस्तु की माँग X-वस्तु की कीमत का फलन है, $D_x = f(p_x)$। कीमत माँग की व्याख्या को चित्र 1 से स्पष्ट किया गया है। चित्र में DD माँग रेखा बाएं से दाएं नीचे की ओर गिरती है। इसका ढाल ऋणात्मक है। यही कारण है कि कीमत बढ़ने पर माँग घटती है और कीमत घटने पर माँग बढ़ती है। चित्र के अनुसार OP_1 कीमत पर X-वस्तु की माँग ON है। जब X-वस्तु की कीमत गिरकर OP होती है, तब उसकी माँग बढ़कर ON_1 है। वस्तु की कीमत में कमी से माँग-वक्र का E_1 बिन्दु खिसककर E पर आता है। यह व्याख्या व्यक्तिगत माँग के सन्दर्भ में है। यदि इस प्रकार की सभी व्यक्तिगत माँगों को जोड़ दिया जाय, तो यह बाजार-माँग कहलाएगी।

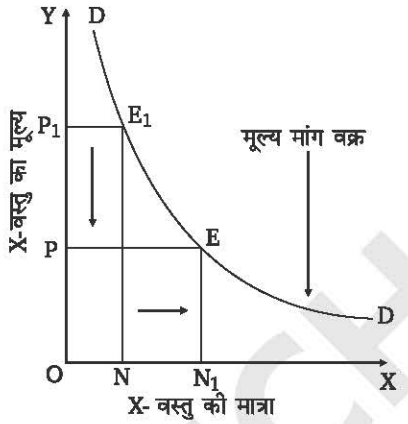

चित्र 1

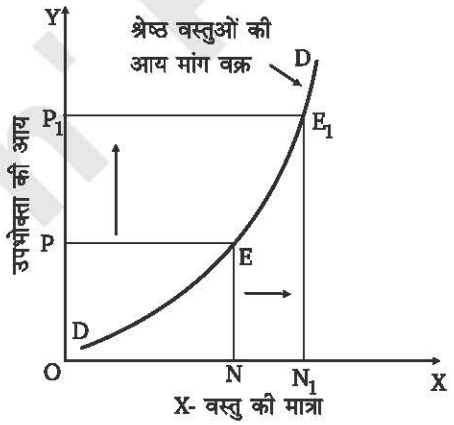

चित्र 2

2. आय माँग (Income Demand)

आय माँग का अभिप्राय वस्तुओं और सेवाओं की उन मात्राओं से लगाया जाता है, जो किसी समयावधि में, अन्य बातों के समान रहने पर, उपभोक्ता अपनी विभिन्न आय-स्तरों पर क्रय करने की तत्परता दिखाता है। यहाँ यह कहा जाएगा कि X-वस्तु की माँग उपभोक्ता की आय Y का फलन है— $D_X = f(Y)$, यदि p, p_r तथा T में परिवर्तन नहीं होता। आय माँग के अन्तर्गत दो प्रकार की वस्तुओं को ध्यान में रखकर अध्ययन किया गया है। प्राय: ये वस्तुएँ—(i) श्रेष्ठ (Superior), तथा (ii) हीन या निकृष्ट (Inferior) हो सकती हैं।

(i) **श्रेष्ठ** (Superior) वस्तुओं के सम्बन्ध में जो माँग-वक्र प्राप्त होगा उसका ढाल धनात्मक (Positive) होगा अर्थात् आय में वृद्धि के साथ-साथ माँग में भी वृद्धि होती है। इस प्रकार व्यक्ति की आय का सीधा सम्बन्ध वस्तु की माँग से होता है, फलत: माँग-वक्र बाएं से दाएं ऊपर की ओर उठता है। इस व्याख्या को

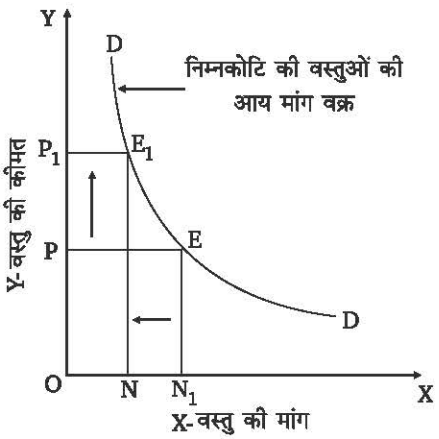

चित्र 3

चित्र 2 से स्पष्ट किया गया है। चित्रानुसार, जब उपभोक्ता की आय OP है तब X-वस्तु की माँग ON है, परन्तु अब आय बढ़कर OP_1 हो जाती है तब माँग ON से बढ़कर ON_1 हो जाती है। बढी हई माँग को चित्र में E_1 से दिखाया गया है।

(ii) **हीन** (Inferior) वस्तुओं के सम्बन्ध में माँग-वक्र का ढाल ऋणात्मक (Negative) होगा, जैसा कि गिफिन-वस्तुओं (Giffin goods) के सम्बन्ध में होता है। ज्यों-ज्यों उपभोक्ता की आय बढ़ती है, त्यों-त्यों वह ऐसी वस्तुओं की माँग को घटा देता है। इस स्थिति को चित्र 3 से स्पष्ट किया गया है। चित्र में DD माँग रेखा है। जब उपभोक्ता की आय OP है तब वह X-वस्तु की ON_1 मात्रा क्रय करता है। अब आय बढ़कर OP_1 होती है, पर वह X-वस्तु की माँग घटाकर ON कर देता है। अत: हीन वस्तुओं के लिए आय प्रभाव ऋणात्मक होता है।

3. आड़ी या तिरछी माँग (Cross Demand)

किसी वस्तु की आड़ी माँग उस वस्तु की उन मात्राओं को बताती है जो उपभोक्ता एक निश्चित समय में उस वस्तु की कीमत तथा आय के समान रहने पर उस वस्तु विशेष से सम्बन्धित किसी अन्य वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर खरीदने को तैयार है। यहाँ माँग फलन इस प्रकार लिखा जाता है $D = f(p_r)$। इस प्रकार की माँग स्थानापन्न वस्तुओं (Substitute goods) अथवा पूरक वस्तुओं (Complementary goods) के सन्दर्भ में पाई जाती है। प्रतिस्थापन वस्तुएँ वे हैं जो एक-दूसरे के बदले में प्रयोग में लायी जाती हैं, जबकि पूरक वस्तुएँ वे हैं, जो किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक साथ प्रयोग की जाती हैं। नीचे दोनों की अलग-अलग व्याख्या दी गई है।

(i) **स्थानापन्न वस्तुएँ**—जिन वस्तुओं का एक-दूसरे के स्थान पर प्रयोग किया जाता है उन्हें स्थानापन्न वस्तुएँ कहा जाता है। उदाहरण के लिए, गुड़ चीनी का स्थानापन्न है। माना चीनी (Y) की कीमत बढ़ती है, तो गुड़ (X) की माँग बढ़ेगी, क्योंकि चीनी की अपेक्षा गुड़ सस्ता है। यही कारण है कि स्थानापन्न वस्तु की माँग वक्र का ढाल धनात्मक होता है। चित्र 4 इस बात को स्पष्ट करता है। चित्र में DD स्थानापन्न माँग-वक्र है जो X-वस्तु की माँग तथा Y-वस्तु की कीमत में सीधा सम्बन्ध बताता है। यदि Y-वस्तु की कीमत OPY से बढ़कर OP_1Y होती है, तब X-वस्तु की माँग ON से बढ़कर ON_1 होती है।

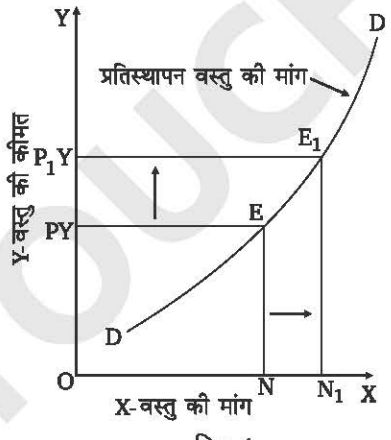

चित्र 4

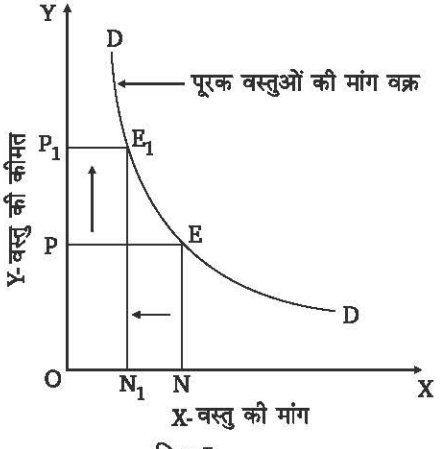

चित्र 5

(ii) **पूरक वस्तुएँ**—पूरक वस्तुओं के सम्बन्ध में स्थानापन्न वस्तुओं से विपरीत बात होती है। यदि किसी एक वस्तु की कीमत में वृद्धि होती है, तो दूसरी पूरक वस्तु की माँग घट जाती है। उदाहरण के लिए, क्रिकेट बैट के मूल्य में वृद्धि के कारण क्रिकेट बॉल की माँग कम हो जाती है, क्योंकि बिना बैट के बॉल का अस्तित्व नहीं रह जाता है। चित्र 5 से इस बात को स्पष्ट किया गया है। चित्र में DD पूरक वस्तुओं का माँग-वक्र है। Y-वस्तु की कीमत OP से बढ़कर OP_1 होने पर X-पूरक वस्तु की माँग ON से घटकर ON_1 हो जाती है। इस प्रकार पूरक वस्तुओं के माँग-वक्र का ढाल ऋणात्मक होता है, जो उस वस्तु की माँग तथा पूरक वस्तु की कीमत में विपरीत सम्बन्ध बताता है।

माँग के अन्य प्रकार—माँग के कुछ अन्य प्रकार निम्न हैं—

1. **संयुक्त माँग**—जब कभी एक उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक साथ दो वस्तुओं की माँग की जाती है, तो उसे संयुक्त माँग कहा जाता है। उदाहरणार्थ, रोटी और मक्खन की माँग, क्रिकेट बैट व बॉल की माँग, आदि।
2. **व्युत्पन्न माँग**—जब किसी वस्तु की माँग के कारण अन्य किसी वस्तु या सेवा की माँग उत्पन्न होती है, तो उसे व्युत्पन्न माँग कहा जाता है। उदाहरण के लिए, श्रम की माँग को व्युत्पन्न माँग कहा जाता है क्योंकि श्रम की सहायता से अन्य वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है।
3. **सामूहिक माँग**—सामूहिक माँग का आशय ऐसी वस्तुओं से है जिनको एक से अधिक उपयोगों में लगाया जा सकता है। जैसे—कोयला व बिजली, सामूहिक माँग के उदाहरण हो सकते हैं, क्योंकि इनका प्रयोग विभिन्न कामों में हो सकता है।

प्र.6. माँग के नियम को विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने किस प्रकार परिभाषित किया है? माँग के नियम के लागू होने के कारणों तथा इस नियम के अपवादों की विवेचना कीजिए।

How have different economists defined Law of Demand. Also, write the causes of its application and exceptions to this law.

उत्तर

माँग का नियम
(Law of Demand)

किसी वस्तु की कीमत तथा उसकी माँगी गई मात्रा के सम्बन्ध को माँग या माँग का नियम कहा जाता है। किसी वस्तु की कीमत व उसकी माँग के बीच विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है। माँग के नियम के अनुसार, अन्य बातें समान रहने पर वस्तु की कीमत घटने से इसकी माँग बढ़ती है और कीमत बढ़ने से माँग घटती है।

परिभाषाएँ (Definitions)—माँग के नियम के सन्दर्भ में प्रमुख परिभाषाएँ निम्न हैं—

1. **मार्शल** के अनुसार, "माँग के नियम का सामान्य कथन यह है कि वस्तुओं की अधिक मात्रा की बिक्री के लिए उसके मूल्यों में कमी होनी चाहिए ताकि उस वस्तु के क्रेता अधिक हो सकें। दूसरे शब्दों में, मूल्य गिरने से माँग बढ़ती है और मूल्य बढ़ने से माँग घटती है।"
2. **सैम्युलसन** (Samuelson) के अनुसार, "अन्य बातों के समान रहने पर यदि किसी वस्तु की अधिक मात्राएँ बाजार में आती हैं, तो वे वस्तुएँ कम मूल्य पर ही बेची जाएँगी।

परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि माँग का नियम कीमत के परिवर्तन के परिणामस्वरूप केवल माँग के परिवर्तन की दिशा का बोध कराता है, मात्रा का नहीं।

माँग के नियम की मान्यताएँ (Assumptions of the Law of Demand)—माँग के नियम की प्रमुख मान्यताएँ निम्न हैं—

1. उपभोक्ता की आय में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होना चाहिए।
2. उपभोक्ता के स्वभाव तथा रुचि में भी परिवर्तन नहीं होना चाहिए।
3. अन्य सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतों में भी किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होना चाहिए अर्थात् वे सब समान रहें।
4. वस्तु को क्रय करते समय उस वस्तु की स्थानापन्न वस्तु (substitutes) को ध्यान में नहीं रखा जाता है।
5. जिन वस्तुओं को क्रय किया जा रहा है, वे वस्तुएँ प्रतिष्ठारक्षक नहीं होनी चाहिए।
6. उपभोक्ता की कुल सम्पत्ति स्थिर रहनी चाहिए।
7. जनसंख्या में परिवर्तन नहीं होना चाहिए।

माँग के नियम के लागू होने के कारण
(Causes of the Application of Law of Demand)

माँग-वक्र ऊपर से नीचे दाईं ओर को झुकता है अर्थात् इसका ढाल ऋणात्मक (Negative) होता है। ऋणात्मक ढाल प्रदर्शित चरों (Variables) अर्थात् कीमत तथा माँग के विपरीत सम्बन्ध को प्रकट करता है। इस बात को चित्र 1 से स्पष्ट किया गया है। चित्र बताता है कि जब X-वस्तु की कीमत OP है तो उसकी माँग ON है लेकिन जब कीमत घटकर OP_1 होती है तब उसकी माँग बढ़कर ON_1 हो जाती है। इस चित्र को उल्टा भी पढ़ा जा सकता है अर्थात् यदि कीमत OP_1 है तो माँग ON_1 है लेकिन कीमत के बढ़कर OP हो जाने से माँग घटकर ON रह जाती है।

अब प्रश्न उठता है कि ऐसा क्यों होता है? चूँकि माँग वक्र का ऋणात्मक होना माँग के नियम को प्रकट करता है इसलिए माँग के नियम के लागू होने तथा माँग-वक्र के नीचे की ओर झुकने के कारण वही हैं। संक्षेप में, माँग-वक्र के नीचे की ओर झुकने के प्रमुख निम्नलिखित कारण हैं—

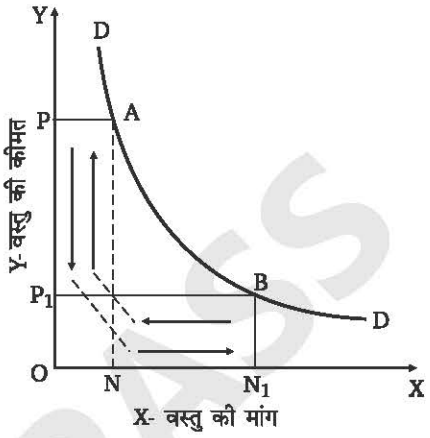

चित्र 1

1. **सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम**—माँग का नियम उपयोगिता ह्रास नियम पर आधारित है। कोई भी उपभोक्ता वस्तु की सीमान्त उपयोगिता से अधिक मूल्य नहीं देना चाहता है। उसके द्वारा ज्यों-ज्यों वस्तु की अधिक इकाइयाँ क्रय की जाएँगी उन इकाइयों से मिलने वाली उपयोगिता घटेगी। अत: मूल्य गिरने पर ही वस्तुएँ अधिक क्रय की जाएँगी। इसके विपरीत भी सही होगा।
2. **प्रतिस्थापन प्रभाव**—माँग रेखा का बाएँ से दाएँ ओर गिरने का एक अन्य कारण प्रतिस्थापन प्रभाव का लागू होना है। मूल्य और माँग का ऋणात्मक सम्बन्ध प्रतिस्थापन प्रभाव से है। जब किसी आवश्यकता की पूर्ति दो या दो से अधिक वस्तुओं से की जाती है, तब उसे प्रतिस्थापन प्रभाव (substitution effect) कहा जाता है। उदाहरण के लिए, यदि मिट्टी के तेल की कीमत में कमी होती है, परन्तु लकड़ी व कोयले की कीमत पूर्ववत् रहती है, तो लोग खाना बनाने के लिए लकड़ी व कोयले के स्थान पर मिट्टी के तेल का प्रतिस्थापन करने लगेंगे, फलत: मिट्टी के तेल की माँग पहले से अधिक की जाएगी। इस प्रकार प्रतिस्थापन-प्रभाव से वस्तु की माँग बढ़ती है, जबकि कीमत बढ़ने पर उसकी माँग घटती है।
3. **आय प्रभाव**—वस्तु के मूल्य में कमी होने से उपभोक्ता की वास्तविक आय में वृद्धि होती है, क्योंकि अब उपभोक्ता पहले से अधिक वस्तुओं का उपभोग कर सकता है या उसे पूर्ववत् मात्रा को क्रय करने के लिए कम द्रव्य व्यय करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, तेल का मूल्य ₹ 15 प्रति किलो से घटकर ₹ 10 प्रति किलो हो जाता है, तो उपभोक्ता अब तेल को ₹ 10 में क्रय कर लेगा और उसे ₹ 5 की बचत होगी। यदि उपभोक्ता इस रुपए को भी तेल में खर्च करे, तो वह डेढ़ किलो तेल क्रय कर लेगा। तेल की माँग में जो अतिरिक्त वृद्धि हुई है वह आय-प्रभाव के कारण है, जिसे आय-प्रभाव (Income effect) कहा जाएगा। कभी-कभी वस्तु के मूल्य में इतनी अधिक वृद्धि होती है कि उपभोक्ता उस वस्तु को क्रय नहीं कर पाता है, जिससे माँग घट जाती है।
4. **उपभोक्ताओं की संख्या में परिवर्तन**—जब कभी किसी वस्तु के मूल्य में कमी होती है, तो उस वस्तु का उपभोग वे लोग भी करने लगते हैं जो पहले ऊँचे मूल्यों के कारण उपभोग नहीं कर पाते थे और मूल्य वृद्धि के कारण उपभोक्ताओं की संख्या में वृद्धि या कमी के कारण माँग में वृद्धि या कमी होती है।
5. **विभिन्न प्रयोग**—अधिकतर वस्तुएँ ऐसी होती हैं जिनके विभिन्न प्रयोग होते हैं, लेकिन वे सभी प्रयोग समान महत्त्व के नहीं होते हैं। जब किसी वस्तु की कीमत घटती है, तब उस वस्तु का प्रयोग कम महत्त्व वाले उपयोगों में भी किया जाता है और माँग बढ़ने लगती है। इसके विपरीत, कीमत के बढ़ जाने से उसका प्रयोग अधिक महत्त्वपूर्ण उपयोगों तक ही सीमित रह जाता है तथा उसकी माँग में कमी आ जाती है।

प्र.7. माँग की कीमत लोच की विभिन्न श्रेणियों का संक्षिप्त विवेचन कीजिए।

Give a brief discussion of the Degrees of Price Elasticity of Demand.

***अथवा* माँग की कीमत लोच के प्रकारों का वर्णन कीजिए।** **(2021)**

***Or* Describe different kinds of Price Demand.**

उत्तर

माँग की कीमत लोच की श्रेणियाँ
(Degrees of Price Elasticity of Demand)

कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप होने वाली माँग की प्रतिक्रियात्मकता के आधार पर माँग की लोच को पाँच श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—

1. **सापेक्षत: लोचदार माँग**—जब किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने के फलस्वरूप उसकी माँग में अधिक आनुपातिक परिवर्तन हो जाता है तब ऐसी वस्तु की माँग को सापेक्षत: लोचदार माँग कहते हैं। अर्थात्

$$\frac{\Delta Q}{Q} > \frac{\Delta P}{P}$$

चित्र 1 में P बिन्दु पर OC कीमत तथा OA वस्तु मात्रा के साथ उपभोक्ता का कुल व्यय $OCPA$ आयत क्षेत्र के बराबर है। कीमत के घटकर OF हो जाने पर उपभोक्ता वस्तु की माँग OB के साथ $OFQB$ क्षेत्र के बराबर कुल व्यय करता है अर्थात् कीमत में कमी के कारण जहाँ एक ओर उपभोक्ता के कुल व्यय में $CPTF$ आयत क्षेत्र के बराबर कमी हो रही है वहीं $TQBA$ के बराबर वृद्धि हो रही है।

दूसरे शब्दों में, कीमत में कमी के कारण उपभोक्ता के कुल व्यय में वृद्धि हो रही है अर्थात् कीमत घटने पर उपभोक्ता की माँग में सापेक्षिक रूप से अधिक परिवर्तन हो रहा है। अत: माँग की लोच इकाई से अधिक है।

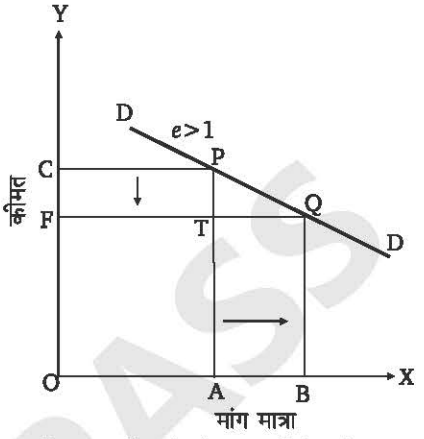

चित्र 1. माँग की लोच इकाई से अधिक

2. **सापेक्षत: बेलोचदार माँग**—जब किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप उसकी माँग में कम आनुपातिक परिवर्तन होता है तो ऐसी वस्तु की माँग को सापेक्षत: बेलोच माँग कहते हैं अर्थात्

$$\frac{\Delta Q}{Q} < \frac{\Delta P}{P}$$

चित्र 2 में माँग वक्र सापेक्षत: बेलोचदार है क्योंकि कीमत में CF कमी होने पर माँग में केवल AB के बराबर वृद्धि होती है इसके कारण माँग की लोच सापेक्षत: बेलोच हो जाती है।

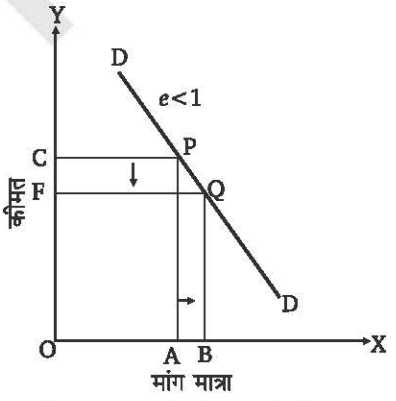

चित्र 2. माँग की लोच इकाई से कम

3. **इकाई लोचदार माँग**—जब किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के परिणामस्वरूप उसकी माँग में भी उसी अनुपात में परिवर्तन होता है तब ऐसी वस्तु की माँग को इकाई लोचदार माँग कहा जाता है। अर्थात्

$$\frac{\Delta Q}{Q} = \frac{\Delta P}{P}$$

चित्र 3 में CF कीमत में कमी होने पर माँग में AB वृद्धि होती है। चित्र से स्पष्ट है कि माँग में परिवर्तन का अनुपात कीमत में परिवर्तन के अनुपात के बराबर है। अत: माँग की लोच इकाई के बराबर है।

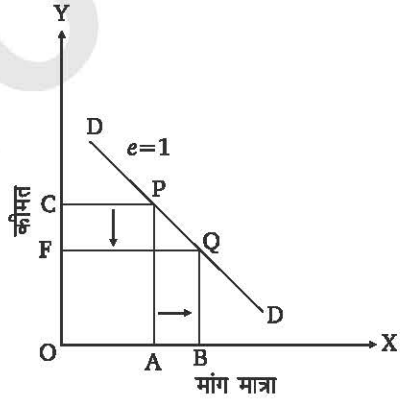

चित्र 3. माँग की लोच इकाई के बराबर

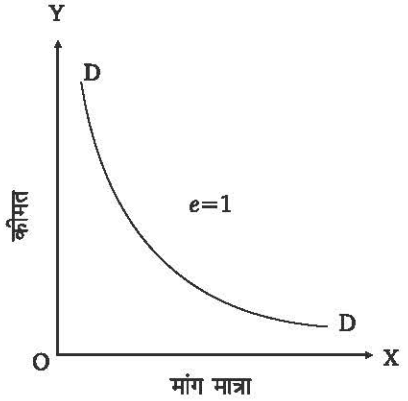

चित्र 4. आयताकार अतिपरवलय

TOUCH 'n PASS

आयताकार अतिपरवलय (Rectangular Hyperbola) के सन्दर्भ में माँग की कीमत लोच सदैव इकाई के बराबर होती है। जब माँग वक्र अतिपरवलयाकार होता है, तो माँग वक्र के सभी बिन्दुओं पर माँग की लोच इकाई के बराबर होती है। अतिपरवलयाकार वक्र वह वक्र है, जिसके अन्तर्गत बनाए गए सभी चतुर्भुजों का क्षेत्रफल बराबर होता है। चित्र 4 में DD आयताकार अतिपरवलय है जो अक्षों की ओर बढ़ता तो है, किन्तु कभी अक्षों को स्पर्श नहीं करता। इस वक्र के प्रत्येक बिन्दु पर कुल व्यय सदैव स्थिर रहता है जिसके कारण आयताकार अतिपरवलय के लिए माँग की लोच इकाई के बराबर होती है।

4. **पूर्णतः बेलोचदार माँग**—जब किसी वस्तु की कीमत के परिवर्तन के फलस्वरूप उसकी माँग में कोई परिवर्तन न हो, तो ऐसी माँग को पूर्णत: बेलोच माँग कहते हैं। अर्थात्

माँग का आनुपातिक परिवर्तन = 0

$$\frac{\Delta Q}{Q} = 0$$

चित्र 5 में OC कीमत पर OD माँग है तथा कीमत में कमी होने पर भी माँग OD ही रहती है। दूसरे शब्दों में, कीमत में कमी या वृद्धि का वस्तु की माँग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है जिसके कारण वस्तु की माँग पूर्णत: बेलोचदार हो जाती है।

पूर्णत: बेलोचदार माँग वक्र Y अक्ष के समानान्तर एक खड़ी रेखा के रूप में होता है।

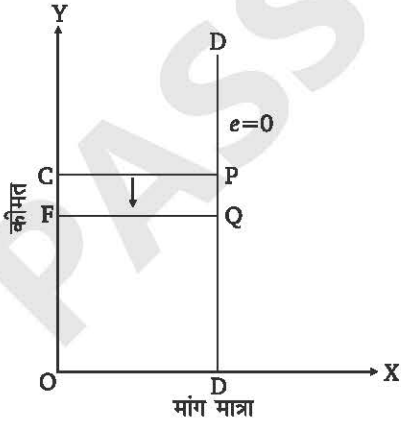

चित्र 5. पूर्णतः बेलोचदार माँग

5. **पूर्णतया लोचदार माँग**—जब किसी वस्तु की कीमत में नगण्य परिवर्तन (अथवा कीमत स्थिर रहने पर भी) होने पर भी माँग में अत्यधिक परिवर्तन होता रहता है तब ऐसी वस्तु की माँग को पूर्णतया लोचदार माँग कहा जाता है। ऐसी माँग की दशा में वस्तु की अति सूक्ष्म कीमत वृद्धि उसकी माँग को शून्य कर देती है तथा कीमत में अति सूक्ष्म कमी माँग में इतना अत्यधिक विस्तार करती है कि कोई अन्य विक्रेता घटी हुई कीमत पर इस माँग को सन्तुष्ट नहीं कर पाता। व्यावहारिक एवं वास्तविक जीवन में वस्तुत: किसी वस्तु की माँग पूर्णत: लोचदार माँग नहीं होती। पूर्णत: लोचदार माँग की दशा में

कीमत का आनुपातिक परिवर्तन = 0 $\Rightarrow$ $\frac{\Delta P}{P} = 0$

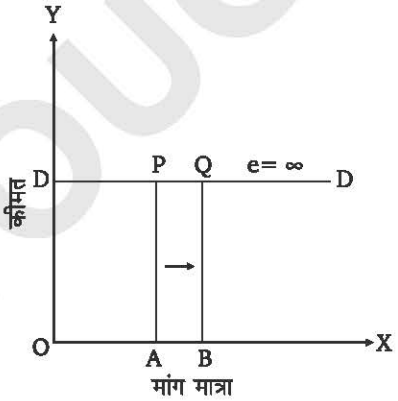

चित्र 6. पूर्णतः लोचदार माँग

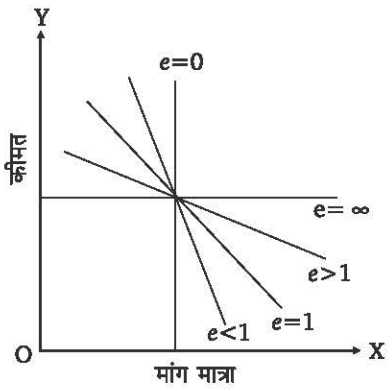

चित्र 7. माँग की विभिन्न लोच

चित्र 6 में पूर्णतया लोचदार माँग वक्र DD प्रदर्शित किया गया है। चित्र में वस्तु कीमत OD पर वस्तु की माँग OA है। OD कीमत पर वस्तु की माँग बढ़कर OB हो जाती है। यही कारण है कि पूर्णतया लोचदार माँग वक्र X अक्ष के समानान्तर एक पड़ी रेखा के रूप में होता है।

माँग की कीमत लोच की पाँचों श्रेणियों को एक ही चित्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है (देखें चित्र 7)।

TOUCH 'n PASS

प्र.8. माँग की कीमत लोच को मापने की विभिन्न विधियों के नाम लिखिए तथा किन्हीं दो विधियों को चित्र की सहायता से स्पष्ट कीजिए।

Name different methods to measure Price Elasticity of Demand and make any two with the help of diagrams.

***अथवा* माँग की कीमत लोच का मापन कैसे होता है? (2021)**

***Or* How is Price Elasticity of Demand?**

उत्तर

माँग की कीमत लोच को मापने की विधियाँ
(Methods of Measuring Price Elasticity of Demand)

माँग की लोच को मापने की रीतियाँ निम्नलिखित हैं—

1. कुल आगम अथवा व्यय रीति, 2. ज्यामितीय या बिन्दु रीति, 3. चाप लोच विधि, 4. माँग की लोच की गणितीय विधि।

इनमें से दो प्रमुख विधियों का वर्णन अग्र प्रकार है—

1. कुल आगम अथवा व्यय रीति (Total Outlay or Expenditure Method)

यह रीति **मार्शल** द्वारा प्रतिपादित की गई है। **मार्शल** के अनुसार–माँग वक्र पर वस्तु की माँग में विस्तार अथवा संकुचन उसकी कीमत के परिवर्तन के सापेक्ष होता है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि यह परिवर्तन कीमत के अनुपात में ही हो। एक ही माँग वक्र पर कीमत के परिवर्तन के सापेक्ष वस्तु की माँग में कितना परिवर्तन होगा, यही माँग की लोच की माप है। कीमत में परिवर्तन के सापेक्ष माँग में परिवर्तन का अर्थ है उपभोक्ता के कुल व्यय में परिवर्तन। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि माँग की लोच उपभोक्ता के कुल व्यय परिवर्तन की माप है।

$$\text{कुल व्यय} = \text{कुल आगम} = \text{वस्तु की कीमत} \times \text{वस्तु की माँग}$$

किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन उपर्युक्त सूत्रानुसार कुल व्यय में भी परिवर्तन करेगा।

कुल व्यय के आधार पर माँग की लोच को निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है—

(A) यदि कीमत में वृद्धि या कमी होने पर भी कुल व्यय स्थिर रहता है, तब माँग की लोच इकाई के बराबर होती है।

(B) यदि कीमत के घटने पर कुल व्यय बढ़ता है अथवा कीमत के बढ़ने पर कुल व्यय घटता है, अर्थात् कीमत परिवर्तन एवं कुल व्यय परिवर्तन विपरीत दिशा में चलते हैं, तब माँग की लोच इकाई से अधिक होती है।

(C) यदि कीमत के घटने पर कुल व्यय घटता है अथवा कीमत के बढ़ने पर कुल व्यय बढ़ता है, अर्थात् कीमत परिवर्तन एवं कुल व्यय परिवर्तन एक समान दिशा में चलते हैं तब माँग की लोच इकाई से कम होती है।

माना, आरम्भिक कीमत $= P$

आरम्भिक माँग $= Q$

अत: आरम्भिक कुल व्यय $(TE_1) = P \cdot Q$ ...(1)

अब, परिवर्तित कीमत (घटी हुई) $= P - \Delta P$

परिवर्तित कीमत (बढ़ी हुई) $= Q + \Delta Q$

परिवर्तन के बाद कुल व्यय $(TE_2) = (P - \Delta P)(Q + \Delta Q)$

अर्थात् $TE_2 = (P - \Delta P)(Q + \Delta Q)$

$= PQ - Q\Delta P + P\Delta Q - \Delta P \cdot \Delta Q$

$\Delta P \cdot \Delta Q$ को अति सूक्ष्म मात्रा होने पर छोड़ा जा सकता है।

अत: $TE_2 = PQ - Q\Delta P + P\Delta Q$ ...(2)

(A) कीमत परिवर्तन के बाद यदि कुल व्यय स्थिर रहता है तब

$TE_2 - TE_1 = 0$ अर्थात् $(PQ - Q\Delta P + P\Delta Q) - P \cdot Q = 0$

अर्थात् $PQ - Q\Delta P + P\Delta Q - P \cdot Q = 0$ अर्थात् $-Q\Delta P + P\Delta Q = 0$

अर्थात् $Q\Delta P = P\Delta Q$ अर्थात् $\frac{\Delta P}{P} = \frac{\Delta Q}{Q}$

अर्थात् कीमत में आनुपातिक परिवर्तन = माँग में आनुपातिक परिवर्तन

अत: $$e_d = \frac{\Delta Q / Q}{\Delta P / P} = 1$$

शब्दों में, कीमत में कमी (अथवा वृद्धि) होने पर यदि कुल व्यय स्थिर रहता है तब माँग की लोच इकाई के बराबर होगी।

(B) यदि कीमत घटने पर कुल व्यय बढ़ता है तब

$TE_2 > TE_1$ अर्थात् $PQ - Q\Delta P + P\Delta Q > PQ$

अर्थात् $-Q\Delta P + P\Delta Q > 0$ अर्थात् $P\Delta Q > Q\Delta P$

अर्थात् $$\frac{\Delta Q}{Q} > \frac{\Delta P}{p}$$

अर्थात् माँग का आनुपातिक परिवर्तन > कीमत का आनुपातिक परिवर्तन

अर्थात् $$e = \frac{\Delta Q / Q}{\Delta P / P} > 1$$

इस प्रकार, **कीमत घटने पर कुल व्यय में वृद्धि (अथवा कीमत बढ़ने पर कुल व्यय में कमी)** की दशा में लोच इकाई से अधिक होती है।

(C) यदि कीमत घटने पर कुल व्यय घटता है तब

$TE_2 < TE_1$ अर्थात् $PQ - Q\Delta P + P\Delta Q < PQ$

अर्थात् $-Q\Delta P + P\Delta Q < 0$ अर्थात् $P\Delta Q < Q\Delta P$

अर्थात् $$\frac{\Delta Q}{Q} < \frac{\Delta P}{P}$$

अर्थात् माँग का आनुपातिक परिवर्तन < कीमत का आनुपातिक परिवर्तन

अर्थात् $$e = \frac{\Delta Q / Q}{\Delta P / P} < 1$$

अत: **कीमत घटने पर कुल व्यय में कमी (अथवा कीमत बढ़ने पर कुल व्यय में वृद्धि) की दशा में लोच इकाई से कम होती है।**

चित्र द्वारा स्पष्टीकरण—कुल आगम रीति द्वारा प्राप्त निष्कर्षों को चित्र 1 द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। चित्र 1 के X-अक्ष पर कुल-व्यय को तथा Y-अक्ष पर वस्तु की कीमत को प्रदर्शित किया गया है।

1. जब कीमत OP_1 से घटकर OP_2 रह जाती है तब कुल व्यय भी P_1A से बढ़कर P_2B रह जाता है अर्थात् $e > 1$।
2. जब कीमत OP_2 से घटकर OP_3 रह जाती है तथा कुल व्यय स्थिर रहता है। (चित्र में $P_2B = P_3C$) तब $e = 1$ >
3. जब कीमत OP_3 से घटकर OP_4 रह जाती है तब कुल व्यय भी P_3C से घटकर P_4D रह जाता है अर्थात् $e < 1$।

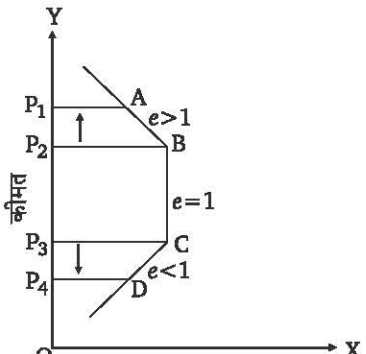

चित्र 1

2. चाप लोच-विधि (Arc Elasticity Method)

इस रीति द्वारा एक ही माँग वक्र के दो बिन्दुओं के मध्य लोच की माप की जाती है। जब कीमत परिवर्तन के कारण माँग दशाओं में बड़ा परिवर्तन होता है तब माँग की लोच की सही माप ज्ञात करने के लिए चाप लोच रीति का प्रयोग किया जाता है। माँग दशाओं के बड़े परिवर्तनों के कारण माँग की लोच का सही मूल्यांकन करने के लिए आरम्भिक एवं परिवर्तित मात्राओं का औसत प्रयोग किया जाता है। दूसरे शब्दों में, चाप प्रणाली द्वारा नयी एवं प्राचीन कीमत तथा माँग के औसत के आधार पर माँग की लोच निकाली जाती है।

TOUCH n PASS

इस प्रणाली के अनुसार,

$$\text{माँग की लोच } (e) = \frac{\dfrac{\text{माँग की मात्रा में परिवर्तन}}{(\text{माँग की आरम्भिक मात्रा} + \text{माँग की नवीन मात्रा}) / 2}}{\dfrac{\text{कीमत में परिवर्तन}}{(\text{आरम्भिक कीमत} + \text{नवीन कीमत}) / 2}}$$

अथवा

$$(e) = \frac{\dfrac{\text{माँग की मात्रा में परिवर्तन}}{(\text{माँग की आरम्भिक मात्रा} + \text{माँग की नवीन मात्रा})}}{\dfrac{\text{कीमत में परिवर्तन}}{(\text{आरम्भिक कीमत} + \text{नवीन कीमत})}}$$

चित्र 2 में माँग वक्र DD पर एक चाप PQ है। बिन्दु P पर वस्तु की कीमत OC तथा माँग OA है तथा बिन्दु Q पर वस्तु कीमत OF तथा माँग OB है। चाप PQ का एक मध्य बिन्दु R हम लते हैं जो बिन्दु P तथा Q की औसत कीमत $\left(\frac{OC + OF}{2}\right)$ पर औसत माँग $\left(\frac{OA + OB}{2} = OK\right)$ को बताता है।

यदि $OC = p_1$ तथा $OF = p_2$

तब $OT = \frac{OC + OF}{2} = \frac{p_1 + p_2}{2}$

इसी प्रकार यदि $OA = q_1$ तथा $OB = q_2$

तब $OK = \frac{OA + OB}{2} = \frac{q_1 + q_2}{2}$

कीमत का परिवर्तन $p_2 - p_1 = \Delta P$

तथा माँग का परिवर्तन $q_2 - q_1 = \Delta q$

संकेत में, $$e = \frac{\dfrac{q_2 - q_1}{q_1 + q_2}}{\dfrac{p_2 - p_1}{p_1 + p_2}}$$

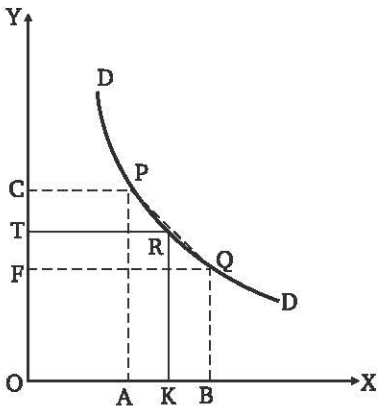

चित्र 2. माँग की चाप लोच

जहाँ p_1 = आरम्भिक कीमत, q_1 = आरम्भिक माँग, p_2 = नवीन कीमत, q_2 = नवीन माँग

या $$e = \frac{q_2 - q_1}{q_1 + q_2} \cdot \frac{p_1 + p_2}{p_2 - p_1}$$

यदि $q_2 - q_1 = \Delta q$ तथा $p_2 - p_1 = \Delta p$

तब $$e_d = \frac{\Delta q}{q_1 + q_2} \cdot \frac{p_1 + p_2}{\Delta p}$$

यदि बिन्दु P तथा Q के मध्य चाप लोच की माप है।

प्र.9. एक उपभोक्ता ₹ 5 प्रति इकाई पर वस्तु A की 100 इकाइयाँ खरीदता है। उस वस्तु की कीमत माँग लोच 2 है। किस कीमत पर वह वस्तु A की 140 इकाइयाँ खरीदने को तैयार होगा?

A consumer buys 100 units of good A at the rate of ₹ 5 per unit. The demand elasticity of that good is 2. At what price will he be ready to 140 units of good A?

हल मान लीजिए उपभोक्ता M कीमत पर 140 इकाइयाँ खरीदने को तैयार होगा

$$e_d = (-)\frac{P}{Q} \times \frac{\Delta Q}{\Delta P}$$

TOUCH 'n' PASS

यहाँ, $P = 5; P_1 = M; \Delta P = M - 5$
$Q = 100$ इकाइयाँ, $Q_1 = 140$ इकाइयाँ, $\Delta Q = (140 - 100) = 40$ इकाइयाँ
अब, सूत्रानुसार,

$$2 = (-)\frac{5}{100} \times \frac{40}{M-5} = (-)\frac{2}{M-5}$$

$$2(M-5) = -2 \quad \text{या} \quad 2M - 10 = -2$$
$$2M = -2 + 10 = 8$$
$$M = 4$$

उपभोक्ता वस्तु की ₹ 4 की कीमत पर 140 इकाइयाँ खरीदने को तैयार होगा।

प्र.10. दूरदर्शन सेट के मूल्य में 10% वृद्धि होने के फलस्वरूप वार्षिक माँग एक लाख सेटों से घटकर 85,000 रह जाती है। माँग की लोच ज्ञात कीजिए।

As a result of 10% increase in the price of television sets, the annual demand goes down from 1 lakh sets to 85,000 sets. Find the elasticity of demand.

हल मूल्य में 10% वृद्धि का अर्थ है, पूर्व मूल्य जो ₹100 था वह अब बढ़कर ₹110 हो गया है। अर्थात्, $P = 100$, $\Delta P = (110 - 100) = 10$ पुन: पूर्व माँग = 1,00,000, नई माँग = 85,000
अत: $Q = 1,00,000$, $\Delta Q = 15,000$
अत: सूत्रानुसार माँग की लोच,

$$e_d = (-)\frac{P}{Q} \times \frac{\Delta Q}{\Delta P} = (-)\frac{100}{1,00,000} \times \frac{15,000}{10} = (-)\frac{15}{10} = (-)\,1.5$$

या $|e_d| = 1.5$
अत: माँग की लोच = 1.5

प्र.11. माँग $x = 8$ और कीमत $p = 12$ के अनुरूप माँग फलन $x = 20 - p$ दिया है। यदि कीमत में 5% की वृद्धि हो जाती है तो तद्नुरूप माँग में हुई प्रतिशत कमी की गणना करते हुए माँग की लोच ज्ञात कीजिए।

If demand $x = 8$ and price $p = 12$, demand function $x = 20 - p$ is given. If there is a 5% increase in price, calculate the percentage decline in demand and find the demand elasticity.

हल कीमत $p = 12$ में 5% की वृद्धि होने पर बढ़ी हुई कीमत $= 12 + 12 \times \frac{5}{100}$

कीमत में वृद्धि = 12.60 – 12.0 = 0.60
इसी बढ़ी हुई कीमत के अनुरूप नई माँग

$$x = 20 - 120.60 = 7.40$$

अत: माँग में कमी = (8 – 7.40) = 0.60
इस प्रकार अब,

(i) मूल्य में वृद्धि = 0.60
अत: मूल्य में प्रतिशत वृद्धि $= \frac{0.60}{12} \times 100 = 5\%$

(ii) माँग में कमी = 0.60
अत: माँग में प्रतिशत कमी $= (-)\frac{0.60}{8} \times 100 = -7.5\%$

इस तरह, माँग की लोच $= \frac{\text{माँग में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}} = (-)\frac{7.5}{5} = (-)\,1.5$ या $|e_d| = 1.5$

TOUCH n PASS

प्र.12. किसी वस्तु की प्रारम्भिक कीमत ₹ 15 पर वस्तु की 100 इकाइयाँ माँगी जाती हैं। जब कीमत घटकर ₹ 10 हो जाने पर माँग बढ़कर 150 इकाइयाँ हो जाती है तो माँग की लोच ज्ञात कीजिए।

At an initial price of ₹ 15,100 units of a good are demanded. If on reducing the price ot ₹ 10, the demand increases to 150 units, find the price elasticity.

हल चाप लोच का सूत्र प्रयोग करने पर,

$$e_d = \frac{\text{माँग मात्राओं का अन्तर}}{\text{माँग मात्राओं का योग}} \div \frac{\text{कीमतों का अन्तर}}{\text{कीमतों का योग}}$$

$$= \frac{100-150}{100+150} \div \frac{15-10}{15+10} = \frac{-50}{250} \div \frac{5}{25} = \frac{-50}{250} \times \frac{25}{5} = -1$$

अत: $e_d = (-)1$

प्र.13. डबल रोटी और मक्खन एक-दूसरे की पूरक वस्तुएँ हैं। जब डबल रोटी की कीमत ₹ 8 है तो मक्खन की माँग 10 किग्रा है। यदि डबल रोटी की कीमत बढ़कर ₹ 12 हो जाती है तो मक्खन की माँग कम होकर 5 किग्रा हो जाती है। मक्खन की आड़ी माँग की लोच ज्ञात कीजिए।

Bread and butter are complementary things. When the price of bread is ₹ 8, the demand for butter is 10 kg. If the price of bread increases to ₹ 12, the demand for butter goes down to 5 kg. Find out the cross elasticity for butter.

हल

$$e_c = \frac{P_Y}{Q_X} \times \frac{\Delta Q_X}{\Delta P_Y}$$

$$P_Y = ₹8.0,\ P_{Y_1} = ₹12$$

$$\Delta P_Y = P_{Y_1} - P_Y = ₹12 - ₹8 = ₹4$$

$$Q_X = 10\,\text{kg.}\ ;\ Q_X = 5\,\text{kg.}$$

$$\Delta Q_X = Q_{X_1} - Q_X = 5\,\text{kg.} - 10\,\text{kg} = -5\,\text{kg}$$

$$e_c = \frac{8}{10} \times \frac{-5}{4} = -1$$

(यहाँ, X का प्रयोग मक्खन के लिए तथा Y का प्रयोग डबल रोटी के लिए किया गया है।)

नोट—स्थानापन्न वस्तुओं के लिए माँग की आड़ी लोच धनात्मक होती है जबकि पूरक वस्तुओं के लिए माँग की आड़ी लोच ऋणात्मक होती है।

प्र.14. एक उपभोक्ता की आय ₹ 100 से बढ़कर ₹ 105 हो जाती है, तो उसके परिणामस्वरूप उसकी वस्तुओं की माँग 400 इकाइयों से बढ़कर 440 इकाइयाँ हो जाती हैं, तो उपभोक्ता की आय लोच ज्ञात कीजिए।

If the income of a consumer increases from ₹ 100 to ₹ 105, his demand for goods increases from 400 units to 440 units. Find out his consumer income elasticity.

हल दिया है, उपभोक्ता आरम्भिक आय $(Y) = ₹100$

$\therefore$ $\Delta Y = 105 - 100 = ₹5$

वस्तु की आरम्भिक माँग $(Q) = 400$ इकाइयाँ

$\therefore$ $\Delta Q = 440 - 400 = 40$ इकाइयाँ

$$\text{आय-लोच} = \frac{\Delta Q}{Q} \times \frac{Y}{\Delta Y} = \frac{40}{400} \times \frac{100}{5} = 2.0$$

अत: माँग की आय लोच = 2.0 है।

TOUCH n PASS

प्र.15. आगरा में आय के फलस्वरूप मारुति कारों की माँग निम्न समीकरण द्वारा होती है–

$$Q = 20{,}000 + 5Y$$

जहाँ Q = मारुति कारों की माँग मात्रा, Y = आगरा के निवासियों की प्रति व्यक्ति वार्षिक आय है। यदि आगरा के लोगों की प्रति व्यक्ति आय ₹ 15,000 है, तो माँग की आय-लोच ज्ञात कीजिए।

In Agra, the demand for Maruti cars as a result of income is given by the following equation :

$$Q = 20{,}000 + 5Y$$

Where Q = demand of Maruti cars and Y = per person annual income of Agra's residents. If Agra's residents have a per person annual income of ₹ 15,000, find out the income elasticity of demand.

हल आय लोच $(e_y) = \dfrac{\Delta Q}{\Delta Y} \times \dfrac{Y}{Q}$

माँग की आय-लोच ज्ञात करने के लिए हमें सर्वप्रथम ₹ 15,000 प्रति व्यक्ति वार्षिक आय (Y) पर मारुति कारों की माँग मात्रा ज्ञात करना होगा। अत:

$$Q = 20{,}000 + 5 \times 15{,}000 = 95{,}000$$

दिए हुए आय-माँग फलन, $Q = 20{,}000 + 5Y$, में आय का गुणांक (Coefficient) 5 है, जिसका अर्थ है $\dfrac{\Delta Q}{\Delta Y} = 5$, जो यह दर्शाता है कि प्रति व्यक्ति आय ΔY या एक रुपए बढ़ने पर वस्तु की माँग में $\Delta Q = 5$ के समान वृद्धि होती है।

आय लोच $$(e_y) = \frac{\Delta Q}{\Delta Y} \times \frac{Y}{Q} = 5 \times \frac{15{,}000}{95{,}000} = \frac{75{,}000}{95{,}000} = 0.8$$

माँग की आय लोच = 0.8

प्र.16. पूर्ति के नियम की व्याख्या करते हुए इसके लागू होने के कारणों पर प्रकाश डालिए।

Explaining the law of demand, throw light on the reasons for its application.

अथवा **पूर्ति के नियम से आप क्या समझते हैं? पूर्ति को प्रभावित करने वाले तत्त्वों की व्याख्या कीजिए।** **(2021)**

Or **What do you understand by Law of Supply. Explain the factors that affect supply.**

उत्तर

पूर्ति का नियम
(Law of Supply)

पूर्ति का नियम माँग के नियम के विपरीत है। पूर्ति और कीमत का धनात्मक सम्बन्ध है जबकि माँग व कीमत का ऋणात्मक सम्बन्ध होता है। जब कभी किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि होती है, तब उस वस्तु की पूर्ति को बढ़ाया जाता है और कीमत में कमी होने पर उस वस्तु की पूर्ति को घटा दिया जाता है। **संक्षेप में, हम यह कह सकते हैं कि अन्य बातें समान रहने पर किसी वस्तु की पूर्ति के बढ़ने की प्रवृत्ति तब होती है जब उस वस्तु की कीमत में वृद्धि होती है और पूर्ति में कमी तब होती है जब वस्तु की कीमत में कमी आती है।**

इस प्रकार कीमत और पूर्ति के बीच सीधा सम्बन्ध है।

पूर्ति के नियम की परिभाषा (Definition of Law of Supply)

वाटसन के शब्दों में, "पूर्ति का नियम बताता है कि अन्य बातों के समान रहने पर एक वस्तु की पूर्ति इसकी कीमत के बढ़ने से बढ़ जाती है और कीमत के घटने से घट जाती है।"

पूर्ति के नियम की मान्यताएँ—पूर्ति के नियम की मुख्य मान्यताएँ निम्न हैं—

1. सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतों में कोई परिवर्तन नहीं,
2. उत्पत्ति के साधनों की कीमत स्थिर रहे,

3. उत्पादन की तकनीक में कोई सुधार न हो,
4. क्रेताओं व विक्रेताओं की आय अपरिवर्तित है,
5. उत्पादक का उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना है तथा इस उद्देश्य में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है,
6. क्रेताओं और विक्रेताओं की रुचि व पसन्दगी पहले जैसी है, तथा
7. उत्पादकों की भविष्य के सम्बन्ध में आशंकाओं (expectations) में कोई अन्तर नहीं आया है।

तालिका संख्या 1

प्रति इकाई कीमत	पूर्ति की मात्रा
1	10
2	15
3	20
4	25
5	30

तालिका द्वारा स्पष्टीकरण—हम पूर्ति के नियम की व्याख्या एक काल्पनिक तालिका द्वारा कर सकते हैं—
तालिका 1 से स्पष्ट है कि ज्यों-ज्यों वस्तु की कीमत में वृद्धि होती है, त्यों-त्यों विक्रेता के द्वारा वस्तु की पूर्ति को बढ़ाया जाता है। सबसे कम पूर्ति कम कीमत पर (₹1 पर 10 इकाइयाँ) तथा सबसे अधिक पूर्ति अधिक कीमत पर (₹5 पर 30 इकाइयाँ) होती है। इस व्याख्या को हम चित्र की सहायता से स्पष्ट कर सकते हैं।

चित्र द्वारा स्पष्टीकरण—संलग्न चित्र में X-axis पर वस्तु की मात्रा तथा Y-axis पर वस्तु की कीमत है। तालिका संख्या 3 के आँकड़ों की सहायता से SS पूर्ति रेखा को प्राप्त किया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि कीमत के बढ़ने के साथ-साथ पूर्ति रेखा A बिन्दु से B, C, D और E बिन्दुओं की ओर बढ़ती है। अत: पूर्ति वक्र कीमत और पूर्ति के बीच सीधे सम्बन्ध को प्रदर्शित करता है और इसके विपरीत भी सही सिद्ध होता है, अर्थात् कीमत के गिरने के साथ-साथ SS पूर्ति वक्र E बिन्दु से D, C, B व A बिन्दुओं की ओर सिमटता है। कीमत के गिरने पर एक बिन्दु ऐसा भी आ सकता है, जहाँ पूर्ति शून्य होगी। ऐसी दशा में पूर्ति वक्र मूल बिन्दु O पर आकर रुक जाएगा।

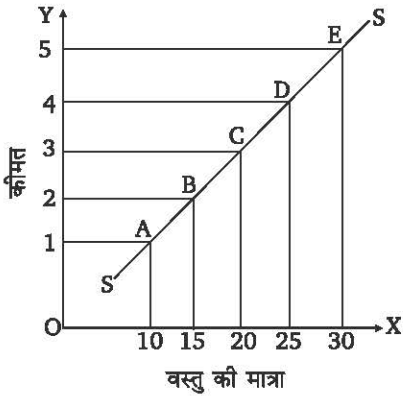

नियम के लागू होने के कारण (Causes of the Application of Law)

पूर्ति वक्र धनात्मक होता है इसलिए यह नीचे से ऊपर की ओर जाता है। नियम के लागू होने के प्रमुख कारण निम्न हैं—

1. **ऊँची कीमत, अधिक पूर्ति**—ऊँची कीमत पर अधिक पूर्ति का कारण यह है कि कीमतों के बढ़ने से लाभ बढ़ते हैं। इसलिए पूर्तिकर्त्ता ऊँची कीमतों से अधिक लाभ बटोरने के लिए पूर्ति बढ़ा देते हैं।.
2. **नीची कीमत, कम पूर्ति**—नीची कीमतों से उत्पादकों के लाभ कम हो जाते हैं, कभी-कभी उन्हें हानि भी होती है। अत: कीमत के घटने पर पूर्ति को घटा दिया जाता है।

पूर्ति को प्रभावित करने वाले तत्त्व (Factors Influencing the Supply)

वस्तु की पूर्ति को प्रभावित करने वाले प्रमुख तत्त्व निम्नलिखित हैं—

1. **वस्तु की कीमत** (Price of the Comodity)—वस्तु की कीमत का वस्तु की पूर्ति पर अधिक प्रभाव पड़ता है। जब किसी वस्तु की कीमत में कमी होती है, तो उस वस्तु की पूर्ति घट जाती है। लेकिन कीमत में वृद्धि होने के कारण वस्तु की पूर्ति बढ़ती है।
2. **उत्पत्ति के साधनों की कीमत** (Price of Factors of Production)—जब कभी उत्पत्ति के साधनों का पारिश्रमिक ऊँचा रहता है तब वस्तु की उत्पादन लागत बढ़ जाती है। परिणामस्वरूप वस्तु की पूर्ति को घटा दिया जाता है। इसके विपरीत, उत्पादन लागत घट जाने पर वस्तु की पूर्ति बढ़ जाती है।

3. **उत्पादकों की रुचि** (Taste of Producers)—कभी-कभी वस्तु की पूर्ति पर उत्पादकों की रुचि का भी प्रभाव पड़ता है। भले ही यह प्रभाव उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, फिर भी एक उत्पादक किसी एक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु के उत्पादन को बढ़ा देता है जिसके कारण पहली वस्तु की पूर्ति कम और दूसरी वस्तु की पूर्ति बढ़ती है।
4. **प्राकृतिक तत्त्व** (Natural Factor)—जिन वस्तुओं के उत्पादन में व्यक्ति की अपेक्षा प्रकृति का हाथ अधिक होता है उन वस्तुओं की पूर्ति प्राकृतिक तत्त्वों पर निर्भर करती है। यदि प्राकृतिक तत्त्व पक्ष में हैं, तो वस्तु की पूर्ति बढ़ जाएगी अन्यथा नहीं। उदाहरण के लिए कृषि। समय पर उपयुक्त वर्षा हो जाने के कारण अनाज की पूर्ति बढ़ती है। सूखा, बाढ़, अतिवृष्टि व विनाशकारी रोगों के कारण पूर्ति घट जाती है।
5. **तकनीकी ज्ञान** (Technological Know-how)—पूर्ति पर तकनीकी ज्ञान, अन्वेषण तथा कुशलता आदि बातों का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। उत्पादन के क्षेत्र में कुछ ऐसी महत्त्वपूर्ण बातें हैं, जिनके कारण वस्तु के उत्पादन अथवा पूर्ति में घट-बढ़ होती है।
6. **कर नीति** (Taxation Policy)—सरकार की कर नीति भी वस्तु की पूर्ति को प्रभावित करती है। यदि सरकार परोक्ष कर लगाए तो वस्तुओं की लागत बढ़ेगी, मूल्य में वृद्धि से माँग घटेगी और पूर्ति भी कम होगी, जबकि प्रत्यक्ष कर लगाने से न तो उत्पादन लागत बढ़ेगी और न ही पूर्ति में कमी आएगी।
7. **राजनैतिक अशान्ति** (Political Disturbance)—आन्तरिक असुरक्षा तथा बाह्य आक्रमणों का भय भी वस्तु की पूर्ति को प्रभावित करता है। सरकार की अस्थायी आर्थिक नीति, बाह्य आक्रमणों का भय आदि बातें उत्पादकों को विनियोग की प्रेरणा नहीं देती हैं जिससे पूर्ति घट जाती है। शान्ति व सुरक्षा तथा राजनीतिक स्थिरता में पूर्ति बढ़ती है।
8. **परिवहन के साधन** (Means of Transportation)—वर्तमान समय में उत्पादन की मात्रा यातायात के साधनों पर निर्भर करती है। जहाँ यातायात के साधन सस्ते हैं, वहाँ उत्पादन बढ़ाया जा सकता है और इससे वस्तु की पूर्ति भी बढ़ती है। यदि परिवहन के साधनों में कमी हो या वे काफी महँगे हों, तो वस्तु की पूर्ति घट जाएगी।
9. **उत्पादक संघ** (Producer's Union)—उत्पादकों का संघ जब कभी किसी निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए संगठित होता है, तब वस्तु की पूर्ति में कमी या वृद्धि हो सकती है। युद्ध के समय राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर उत्पादन बढ़ाया जाता है, जिससे वस्तु की पूर्ति बढ़ जाती है। इसके विपरीत, कभी-कभी उत्पादक अधिक लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से संगठित होकर उत्पादन को कम कर देते हैं, जिससे पूर्ति घट जाती है।
10. **औद्योगिक शान्ति** (Industrial Peace)—यदि मालिकों व श्रमिकों के सम्बन्ध अच्छे हैं, तो उत्पादन व पूर्ति अधिक होगी। इसके विपरीत, पूर्ति तब कम होगी जब सेवायोजकों व श्रमिकों के बीच लड़ाई-झगड़ा होता है।

उपर्युक्त कुछ महत्त्वपूर्ण बातें हैं, जिनका प्रभाव वस्तु की पूर्ति पर प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है।

प्र.17. पूर्ति की लोच की परिभाषा दीजिए। इसे प्रभावित करने वाले तत्त्वों एवं मापन की विधियों का विवेचन कीजिए।
Define Elasticity of supply. Discuss the factors that affect it and the methods to measure it.

उत्तर

पूर्ति की लोच की परिभाषा
(Definition of Elasticity of Supply)

1. **सैम्युल्सन** (Samuelson) के अनुसार, "पूर्ति की लोच कीमत में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप पूर्ति में होने वाले परिवर्तन की प्रतिक्रिया की मात्रा (degree of responsiveness) है।

2. **लिप्से** (Lipsey) के अनुसार, **"पूर्ति की लोच उस दर के निरपेक्ष मूल्य को प्रकट करती है जिसे हम पूर्ति में हुए प्रतिशत परिवर्तन का कीमत में हुए प्रतिशत परिवर्तन से विभाजन करके प्राप्त करते हैं।"**

इस कथन को गणित की भाषा में निम्न प्रकार व्यक्त कर सकते हैं—

$$es = \frac{\text{पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}} \quad \Rightarrow \quad es = \frac{\Delta q_s / q_s}{\Delta P / P} = \frac{\Delta q_s}{\Delta P} \times \frac{P}{q_s}$$

जहाँ, Δq_s = पूर्ति में परिवर्तन, q_s = परिवर्तन से पूर्व की पूर्ति, P = आरम्भिक कीमत, ΔP = कीमत में परिवर्तन

पूर्ति की लोच के सम्बन्ध में दो बातें ध्यान देने योग्य हैं—

(i) पूर्ति के उस परिवर्तन पर विचार किया जाता है, जो कीमत में थोड़े-से परिवर्तन के कारण होता है, तथा (ii) यह परिवर्तन अल्प समय के लिए होता है।

पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाले तत्व
(Factors Affecting Elasticity of Supply)

पूर्ति की लोच को प्रभावित करने वाले प्रमुख तत्व निम्न हैं—

1. **वस्तु का स्वभाव**—वस्तु के स्वभाव पर पूर्ति की लोच निर्भर करती है। जो वस्तु शीघ्र नष्ट होने वाली होती है उस वस्तु की पूर्ति बेलोच होती है, जबकि टिकाऊ वस्तुओं की पूर्ति लोचदार होती है।
2. **उत्पादन लागत**—उत्पादन लागत का प्रभाव भी पूर्ति की लोच पर पड़ता है। यदि वस्तु का उत्पादन उत्पत्ति ह्रास नियम के अन्तर्गत होता है, तो वस्तु की पूर्ति बेलोच होगी, क्योंकि मूल्य में वृद्धि होने पर भी वस्तु के उत्पादन को बढ़ाना कठिन है। जब उत्पादन में उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है, तो वस्तु के उत्पादन को बढ़ाया-घटाया जा सकता है। ऐसी दशा में पूर्ति की लोच लोचदार होगी।
3. **समय**—किसी वस्तु की पूर्ति की लोच समय से प्रभावित होती है। उत्पादकों के पास जितना ही कम समय होगा पूर्ति की लोच उतनी ही अधिक बेलोच होगी और समय के बढ़ने के साथ-साथ यह लोचदार होती जाती है।
4. **बाजार की उपलब्धि**—एक वस्तु के जितने अधिक बाजार होंगे उसकी पूर्ति की लोच उतनी ही अधिक होगी, क्योंकि वस्तु का विक्रेता अपनी वस्तु को भिन्न-भिन्न मूल्यों में बेच सकता है। इसके विपरीत, जब विक्रेता के पास सीमित बाजार होता है, तब पूर्ति की लोच बेलोच होगी, क्योंकि इस निश्चित बाजार में वस्तु का मूल्य घटे या बढ़े उसे अपनी वस्तु इसी बाजार में बेचनी होती है।
5. **उत्पादन की तकनीक**—पूर्ति की लोच पर उत्पादन की तकनीक का भी प्रभाव पड़ता है। यदि किसी वस्तु का उत्पादन आसानी से किया जाता है, तो वस्तु की पूर्ति लोचदार होगी, क्योंकि कीमत के घटने-बढ़ने पर वस्तु की पूर्ति को घटाया-बढ़ाया जा सकता है। इसके विपरीत, जब वस्तु के उत्पादन में किसी खास तकनीक की आवश्यकता होती है तब वस्तुओं के उत्पादन को आसानी से बढ़ाया नहीं जा सकता है। अत: ऐसी वस्तुओं की पूर्ति बेलोच होगी।

पूर्ति की लोच को मापने की विधियाँ
(Methods of Measuring Elasticity of Supply)

पूर्ति की लोच को मापने की प्रमुख दो विधियाँ हैं—

1. **आनुपातिक या प्रतिशत विधि** (Percentage Method)—इस रीति में पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन को कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से भाग दिया जाता है। इस विधि को निम्न सूत्र से प्रकट किया जा सकता है—

$$es = \frac{\text{पूर्ति में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}} \quad \text{अथवा} \quad es = \frac{\dfrac{\text{पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन}}{\text{पूर्ति की पूर्व मात्रा}}}{\dfrac{\text{कीमत में परिवर्तन}}{\text{पूर्व कीमत}}}$$

अब यदि,

(i) पूर्ति की नई मात्रा $= S_1$, (ii) पूर्ति की पूर्व मात्रा $= S$,

(iii) पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन $= \Delta S$ (या $S_1 - S$) (iv) नई कीमत $= P_1$

(v) पूर्व कीमत $= P$ (vi) कीमत में परिवर्तन $= \Delta P$ (या $P_1 - P$)

तो $$es = \frac{\Delta S}{S} \div \frac{\Delta P}{P} = \frac{\Delta S}{S} \times \frac{P}{\Delta P} = \frac{P}{S} \times \frac{\Delta S}{\Delta P}$$

TOUCH 'n' PASS

नोट—चूँकि यहाँ कीमत व पूर्ति में एक ही दिशा में परिवर्तन होता है इसलिए यहाँ पूर्व या प्रारम्भिक पूर्ति व कीमत के आधार पर विकसित उपर्युक्त सूत्र ही ठीक रहेगा, जबकि माँग की लोच के लिए चाप (Arc) विधि श्रेयस्कर मानी गई थी जिससे पूर्व नई माँग व कीमत के आनुपातिक परिवर्तन मापे जाते हैं।

2. **बिन्दु रीति** (Points method) **या रेखागणितीय विधि**—पूर्ति की लोच को मापने का दूसरा विधि बिन्दु-विधि या रेखागणितीय विधि है। इस विधि से हम किसी भी बिन्दु पर पूर्ति की लोच की माप कर सकते हैं। चित्र संख्या 1, 2 व 3 में पूर्ति की लोच की माप बिन्दु रीति से की जा सकती है।

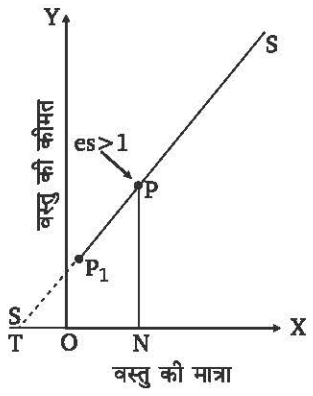

चित्र 1

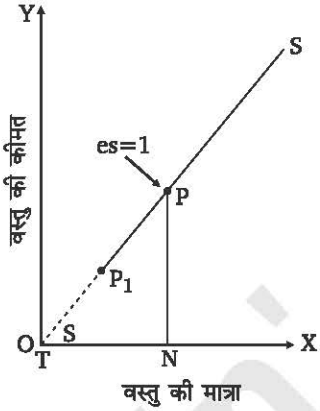

चित्र 2

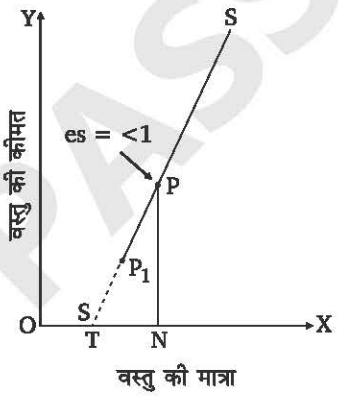

चित्र 3

चित्र में SS पूर्ति वक्र रेखाएं हैं, प्रत्येक चित्र के P बिन्दु पर पूर्ति की लोच की माप करनी है। प्रत्येक पूर्ति रेखा को P_1 बिन्दु से अपनी सीध में नीचे X-axis के T बिन्दु तक आगे बढ़ाया गया है। प्रत्येक रेखा के P बिन्दु से X-axis पर PN लम्ब गिराये गये हैं। इन वक्रों के P बिन्दु पर पूर्ति की लोच को निम्न सूत्र से ज्ञात किया जा सकता है—

$$es = \frac{TN}{ON}$$

अत:

(i) चित्र संख्या 1 में ON की अपेक्षा TN रेखा छोटी है अत: चित्र में P बिन्दु पर पूर्ति की लोच इकाई से कम है। अर्थात् $es =< 1$।

(ii) चित्र संख्या 2 में ON रेखा TN के बराबर है अत: चित्र में P बिन्दु पर पूर्ति की लोच इकाई के बराबर है। अर्थात् $es = 1$।

(iii) चित्र संख्या 3 में TN रेखा ON से बड़ी है अत: चित्र के P बिन्दु पर पूर्ति की लोच इकाई से अधिक है अत: $es = > 1$।

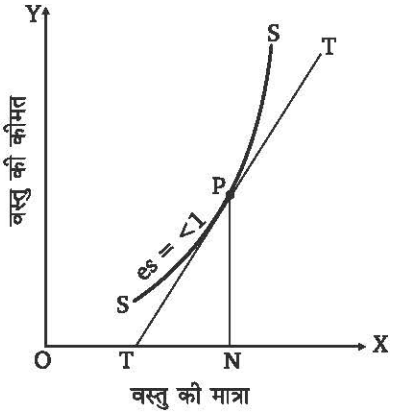

चित्र 4

उपर्युक्त तीनों रेखाचित्रों में हमने पूर्ति की रेखा को एक सीधी रेखा के रूप में लिया है। पूर्ति की रेखाएँ सीधी रेखा (Straight line) न होकर वक्र रेखा (Curve) भी हो सकती हैं। ऐसी पूर्ति रेखा के किसी बिन्दु पर पूर्ति की लोच की माप को चित्र संख्या 4 से स्पष्ट किया जा रहा है।

चित्र में SS पूर्ति वक्र है। बिन्दु P पर पूर्ति की लोच ज्ञात करनी है। बिन्दु P को स्पर्श करती हुई TT एक रेखा खींची गई है जो X-axis से T बिन्दु पर मिलती है। अत: P बिन्दु पर पूर्ति की लोच $es = \frac{TN}{ON}$। चूँकि यहाँ पर $TN < ON$ है इसलिए $es = < 1$।

TOUCH 'n' PASS

प्र.18. बाजार सन्तुलन तथा कीमत निर्धारण के विषय में विस्तृत विवेचन कीजिए।

Give a detailed explanation of Market Equilibrium and Price Determination.

उत्तर

बाजार सन्तुलन तथा कीमत निर्धारण
(Market Equilibrium and Price Determination)

किसी वस्तु का मूल्य या कीमत निर्धारण उस वस्तु की माँग एवं पूर्ति की अंतक्रिया द्वारा होती है। किसी वस्तु अथवा सेवा की एक निश्चित मात्रा तथा गुणवत्ता के लिए जो धनराशि देनी पड़ती है वह उसकी **कीमत** कहलाती है। साधारणतया किसी वस्तु की कीमत निर्धारण की विवेचना पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में की जाती है। पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की वह स्थिति है जिसमें किसी वस्तु के बहुत से क्रेता तथा विक्रेता होते हैं। इनके द्वारा बेची जाने वाली सभी इकाइयाँ समरूप होती हैं। सम्पूर्ण बाजार में वस्तु की एक ही कीमत विद्यमान होती है।

पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में कीमत निर्धारण की दशा में **डॉ. मार्शल** से पूर्व अर्थशास्त्रियों में मतभेद पाया जाता था अर्थात मूल्य अथवा कीमत निर्धारण के सम्बन्ध में अर्थशास्त्री एक मत नहीं थे। मूल्य-निर्धारण के सम्बन्ध में दो विचारधाराएँ प्रचलित थीं। **डेविड रिकार्डो** मूल्य निर्धारण में केवल **पूर्ति पक्ष** को ध्यान में रखते थे जबकि **जेवेन्स, वालरस** आदि अर्थशास्त्री मूल्य निर्धारण में केवल माँग प्रश्न को आवश्यक मानते थे। बाद में **प्रो. मार्शल** ने दोनों पक्षों में समन्वय स्थापित करते हुए यह सिद्ध कर दिया है कि मूल्य का निर्धारण माँग (उपयोगिता) एवं पूर्ति (उत्पादन लागत) दोनों के संयुक्त प्रयासों से होता है। **मार्शल** के अनुसार, **"जिस प्रकार से हम इस बात पर विवाद (dispute) कर सकते हैं कि वह कैंची का ऊपर वाला फलक (Blade) है अथवा नीचे वाला जिसने कि एक कागज के टुकड़े को काटा है, उसी प्रकार इस बात पर विवाद हो सकता है कि मूल्य को उपयोगिता निर्धारित करती है अथवा उत्पादन लागत।** यह सत्य है कि जिस समय एक फलक को स्थिर रखा जाता है और काटने का कार्य दूसरे फलक से किया जाता है, तो हम लापरवाही से यह कह सकते हैं कि काटने का कार्य दूसरे ने किया है। किन्तु यह विवरण पूर्णतया सत्य नहीं है और तभी तक दोषमुक्त है जब तक कि यह इस कार्य का केवल प्रचलित रूप से स्पष्टीकरण करने का दावा करता है न कि वैज्ञानिक रूप से।

मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध में मार्शल का यह कथन इस बात की जानकारी देता है कि कागज को काटने के लिए कैंची के दोनों फलकों की समान आवश्यकता होती है। यदि एक फलक से कागज को काटने का काम लिया जाय तो यह प्रयत्न असफल रहेगा। इसी प्रकार से वस्तु के मूल्य निर्धारण के लिए माँग (उपयोगिता) तथा पूर्ति (उत्पादन लागत) दोनों की ही समान रूप से आवश्यकता होती है। यह सम्भव है कि कुछ दशाओं में उपयोगिता (माँग) मूल्य के निर्धारण में अधिक प्रभावी हो सकती है, तो कुछ दशाओं में पूर्ति (उत्पादन-लागत)।

सन्तुलन मूल्य या बाजार सन्तुलन (Equilibrium Price or Market Equilibrium)

उस मूल्य को कहा जाता है जहाँ माँग-पूर्ति का साम्य होता है। इस साम्य पर माँग-पूर्ति की शक्तियाँ एक-दूसरे के प्रभाव को इस प्रकार नष्ट कर देती हैं कि बाजार में स्थिर दशा (Static condition) उत्पन्न हो जाती है तब इस दशा को सन्तुलन की दशा (state of equilibrium) कहते हैं। सन्तुलन बिन्दु पर माँग और पूर्ति की मात्राएँ आपस में बराबर हो जाती हैं।

संक्षेप में, **"सन्तुलन मूल्य वह मूल्य है जिस पर किसी वस्तु की मात्रा, जो कि विक्रेता बेचने को इच्छुक है, उस मात्रा के बराबर होती है जो कि क्रेता खरीदना चाहते हैं। यह वह मूल्य है जो बाजार को साफ कर देता है।"** इस कीमत पर अतिरिक्त माँग तथा अतिरिक्त पूर्ति की मात्रा शेष नहीं रह जाती है। इस बिन्दु पर जो मूल्य निर्धारित होता है उस मूल्य में परिवर्तन की सम्भावनाएँ नहीं होती हैं।

अन्य शब्दों में, **सन्तुलन मूल्य या कीमत उस कीमत को कहते हैं जिस पर वस्तु की बाजार पूर्ति तथा बाजार माँग एक-दूसरे के बराबर होती हैं।**

सन्तुलन कीमत : बाजार माँग = बाजार पूर्ति

सन्तुलन कीमत पर सभी क्रेता अपनी पूरी माँग को सन्तुष्ट कर लेते हैं तथा सभी विक्रेता अपनी वस्तु की उतनी मात्रा बेचने में सफल हो जाते हैं जितनी वे बाजार में बेचना चाहते हैं। **अतः सन्तुलन कीमत वह कीमत है जिस पर किसी वस्तु की माँग और पूर्ति बराबर होती है अर्थात क्रेताओं तथा विक्रेताओं का क्रय-विक्रय क्रमशः एक-दूसरे के बराबर होता है।**

क्या सन्तुलित कीमत हमेशा समान रहती है? (Is Equilibrium Price Remain Equals?)

यहाँ यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि क्या सन्तुलित कीमत हमेशा समान रहती है ? उत्तर में यह कहा जा सकता है कि सन्तुलित कीमत सदैव समान नहीं रहती है, क्योंकि माँग व पूर्ति के सन्तुलन के टूट जाने पर कीमत में परिवर्तन आता है। प्रारम्भिक सन्तुलन के टूट जाने पर माँग-पूर्ति का नया सन्तुलन स्थापित होता है। इस प्रकार पुराना सन्तुलन भंग होता है और नया स्थापित होता है। उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि सन्तुलित मूल्य के निर्धारण में माँग व पूर्ति की शक्तियाँ प्रभावपूर्ण कार्य करती हैं। अत: यहाँ यह आवश्यक है कि माँग एवं पूर्ति? की शक्तियों के बारे में समझ लिया जाए।

वस्तु की माँग (Demand for Commodity)

प्रश्न यह उठता है कि उपभोक्ता किसी वस्तु की माँग क्यों करता है? और वह उस वस्तु का अधिक-से-अधिक कितना तक मूल्य दे सकता है? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि कोई भी उपभोक्ता जिस किसी वस्तु की माँग करता है उस वस्तु में उसे उपयोगिता (utility) प्राप्त होती है। यदि वस्तु में उपयोगिता को सन्तुष्ट करने की शक्ति नहीं होती, तो उपभोक्ता वस्तु की माँग नहीं करता। उपभोक्ता किसी वस्तु की कितनी मात्रा क्रय करेगा यह उसकी सीमान्त उपयोगिता (Marginal utility) पर निर्भर करेगा। इस प्रकार वस्तु के क्रेता के लिए वस्तु के मूल्य की अधिकतम सीमा **सीमान्त उपयोगिता** द्वारा निर्धारित होती।

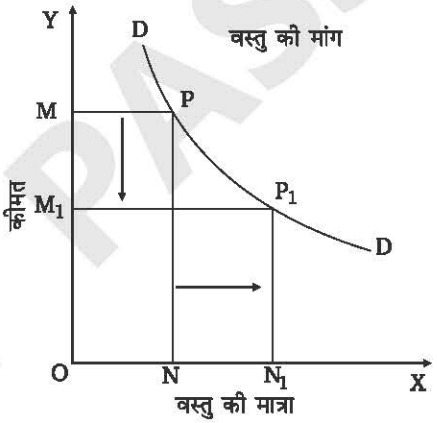

चित्र 1

वस्तु की माँग, **माँग के नियम** (Law of Demand) से नियन्त्रित होती है। वस्तु की ऊँची कीमत पर वस्तु की माँग कम तथा कम कीमत पर वस्तु की माँग ऊँची होती है अर्थात् मूल्य और माँग के बीच ऋणात्मक (Negative) या विपरीत (Inverse) सम्बन्ध है। इस बात को चित्र 1 से स्पष्ट किया गया है। चित्र में DD वक्र बाजार माँग वक्र है। माँग रेखा में दो बिन्दु P तथा P_1 दिखाए गए हैं। यदि वस्तु का मूल्य OM है तो वस्तु की माँग ON मात्रा में है और वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता NP के बराबर है।

यदि वस्तु का मूल्य घटकर OM_1 रह जाता है तब वस्तु की माँग ON से बढ़कर ON_1 हो जाती है और वस्तु से प्राप्त होने वाली उपयोगिता घटकर N_1P_1 के बराबर रह जाती है।

उपभोक्ता किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु में मिलने वाली सीमान्त उपयोगिता के बराबर देता है। चित्र 1 में एक उपभोक्ता को वस्तु के उपभोग से प्राप्त होने वाली उपयोगिता को N_1P_1 से दिखाया गया है। इस उपयोगिता पर वह वस्तु का मूल्य OM_1 के बराबर देता है, जबकि $OM_1 = N_1P_1$ के है। वस्तु का यह मूल्य उपभोक्ता के लिए वस्तु की सीमान्त उपयोगिता के बराबर है। यह स्वाभाविक ही है कि क्रेता इस वस्तु का मूल्य इस अधिकतम सीमा के बराबर या इससे कम देना चाहेगा। संक्षेप में, माँग की दृष्टि से वस्तु का मूल्य इसकी सीमान्त उपयोगिता से कभी भी अधिक नहीं होता है।

वस्तु की पूर्ति (Supply of the Commodity)

वस्तु की पूर्ति विक्रेताओं के द्वारा की जाती है। इस सन्दर्भ में यह प्रश्न किया जा सकता है कि विक्रेता वस्तु का मूल्य क्यों लेना चाहता है? और वस्तु का कम से कम कितना मूल्य लेगा? प्रकृति के उपहारों को छोड़कर शेष वस्तुओं के उत्पादन में कुछ-न-कुछ में उत्पादन लागत अवश्य आती है, इसी उत्पादन लागत के कारण प्रत्येक उत्पादक वस्तु का मूल्य लेना चाहता है। प्रत्येक उत्पादक उत्पादन लागत से अधिक मूल्य इसलिए लेना चाहता है कि उसे लाभ मिले। यदि उत्पादक अपने उद्देश्य में सफल है, तो वह उत्पादन की मात्रा में वृद्धि कर लेगा। प्राय: पूर्ति के बढ़ जाने से मूल्य में कमी होती है जिससे लाभ में कमी आ जाती है। प्राय: उत्पादक वस्तु का उत्पादन उस सीमा तक करेगा, जहाँ पर वस्तु की कीमत उत्पादन लागत के बराबर होती है, क्योंकि इस सीमा के बाद उत्पादन लागत मूल्य की तुलना में अधिक हो जाती है।

किसी वस्तु की पूर्ति, पूर्ति के नियम (Law of Supply) से नियन्त्रित होती है। जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं कि ऊँची कीमत पर वस्तु की अधिक मात्रा तथा नीची कीमत पर वस्तु की कम मात्रा बेची या उत्पादित की जाएगी। चित्र 2 से इस बात को स्पष्ट किया गया है।

चित्र में SS पूर्ति रेखा है। जब बाजार में वस्तु का मूल्य OM है तो वस्तु की पूर्ति ON रहती है। इस पूर्ति पर वस्तु की सीमान्त लागत NP के बराबर है। यदि वस्तु के मूल्य में OM से OM_1 की वृद्धि हो जाती है, तो वस्तु की पूर्ति में ON से ON_1 की वृद्धि हो जाती है और वस्तु की सीमान्त लागत N_1P_1 हो जाती है। इस प्रकार पूर्ति रेखा दो बातों को स्पष्ट करती है—(i) एक निश्चित कीमत में पूर्ति की मात्रा, तथा (ii) पूर्ति मात्रा की सीमान्त लागत।

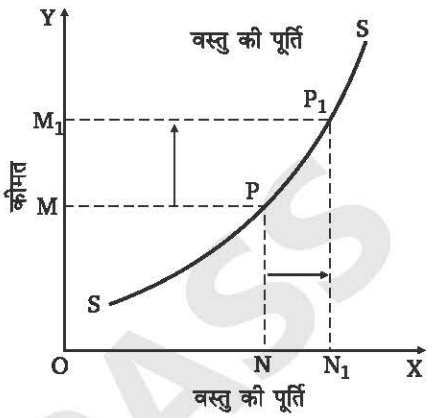

चित्र 2

प्र.19. उपभोक्ता बचत एवं उत्पादक बचत की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
Make clear the concepts of Consumer Surplus and Producer Surplus.

उत्तर

उपभोक्ता बचत तथा उत्पादक बचत की अवधारणाएँ
(Concepts of Consumer Surplus and Producer Surplus)

उपभोक्ता की बचत (Consumer Surplus) से अभिप्राय कुल उपभोग की जाने वाली वस्तु की सभी इकाइयों के उपभोग के लिए एक व्यक्ति (अर्थात उपभोक्ता) जितनी कुल मूल्य राशि देने को तैयार है तथा वास्तव में जितनी कीमत इन इकाइयों के लिए वह देता है, उसके अन्तर से है।

उपभोक्ता बचत की अवधारणा की व्याख्या चित्र 1 की सहायता से की जा सकती है—

चित्र में AD माँग वक्र है जो उस कीमत को प्रदर्शित करता है जिसे उपभोक्ता वस्तु की प्रत्येक उस इकाई के लिए भुगतान करने के लिए तैयार है जिसे वह खरीदना चाहता है। यदि वह OM मात्रा खरीदने का निर्णय लेता है तो वह जितनी मुद्रा भुगतान करने के लिए तैयार है = $OAEM$ है। आरम्भ में वह अधिक कीमत भुगतान करने के लिए तैयार है (या प्रत्येक अगली इकाई के लिए कम कीमत) क्योंकि ऐसी प्रत्येक अगली इकाई से कम और कम सीमान्त उपयोगिता प्राप्त होती है (ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता नियम के अनुसार)। वह अतिरिक्त इकाई जिसे वह क्रय कर रहा उससे उसको कीमत के बराबर MU (सन्तुष्टि के मौद्रिक मूल्य के रूप में अनुमान) प्राप्त होना चाहिए। फिर भी, बाजार में किसी वस्तु की सभी इकाइयों के लिए वह समान कीमत का भुगतान करता है, जिन्हें वह खरीदना चाहता है (या वास्तव में खरीदता है)। $OPEM$ (OP बाजार कीमत पर) वह मूल्य है जिसे उपभोक्ता OM मात्रा खरीदने के लिए वास्तव में भुगतान करता है।

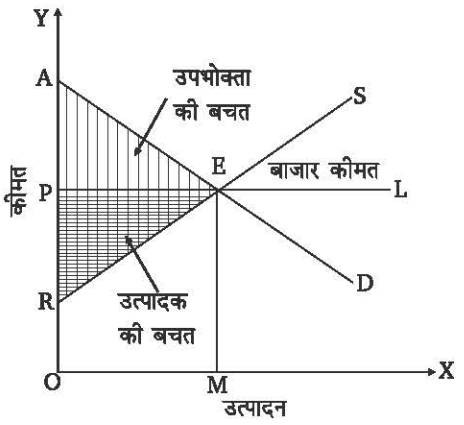

चित्र 1

अत: OM मात्रा के लिए वह जो भुगतान करने को तैयार है वह उस राशि से अधिक है जिसे वह वास्तव में भुगतान करता है। यही अन्तर उपभोक्ता की बचत है। इसे निम्नवत व्यक्त किया जा सकता है—

उपभोक्ता की बचत = क्षेत्र $OAEM$ − क्षेत्र $OPEM$ = क्षेत्र PAE

इस तरह, उपभोक्ता की बचत/आधिक्य का क्षेत्र माँग वक्र से नीचे और कीमत रेखा से ऊपर है। संलग्न चित्र में माँग वक्र (AD) के नीचे का क्षेत्र और कीमत रेखा PL के ऊपर का क्षेत्र PAE के बराबर है।

उत्पादक की बचत (Producer's Surplus) वस्तु की विभिन्न इकाइयों को बेचकर इनके बाजार मूल्य तथा इन इकाइयों पर हुई उत्पादन की सीमान्त लागत के अन्तरों का योग है। संलग्न चित्र में OM इकाइयों से प्राप्त कुल राशि आयत $OPEM$ के क्षेत्र द्वारा प्रदर्शित की गई है और OM इकाइयों के उत्पादन पर लगी कुल लागत को $OREM$ द्वारा प्रदर्शित किया गया है। चूँकि

AVC से ऊपर *MC* वक्र का भाग फर्म के पूर्ति वक्र को प्रकट करता है, *OREM* वस्तु की *OM* इकाइयों के उत्पादन करने की कुल लागत को प्रकट करता है। अत: उत्पादक की बचत = आयत *OPEM* का क्षेत्र – *OREM* का क्षेत्र = *RPE* क्षेत्र।

स्पष्टतया, **उत्पादक की बचत कीमत रेखा से नीचे तथा पूर्ति वक्र के ऊपर का क्षेत्र है।**

आबंटन कुशलता (Allocative Efficiency) तब प्राप्त होती है जब उपभोक्ता की बचत तथा उत्पादक की बचत दोनों एक-दूसरे के बराबर होते हैं। पूर्ण प्रतियोगी बाजार में आबंटन कुशलता स्वत: बाजारी शक्तियों के स्वतन्त्र कार्यकरण द्वारा प्राप्त हो जाती है। इसके विपरीत बाजार का एकाधिकार प्रारूप आबंटन कुशलता को प्राप्त करने में असफल रहता है।

प्र.20. मिश्रित अर्थव्यवस्था से आपका क्या अभिप्राय है? मिश्रित अर्थव्यवस्था में सरकार की भूमिका की विवेचना कीजिए।

What do you understand by Mixed Economy? Discuss the role of government in a mixed economy.

उत्तर

मिश्रित अर्थव्यवस्था
(Mixed Economy)

मिश्रित अर्थव्यवस्था से अभिप्राय (Meaning of Mixed Economy)

मिश्रित अर्थव्यवस्था में दो आर्थिक प्रणालियों—पूँजीवाद (Capitalism) एवं समाजवाद (Socialism)—का समावेश होता है। युद्धोत्तर काल में अर्थव्यवस्थाओं के विकास के लिए मिश्रित आर्थिक प्रणाली को अपनाया गया। मिश्रित अर्थव्यवस्था में पूँजीवाद एवं समाजवाद दोनों प्रणालियों की विशेषताओं का सह-अस्तित्व (Co-existence) होने के कारण मिश्रित अर्थव्यवस्था को पूँजीवाद एवं समाजवाद का एक मध्यम मार्ग कहा जा सकता है।

पूँजीवाद एवं समाजवाद दोनों ही प्रणालियों में दोष विद्यमान थे। पूँजीवाद में 'कोई सरकारी हस्तक्षेप नहीं' की नीति के कारण व्यापार चक्र, प्रतियोगिता, अपव्यय, आर्थिक अस्थिरता, वर्ग-संघर्ष, शोषण जैसी समस्याएँ उपस्थित होती हैं जबकि समाजवाद में ठीक इसके विपरीत आर्थिक स्वतन्त्रताओं की समाप्ति, नौकरशाही प्रेरणा का अभाव, आदि दोष उपस्थित थे। दोनों ही प्रणालियों के दोषपूर्ण होने के कारण युद्धोत्तर काल में यह आवश्यक समझा गया किअर्थव्यवस्था के सर्वांगीण विकास के लिए तथा सामाजिक एवं आर्थिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए एक ऐसी आर्थिक प्रणाली क्रियान्वित की जाए जिसमें पूँजीवाद की स्वतन्त्रता तो हो, किन्तु वह स्वतन्त्रता सरकार की नीतियों द्वारा संचालित एवं नियन्त्रित हो तथा साथ ही साथ सरकार द्वारा संचालित सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) अर्थव्यवस्था को एक समाजवादी आधार दे सके। इसी विचारधारा के परिणामस्वरूप मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy) का विचार अस्तित्व में आया।

मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र (Private Sector) तथा सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) दोनों का सह-अस्तित्व होता है।

प्रो० जे०डब्ल्यू० ग्रोव के शब्दों में, "मिश्रित अर्थव्यवस्था की अनेक पूर्व मान्यताओं में से एक यह है कि उत्पादन एवं उपभोग सम्बन्धी निर्णयों को प्रभावित करने में निजी क्षेत्र को स्वतन्त्र पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत जितनी स्वतन्त्रता प्राप्त होती है मिश्रित अर्थव्यवस्था में उससे कम स्वतन्त्रता प्राप्त होती है तथा सार्वजनिक क्षेत्र पर सरकारी नियन्त्रण उतना कठोर नहीं होता जितना केन्द्रीकृत समाजवादी अर्थव्यवस्था में पाया जाता है।"

भारतीय योजना आयोग के अनुसार, "मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र घनिष्ट रूप से सम्बन्धित होते हैं तथा दोनों एक इकाई के दो घटकों के रूप में कार्य करते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र एक साथ पूरक घटकों के रूप में कार्य करते हैं। दोनों क्षेत्रों का कार्य क्षेत्र सरकार द्वारा निर्धारित कर दिया जाता है। सामाजिक हित में सरकार निजी क्षेत्र की क्रियाओं में भी प्रत्यक्ष हस्तक्षेप करती है। इस प्रकार मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र सरकार की नीतियों द्वारा नियन्त्रित होता है। इसलिए प्रो. ए०पी० लर्नर मिश्रित अर्थव्यवस्था को नियन्त्रित अर्थव्यवस्था (Controlled Economy) कहकर पुकारते हैं।

मिश्रित अर्थव्यवस्था में सरकार की भूमिका
(Role of Government in the Mixed Economy)

मिश्रित अर्थव्यवस्था आधुनिक युग का एक लोकप्रिय आर्थिक क्रम अथवा आर्थिक पद्धति है। विश्व की अधिकांश अर्थव्यवस्थाएँ अब मिश्रित अर्थव्यवस्थाएँ हैं। जिनमें सरकार सक्रिय भूमिका निभाती है।

आधुनिक मिश्रित अर्थव्यवस्था में निम्नलिखित बातें सरकार की भूमिका को स्पष्ट करती हैं—

अर्थव्यवस्था को एक तेज शुरुआत देना (To Give a Kick-start to the Economy)

कम विकसित अर्थव्यवस्थाएँ प्राय: निम्न स्तरीय सन्तुलन पाश में जकड़ी रहती हैं। इस पाश अथवा जाल को तोड़ने के लिए ऐसी अर्थव्यवस्थाओं को अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में तेजी से बड़े निवेश करने की आवश्यकता होती है। एक सशक्त संरचनात्मक आधार के निर्माण के लिए अधिक सार्वजनिक निवेश करने की आवश्यकता होगी ताकि अर्थव्यवस्था में निवेश-सहयोगी वातावरण उत्पन्न हो सके। सरकारी निवेश से ही निम्न व्यावसायिक मनोदशा जिसके कारण उत्पादन क्रिया निम्न होती है, के गतिरोध को तोड़ा जा सकता है। उत्पादन क्रिया में प्रत्यक्ष भागीदारी के अतिरिक्त, सरकार को निवेशकों को प्रलोभन-पैकेज देने होंगे ताकि अर्थव्यवस्था तेज गति से आरम्भ हो जाए और स्थिर अवस्था से 'गतिशील वृद्धि प्रक्रिया' की ओर अग्रसर हो जाए।

आर्थिक संवृद्धि को आर्थिक विकास में रूपान्तरित करना (To Transform Economic Growth into Economic Development)

आर्थिक संवृद्धि से अभिप्राय है, प्रति व्यक्ति आय में दीर्घकालीन वृद्धि जबकि आर्थिक विकास से अभिप्राय है प्रति व्यक्ति आय में निरन्तर वृद्धि के साथ-साथ वृद्धि के लाभों को समाज के विभिन्न व्यक्तियों एवं परिवारों में समान रूप से वितरण। आर्थिक संवृद्धि को आर्थिक विकास में परिवर्तित करने में सरकार की निर्णायक भूमिका होती है। अन्य शब्दों में, संवृद्धि, सरकार की प्रत्यक्ष सहभागिता के बिना भी, सम्भव हो सकती है, परन्तु सामाजिक न्याय बिना सरकारी हस्तक्षेप के सम्भव नहीं है। सरकार प्राय: अपनी कर नीति, आर्थिक सहायता, कीमत नियन्त्रण, मजदूरी नियन्त्रण तथा सामाजिक वितरण प्रणाली के माध्यम से जनता को सामाजिक न्याय प्रदान करती है।

पम्प प्राइमिंग (Pump-priming)

निर्धन अर्थव्यवस्थाएँ निम्न स्तरीय सन्तुलन पाश (Low Level Equilibrium Trap) में फँसी होती हैं, बीमार अर्थव्यवस्थाएँ चक्रीय मंदी (Cyclical Depression) का शिकार होती हैं। यह वह अवस्था होती है जिसमें अर्थव्यवस्था में माँग में बहुत अधिक गिरावट के फलस्वरूप उत्पादन अप्रयुक्त अथवा अप्रयोज्य रह जाता है। ऐसी स्थिति में स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था के समर्थक यह सुझाव देते हैं कि अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में सरकार द्वारा एकमुश्त निवेश (Lumpsum Investment) किया जाना चाहिए। प्राय: यह सुझाव भी दिया जाता है कि माँग का सृजन करने अथवा बढ़ाने की दृष्टि से सरकार द्वारा स्वायत्त निवेश (Autonomous Investment) किया जाए। माँग के निम्न स्तर में जैसे ही वृद्धि हो जाएगी, निजी निवेश गतिशील होगा: निष्क्रिय क्षमता सक्रिय हो जाएगी और इसका धीरे-धीरे पूरा उपयोग होने लगेगा। इससे आर्थिक प्रणाली धीरे-धीरे अपनी सामान्य प्रक्रिया की ओर अग्रसर होती जाएगी।

उभरती चुनौतियों का सामना करना (To Combat Emerging Challenges)

आर्थिक विकास की प्रक्रिया में विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को कई उभरती हुई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जैसे— (i) जनसंख्या वृद्धि की चुनौती, (ii) आर्थिक और सामाजिक आधारभूत संरचना की चुनौती, (iii) लिंग-भेद की चुनौती आदि। यह सभी चुनौतियाँ संवृद्धि तथा विकास के मार्ग में बहुत बड़ी बाधाएं हैं। इन चुनौतियों का सामना करने में सरकार की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। जनसंख्या वृद्धि की समस्या का सामना परिवार कल्याण कार्यक्रमों की समुचित रणनीति द्वारा किया जा सकता है। शिक्षा तथा सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रमों के क्षेत्रों में अधिक स्वायत्त निवेश करने से सामाजिक तथा आर्थिक आधारित संरचना की अवस्था को सुधारा जा सकता है। लिंग-भेद चुनौती का सामना महिला सशक्तिकरण (Women Empowerment) पर कतिपय रणनीतिक प्रयासों (Strategic Efforts) द्वारा किया जा सकता है।

आर्थिक विकास को धारणीय विकास में रूपान्तरित करना (To Transform Economic Development into Sustainable Development)

धारणीय विकास से अभिप्राय विकास की उस प्रक्रिया से है जिसे अत्यधिक लम्बे समय तक प्राकृतिक संसाधनों को बिना अत्यधिक विदोहन के घटित किया जा सके ताकि भावी पीढ़ियों (जिसे देश की संसाधन सम्पन्नता द्वारा निर्धारित किया जाता है) की उत्पादन क्षमता कम न हो। विकास चाहे कितनी भी तेज गति से किया गया हो, परन्तु उसका महत्त्व तब कम या संकुचित हो जाता है जब इससे भावी पीढ़ी की उत्पादन क्षमता कम हो जाती है। प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक शोषण करने से विकास की वर्तमान दर बढ़ सकती है। परन्तु इसका परिणाम यह होगा कि भावी पीढ़ी की उत्पादन क्षमता घट जाएगी। ऐसा तब होता है जब

पेट्रोल तथा डीजल जैसे प्राकृतिक संसाधन **गैर-नवीकरणीय** (Non-renewable) होते हैं। केवल कानून अथवा वैधानिक अधिनियम द्वारा ही इस सन्दर्भ में सरकार भावी पीढ़ियों के हितों की रक्षा कर सकती है।

प्र.21. उत्पादन सम्भावना वक्र में विवर्तन/घुमाव किन कारणों से होता है? स्पष्ट कीजिए।

What are the reasons for shifting/rotation in Production Possibility Curve? Make clear.

उत्तर

उत्पादन संभावना वक्र का विवर्तन/घुमाव
(Shifting/Rotation of Production Possibility Curve)

उत्पादन संभावना वक्र सदैव स्थिर नहीं रहती है, वास्तविक जीवन में इसकी मान्यताओं में परिवर्तन होता रहता है जैसे उत्पादन की तकनीक में परिवर्तन होना अथवा उत्पादन के साधनों में वृद्धि या कमी होना। इन मान्यताओं में परिवर्तन होने के फलस्वरूप उत्पादन संभावना वक्र का विवर्तन अथवा घुमाव होता है। उत्पादन संभावना वक्र निम्नलिखित कारणों से खिसकेगी (Shift) अथवा उसका घुमाव (Rotation) होगा।

1. साधनों में परिवर्तन (Change in Resources)
2. तकनीक में परिवर्तन (Change in Technology)।

1. साधनों में परिवर्तन (Change in Resources)

(a) **साधनों में वृद्धि**—अगर साधनों में वृद्धि होती है, तब हम दोनों वस्तुओं का अधिक उत्पादन कर सकते हैं। इस प्रकार, उत्पादन संभावना वक्र दाईं ओर खिसक जाती है (ab से a_1b_1 की ओर खिसकाव) देखिए चित्र 1.

ab : उपलब्ध साधनों द्वारा प्रस्तुत उत्पादन संभावना वक्र

a_1b_1 : जब साधनों में वृद्धि होती है।

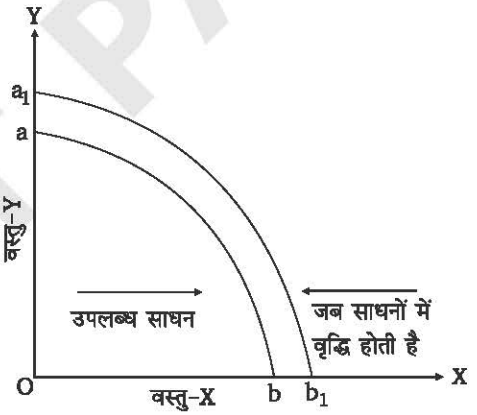

चित्र 1

(b) **साधनों में कमी**—अगर साधन कम हो जाएँ, तो हम दोनों ही वस्तुओं का कम उत्पादन कर पाएँगे। इस प्रकार उत्पादन संभावना वक्र बाईं ओर खिसक जाता है। (ab से a_1b_1 की ओर खिसकाव) देखिए चित्र 2.

ab : उपलब्ध साधनों द्वारा प्रस्तुत उत्पादन संभावना वक्र

a_1b_1 : जब साधन कम हो जाते हैं।

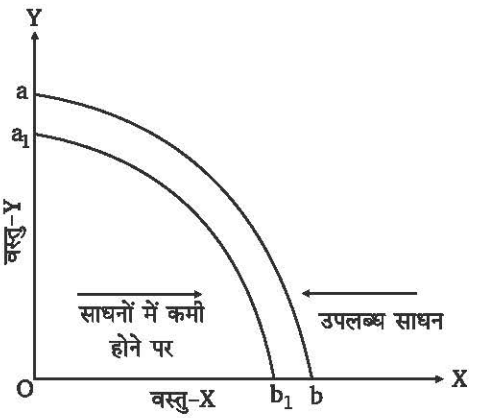

चित्र 2

2. तकनीक में परिवर्तन (Change in Technology)

(a) **वस्तु X-के उत्पादन के लिए कुशल तकनीक का प्रयोग**—वस्तु-X के उत्पादन के लिए कुशल तकनीक से अभिप्राय है कि उपलब्ध साधनों के प्रयोग से वस्तु-X की अधिक मात्रा का उत्पादन किया जा सकता है। इसलिए, उत्पादन संभावना वक्र में घुमाव होगा देखिए चित्र 3 (ab से ab_1 की ओर घुमाव)।

(b) **वस्तु-Y के उत्पादन के लिए कुशल तकनीक का प्रयोग**—वस्तु-Y के उत्पादन के लिए कुशल तकनीक से अभिप्राय है कि उपलब्ध साधनों के प्रयोग द्वारा वस्तु-Y की अधिक मात्रा का उत्पादन किया जा सकता है। इसलिए उत्पादन संभावना वक्र में घुमाव होना। चित्र 4 देखें। (ab से a_1b की ओर घुमाव)।

TOUCH n PASS

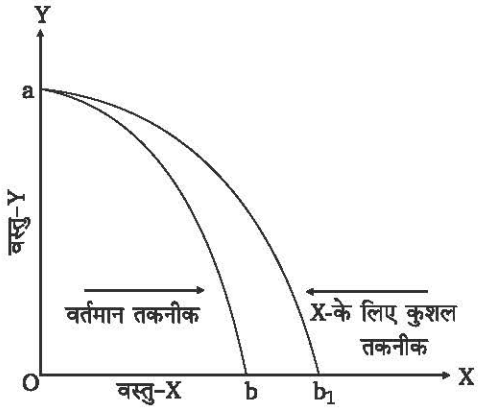

चित्र 3

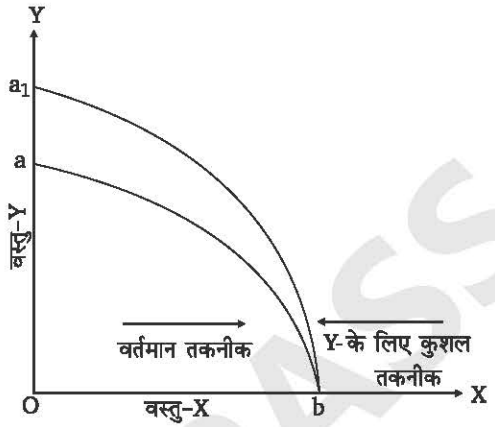

चित्र 4

(c) **दोनों वस्तुओं (X और Y) के उत्पादन के लिए कुशल तकनीक का प्रयोग** —दोनों वस्तुओं के उत्पादन के लिए कुशल तकनीकी का अर्थ है कि दोनों ही वस्तुओं X और Y का अधिक उत्पादन संभव है। तदनुसार, उत्पादन संभावना वक्र दाईं ओर खिसकेगा। देखिए चित्र 5। (ab से a_1b_1 की ओर खिसकाव)।

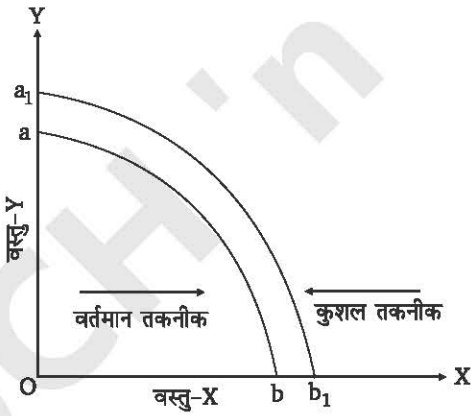

चित्र 5

❑

TOUCH 'n PASS

UNIT-II

उपभोक्ता सिद्धान्त
Consumer Theory

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. सीमान्त तुष्टिगुण के सम्बन्ध में प्रो० एली की परिभाषा दीजिए तथा सूत्र भी बताइए।
Give Prof. Ally's definition of Marginal Utility and also give its formula.

उत्तर सीमान्त तुष्टिगुण के सम्बन्ध में **प्रो० एली** ने कहा है, "किसी भी व्यक्ति के लिए वस्तु के स्टॉक की अन्तिम अथवा सीमान्त इकाई के तुष्टिगुण को उस वस्तु-विशेष का सीमान्त तुष्टिगुण कहा जाता है।"
वस्तु के सीमान्त तुष्टिगुण को निम्न सूत्र द्वारा समझा जा सकता है—

$$\text{वस्तु के सीमान्त तुष्टिगुण} = \frac{\text{वस्तु के कुल तुष्टिगुण में परिवर्तन}}{\text{वस्तु की कुल मात्रा में परिवर्तन}}$$

प्र.2. तुष्टिगुण का अर्थ समझाते हुए इसे परिभाषित कीजिए।
Explaining its meaning, define utility.

उत्तर अर्थशास्त्र की दृष्टि से तुष्टिगुण का अर्थ सामान्य अर्थ से कुछ भिन्न है। इस अर्थ में तुष्टिगुण का अर्थ वस्तु की मानवीय आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने की 'शक्ति' या 'क्षमता' से होता है। उदाहरणार्थ, रोटी में भूख मिटाने की तथा पानी में प्यास बुझाने की क्षमता है। इसलिए रोटी और पानी मनुष्य के लिए तुष्टिगुण रखते हैं।
प्रो० मार्शल के शब्दों में "किसी समय किसी मनुष्य के लिए किसी वस्तु के तुष्टिगुण को उस सोमा से मापा जाता है, जिस तक कि वह किसी आवश्यकता को सन्तुष्ट करता है।"

प्र.3. तुष्टिगुण की कोई दो प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।
Write any two main characteristics of utility.

उत्तर तुष्टिगुण की विशेषताएँ हैं—1. तुष्टिगुण का सम्बन्ध 'लाभदायकता' से नहीं है।
2. तुष्टिगुण व्यक्ति विशेष की इच्छा की तीव्रता, उसकी रुचि, फैशन, आदत, तथा परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

प्र.4. सीमान्त तुष्टिगुण तथा कुल तुष्टिगुण में क्या सम्बन्ध है? संक्षेप में लिखिए।
What is the relationship between Marginal and Total Utility? Write in brief.

उत्तर 1. पूर्ण तृप्ति के पश्चात् जब सीमान्त तुष्टिगुण शून्य हो जाता है तो कुल तुष्टिगुण का बढ़ना बन्द हो जाता है। इस बिन्दु पर कुल तुष्टिगुण अधिकतम होता है। यह बिन्दु पूर्ण सन्तुष्टि का बिन्दु कहलाता है।
2. पूर्ण तृप्ति के बिन्दु के बाद वस्तु का उपभोग करने से, उससे मिलने वाला तुष्टिगुण ऋणात्मक हो जाता है अर्थात् कम हो जाता है और कुल तुष्टिगुण घटने लगता है। इस प्रकार जब सीमान्त तुष्टिगुण ऋणात्मक या कम हो जाता है तो कुल तुष्टिगुण घटने लगता है।

प्र.5. सीमान्त तुष्टिगुण के ऋणात्मक होना कुल तुष्टिगुण को किस प्रकार प्रभावित करता है?
How does Marginal Utility being negative affect Total Utility?

उत्तर जब सीमान्त तुष्टिगुण के ऋणात्मक हो जाता है, जब कुल तुष्टिगुण घटने लगता है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.6. मूल्य निर्धारण में सीमान्त तुष्टिगुण का क्या महत्त्व है?

What is the importance of marginal Utility in Price Determination?

उत्तर मूल्य निर्धारण में सीमान्त तुष्टिगुण माँग पक्ष को निर्धारित करता है। अत: औसत तुष्टिगुण या कुल तुष्टिगुण की तुलना में मूल्य निर्धारण में सीमान्त तुष्टिगुण (उपयोगिता) की निर्णायक भूमिका होती है। वास्तव में, कोई भी उपभोक्ता किसी भी वस्तु का सीमान्त तुष्टिगुण से अधिक मूल्य नहीं देगा। अत: सीमान्त तुष्टिगुण क्रेता द्वारा दिए जाने वाले मूल्य की उच्चतम सीमा होती है।

प्र.7. उदासीनता वक्र की स्थिति से क्या आशय है?

What do you mean by the condition of Indifference Curve?

उत्तर उदासीनता वक्र मूलबिन्दु के प्रति उन्नतोदर होते हैं।

प्र.8. उदासीनता वक्र विश्लेषण में आय प्रभाव प्रदर्शित करने में क्या परिवर्तित होती है?

What changes in showing income effect in Indifference Curve Analysis?

उत्तर उदासीनता वक्र विश्लेषण में आय प्रभाव प्रदर्शित करने में आय परिवर्तित होती है किन्तु कीमत स्थिर रहती है।

प्र.9. उदासीनता वक्र से आपका क्या आशय है?

What do you mean by Indifference Curve?

उत्तर उदासीनता वक्र दो वस्तुओं के ऐसे विभिन्न संयोग प्रकट करता है जिनसे उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्राप्त होती है।

प्र.10. सन्तुलन की अवस्था में उदासीनता वक्र रेखा का ढाल कैसा प्रतीत होता है?

How does the slope of Indifference Curve look in the condition of equilibrium?

उत्तर सन्तुलन की अवस्था में उदासीनता वक्र रेखा का ढाल मूल्य रेखा के ढाल के समान होता है।

प्र.11. उदासीनता मानचित्र में उदासीन वक्र कितने होते हैं?

How many indifference curves are there in an Indifference diagram?

उत्तर उदासीनता मानचित्र में उदासीन वक्र अनन्त हो सकते हैं।

प्र.12. घटिया वस्तुओं के सम्बन्ध में आय प्रभाव की स्थिति बताइए।

State the condition of Income Effect in relation to inferior goods.

उत्तर घटिया वस्तुओं के सम्बन्ध में आय प्रभाव ऋणात्मक होता है।

प्र.13. उदासीनता वक्र की सहायता से उपभोक्ता वस्तुओं से प्राप्त सन्तुष्टि की माप कैसे कर सकता है?

How can a consumer measure satisfaction from goods by using Indifference Curve?

उत्तर उदासीनता वक्र की सहायता से उपभोक्ता वस्तुओं से प्राप्त सन्तुष्टि की माप क्रम रूप में कर सकता है।

प्र.14. गिफिन वस्तुएँ किसे कहते हैं?

What are Giffen goods?

उत्तर घटिया वस्तुएँ गिफिन वस्तुएँ कहलाती हैं अर्थात् जिन वस्तुओं के सम्बन्ध में आय प्रभाव ऋणात्मक होता है।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. उपयोगिता का अर्थ एवं परिभाषा लिखिए।

Write the meaning and definition of utility.

उत्तर

उपयोगिता का अर्थ
(Meaning of Utility)

अर्थशास्त्र में 'उपयोगिता' शब्द का अर्थ किसी पदार्थ के उपभोग से मिलने वाली सन्तुष्टि से है (The Satisfaction that a Consumer receives from Consuming Commodities is called Utility)। जब किसी वस्तु में आवश्यकता को

सन्तुष्ट करने की शक्ति होती है, भले ही उस वस्तु के उपभोग से उपभोक्ता को हानि ही क्यों न हो, फिर भी वस्तु में उपयोगिता का गुण विद्यमान रहता है। संक्षेप में, कहा जा सकता है कि उपयोगिता किसी वस्तु की वह शक्ति है जो किसी व्यक्ति की आवश्यकता को पूरा करती है। सामाजिक मान्यताओं के आधार पर नशीले पदार्थों के उपभोग को अनुचित कहा जाता है, परन्तु आर्थिक दृष्टि से वे अनुपयोगी नहीं हैं, क्योंकि इन वस्तुओं के उपभोग से उपभोक्ता की आवश्यकता की सन्तुष्टि होती है और उपयोगिता मिलती है। **प्रो० बॉघ** (Waugh) ने उपयोगिता के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "अर्थशास्त्री के लिए उपयोगिता आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने की क्षमता है।" इसी प्रकार **एडवर्ड नेविन** ने कहा है कि "अर्थशास्त्र में उपयोगिता का अर्थ उस सन्तुष्टि या आनन्द या लाभ से है जो किसी व्यक्ति को धन या सम्पत्ति के उपभोग से प्राप्त होता है।"

उपयोगिता सापेक्षिक (relative) होती है। एक ऐसी वस्तु जो किसी व्यक्ति की आवश्यकता को तुष्ट करती है वह उसके लिए उपयोगी है, यदि यह वस्तु किसी दूसरे की आवश्यकता की तुष्टि नहीं करती है, तो वह वस्तु उस व्यक्ति के लिए उपयोगी नहीं होगी। संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि जो वस्तु जिस किसी भी आवश्यकता की जितनी अधिक सन्तुष्टि कर सके उसमें उतना ही अधिक उपयोगिता का गुण होता है।

प्र.2. चित्र की सहायता से सीमान्त उपयोगिता एवं कुल उपयोगिता में सम्बन्ध बताइए।
With the help of a diagram, tell of the relationship between Marginal Utility and Total Utility.

उत्तर

सीमान्त उपयोगिता एवं कुल उपयोगिता का सम्बन्ध
(Relationship between Marginal Utility and Total Utility)

सीमान्त उपयोगिता तथा कुल उपयोगिता का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को नीचे स्पष्ट किया गया है—

1. रोटी की पहली इकाई से छठी इकाई तक, सीमान्त उपयोगिता घटती जाती है, परन्तु कुल उपयोगिता बढ़ती है। कुल उपयोगिता उसी क्रम से बढ़ती है जिस क्रम से सीमान्त उपयोगिता घटती है।
2. रोटी की छठी इकाई पर उपभोक्ता को पूर्ण सन्तुष्टि प्राप्त होती है। इस बिन्दु पर **सीमान्त उपयोगिता शून्य है, जबकि कुल उपयोगिता अधिकतम है।** रोटी की छठी इकाई के उपभोग करने के बाद कुल उपयोगिता की वृद्धि रुक जाती है।
3. शून्य बिन्दु के बाद अर्थात् पूर्ण सन्तुष्टि बिन्दु के बाद **सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक हो जाती है।** ऐसी दशा में कुल उपयोगिता भी घटने लगती है।

चित्र द्वारा स्पष्टीकरण—सीमान्त उपयोगिता और कुल उपयोगिता के सम्बन्ध को हम चित्र 1 से स्पष्ट कर सकते हैं। चित्र को दो भागों में बांटा गया है—

1. **चित्र के प्रथम भाग (AMM_1) में कुल उपयोगिता वक्र**—ज्यों-ज्यों रोटी की इकाइयों का उपयोग किया जाता है त्यों-त्यों कुल उपयोगिता की वृद्धि दर घटते हुए क्रम में होती है। इसे चित्र में आच्छादित त्रिभुजों से दिखाया गया है। आच्छादित त्रिभुजों की तुलना आपस में की जाए तो स्पष्ट होता है कि आच्छादित त्रिभुज उत्तरोत्तर घटते जा रहे हैं, अत: कुल उपयोगिता घटती दर पर बढ़ती है।
2. **चित्र के द्वितीय भाग (ABC) में सीमान्त उपयोगिता वक्र**—सीमान्त उपयोगिता वक्र एक गिरती हुई रेखा है, जो यह बतलाती है कि ज्यों-ज्यों उपभोक्ता रोटी की इकाइयों का उपभोग करता है, उसे प्राप्त होने वाली अतिरिक्त उपयोगिता घटते हुए क्रम में प्राप्त होती है। रोटी की छठी इकाई के उपभोग से सीमान्त उपयोगिता शून्य (Zero) हो जाती है। चित्र में B बिन्दु पूर्ण सन्तुष्टि का बिन्दु है, ठीक इसी बिन्दु के ऊपर M बिन्दु स्थित है। इससे स्पष्ट है कि शून्य सीमान्त उपयोगिता के बिन्दु पर कुल उपयोगिता सर्वाधिक होती है। B बिन्दु के बाद यदि उपभोक्ता रोटी की सातवीं और आठवी इकाई का उपभोग करता है, तो उसे प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक होगी जिसे चित्र में BC रेखा द्वारा दिखाया गया है। ऋणात्मक सीमान्त उपयोगिता के प्राप्त होने से कुल उपयोगिता में भी कमी आने लगती है। इस स्थिति को चित्र में MM_1 से दिखाया गया है।

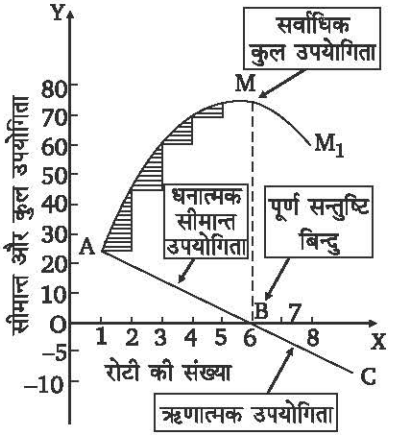

चित्र 1

संक्षेप में

1. जब सीमान्त उपयोगिता धनात्मक होती है, तब कुल उपयोगिता बढ़ती है।
2. जब सीमान्त उपयोगिता शून्य होती है, तो कुल उपयोगिता अधिकतम होती है।
3. जब सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक होती है, तो कुल उपयोगिता घटती है।

प्र.3. सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम की मान्यताओं को संक्षेप में बताइए।
Explain the brief the assumptions of the Law of Diminishing Marginal Utility.

उत्तर

सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम की मान्यताएँ
(Assumptions of the Law of Diminishing Marginal Utility)

सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम की प्रमुख मान्यताएँ निम्नलिखित हैं—

1. **इकाइयों के गुण व रूप में समरूप होना**—यह नियम तभी क्रियाशील होगा जब उपभोग की जाने वाली वस्तुएँ गुण और रूप में समरूप हो। वस्तुओं के गुणों का अन्तर नियम को लागू नहीं होने देगा।
2. **वस्तु की इकाइयों का उपयुक्त होना**—उपभोक्ता के द्वारा जिन वस्तुओं का उपभोग किया जाता है वे वस्तुएँ उसके सन्दर्भ में प्रामाणिक होनी चाहिए। प्रामाणिकता का अभिप्राय यह है कि वस्तुओं की ईकाइयाँ उपभोक्ता के आकार-प्रकार के अनुरूप होनी चाहिए। यदि उपभोग की जाने वाली वस्तुओं की ईकाइयाँ उपभोक्ता के लिए उपयुक्त नहीं हैं, तो यह नियम क्रियाशील नहीं होगा।
3. **वस्तु का उपभोग एक ही समय में होना चाहिए**—उपभोक्ता जिन वस्तुओं का उपभोग कर रहा है, उसके उपभोग का क्रम तब तक नहीं टूटना चाहिए, जब तक कि उसे सन्तुष्टि नहीं मिलती है। यदि उपभोग का क्रम बीच-बीच में टूटता है या समयान्तर (Time gap) हुआ, तो नियम लागू नहीं होगा।
4. **उपभोक्ता की मानसिक दशा में परिवर्तन नहीं होना चाहिए**—उपयोगिता ह्रास नियम की चौथी मान्यता यह है कि उपभोग करते समय उपभोक्ता की मानसिक स्थिति में परिवर्तन नहीं आना चाहिए। उदाहरण के लिए, उपभोग करते समय उपभोक्ता चिन्तामग्न है जिसके कारण उसके उपयोगिता शन्य होगी। चिन्ता के समाप्त होते ही उसके लिए रोटी की उपयोगिता बढ़ जाएगी। यही बात मादक व नशीली वस्तुओं के लिए लागू होती है। ऐसी दशा में उपयोगिता ह्रास नियम काम नहीं करेगा, क्योंकि उपभोक्ता की मानसिक दशा असन्तुलित हो चुकी है।
5. **वस्तुओं के मूल्य में परिवर्तन न होना**—उपभोक्ता जिस समय किसी वस्तु का उपभोग करता है, उस वस्तु अथवा उसकी स्थानापन्न वस्तु के मूल्य में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए।
6. **उपभोक्ता की आय, फैशन, रुचि व स्वभाव का यथास्थिर रहना**—कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं जिनका उपभोग लम्बे समय तक किया जाता है। इस बीच उपभोक्ता की आय, फैशन, स्वभाव, रुचि आदि में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं आना चाहिए। यदि इन बातों में परिवर्तन आ गया, तो उपयोगिता ह्रास नियम लागू नहीं होगा।
7. **उपयोगिता ह्रास नियम केवल सुखमय आर्थिक दशाओं में ही लागू होता है**—सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम सुखमय अवस्था (Pleasure Economy) में ही लागू होता है, दुखमय अवस्था (Painful Economy) में नहीं। उदाहरण के लिए, खून की कमी से बेहोश पड़े व्यक्ति को खून की प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय इकाई से अधिक उपयोगिता मिलेगी, पर जब वह सामान्य स्थिति में आएगा तभी सीमान्त उपयोगिता में कमी आएगी।

प्र.4. मूल्य का विरोधाभास अथवा हीरा-पानी विरोधाभास से आप क्या समझते हैं? संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
What do you understand by Paradox of Value or Diamond-water Paradox? Write a brief note.

उत्तर

मूल्य का विरोधाभास अथवा हीरा-पानी विरोधाभास
(Paradox of Value or the Diamond-Water Paradox)

एडम स्मिथ के हीरा-पानी विरोधाभास की व्याख्या कुल उपयोगिता एवं सीमान्त उपयोगिता नियम की सहायता से की जा सकती है। यह नियम इस तथ्य पर प्रकाश डालता है कि पानी से प्राप्त कुल उपयोगिता हीरों के उपभोग से प्राप्त कुल उपयोगिता से अधिक

होने के बावजूद पानी की कीमत हीरों की कीमत से बहुत कम क्यों होती है। इस स्थिति को ही **मूल्य का विरोधाभास अथवा हीरा-पानी विरोधाभास** कहा जाता है। **एडम स्मिथ** ने जब यह देखा कि पानी संसार के सर्वाधिक उपयोगी पदार्थों में से एक है, हमारा जीवित रहना इसी पर निर्भर है, परन्तु पानी फिर भी सस्ता है। तब उन्होंने हीरा-पानी विरोधाभास को विकसित किया था। इसकी तुलना में हीरा, जो केवल सजावट की वस्तु है और जिनका व्यावहारिक महत्व भी कम है, अपेक्षाकृत बहुत महँगा है तब उन्होंने हीरा-पानी विरोधाभास को विकसित किया था। **जेवन्स** ने इस विरोधाभास की व्याख्या कुल उपयोगिता एवं सीमान्त उपयोगिता के द्वारा की है। उनके अनुसार एडम स्मिथ एक वस्तु की उस सापेक्ष दुर्लभता की उपयोगिता को भूल गए जो उस वस्तु के प्रयोग मूल्य या सीमान्त उपयोगिता के निर्धारण में सहायक होता है। एडम स्मिथ ने एक हीरे की तुलना पानी की कुल पूर्ति से की है। यदि वह एक हीरे के टुकड़े की सीमान्त उपयोगिता की तुलना पानी के एक गैलन की सीमान्त उपयोगिता से करता जबकि और पानी उपलब्ध न हो तो, इस विरोधाभास का अस्तित्व ही न होता। **किसी वस्तु की कीमत, कुल उपयोगिता के स्थान पर, सीमान्त उपयोगिता द्वारा निर्धारित होती है।** पानी अत्यधिक मात्रा में उपलब्ध होता है, अत: इसकी कुल उपयोगिता शीघ्र ही पूर्ण सन्तुष्ट बिन्दु पर पहुँच जाती है। अन्य शब्दों में, इसकी सीमान्त उपयोगिता अतिशीघ्र शून्य हो जाती है। अत: यद्यपि पानी से प्राप्त होने वाली कुल उपयोगिता बहुत अधिक है क्योंकि इसका अधिक मात्रा में उपभोग किया जाता है, फिर भी इसकी सीमान्त उपयोगिता बहुत कम होती है, इसीलिए पानी की कीमत प्राय: शून्य होती है। दूसरी ओर हीरों की उपलब्धता बहुत कम होती है, इसलिए उनकी कुल उपयोगिता कभी भी पूर्ण सन्तुष्टि बिन्दु तक नहीं पहुँच पाती है। हीरों से प्राप्त होने वाली कुल उपयोगिता नि:सन्देह कम होती है क्योंकि उपभोक्ता इन्हें सापेक्षतया कम खरीदते हैं। फिर भी हीरों की सीमान्त उपयोगिता ऊँची व धनात्मक रहती है। इसी कारण हीरों की कीमत अत्यधिक होती है।

प्र.5. सीमान्त तुष्टिगुण, औसत तुष्टिगुण एवं कुल तुष्टिगुण को परिभाषित करते हुए मूल्य निर्धारण में सीमान्त तुष्टिगुण का महत्त्व बताइए।

Defining Marginal Utility, Average Utility and Total Utility, tell the importance of Marginal Utility in price determination.

उत्तर तुष्टिगुण या उपयोगिता के तीन भेद होते हैं—1. सीमान्त तुष्टिगुण, 2. औसत तुष्टिगुण तथा 3. कुल तुष्टिगुण।

1. **सीमान्त तुष्टिगुण** एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग करने से कुल तुष्टिगुण में जो वृद्धि होती है, उसे सीमान्त तुष्टिगुण कहते हैं। अर्थात् जब व्यक्ति अपनी किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए वस्तु की एक से अधिक इकाइयों का उपभोग करता है तो उपभोग के इस क्रम में वस्तु की अन्तिम इकाई को 'सीमान्त इकाई' कहते हैं और ऐसी इकाई के उपभोग से उसे जो तुष्टिगुण प्राप्त होता है, उसे 'सीमान्त तुष्टिगुण' कहते हैं। उदाहरणार्थ—यदि उपभोक्ता अपनी भूख की आवश्यकता को सन्तुष्ट करने के लिए सात रोटियाँ खाता है तो सातवीं रोटी उसकी सीमान्त इकाई है और उसके उपभोग से प्राप्त तुष्टिगुण सीमान्त तुष्टिगुण है।
2. **औसत तुष्टिगुण**—कुल तुष्टिगुण को उपभोग की गई कुल इकाइयों से भाग देने पर औसत तुष्टिगुण प्राप्त हो जाता है। सूत्र के अनुसार—

$$\text{औसत तुष्टिगुण} = \frac{\text{कुल तुष्टिगुण}}{\text{उपभोग की गई कुल इकाइयाँ}}$$

उदाहरण—यदि कुल तुष्टिगुण 50 और उपभोग की गई इकाइयाँ 10 हैं तो औसत तुष्टिगुण $\frac{50}{10} = 5$ होगा।

3. **कुल तुष्टिगुण**—किसी वस्तु की उत्तरोत्तर एक से अधिक इकाइयों के उपभोग से प्राप्त तुष्टिगुण का योग कुल तुष्टिगुण कहलाता है। **मेयर्स** के अनुसार, "कुल तुष्टिगुण सन्तुष्टि की वह मात्रा है जो किसी वस्तु की एक निश्चित मात्रा के उपभोग या स्वामित्व से प्राप्त होती है।"

मूल्य निर्धारण में सीमान्त तुष्टिगुण का महत्त्व
(Importance of Marginal Utility in Price Determination)

मूल्य निर्धारण में सीमान्त तुष्टिगुण द्वारा माँग पक्ष का निर्धारण किया जाता है। अत: औसत तुष्टिगुण या कुल तुष्टिगुण की तुलना में मूल्य निर्धारण में सीमान्त तुष्टिगुण (उपयोगिता) का निर्णायक योगदान होता है। वास्तव में, कोई भी उपभोक्ता किसी भी वस्तु का सीमान्त तुष्टिगुण से अधिक मूल्य नहीं देगा। अत: सीमान्त तुष्टिगुण क्रेता द्वारा दिए जाने वाले मूल्य की उच्चतम सीमा होती है।

प्र.6. तटस्थता वक्र की मुख्य परिभाषाएँ देते हुए तटस्थता वक्र विश्लेषण की मान्यताओं पर प्रकाश डालिए।
Giving main definitions of Indifference Curve, throw light on Indifference Curve Analysis.

***अथवा* समसंतुष्टि वक्र (तटस्थता वक्र) की व्याख्या कीजिए। समसंतुष्टि वक्र विश्लेषण में उपभोक्ता के सन्तुलन की क्या मूर्ति हैं? (2021)**

***Or* Discuss Indifference Curve. What are the conditions for consumer equilibrium in Indifference Curve Analysis?**

उत्तर तटस्थता वक्र की कुछ मुख्य परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं—

1. **वाटसन** (Watson) के अनुसार, "तटस्थता अनुसूची दो वस्तओं के संयोगों की एक अनुसूची है, जिसको इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि उपभोक्ता उन संयोगों के सम्बन्ध में तटस्थ होता है, किसी एक को दूसरों की अपेक्षा अधिमान नहीं देता।"
2. **स्टोनियर एवं हेग** (Stoneir and Hague) के शब्दों में, "एक तटस्थता वक्र एक मानचित्र पर एक समोच्च (Contour) रेखा के समान है, जो समुद्र तल से ऊपर समान ऊँचाई वाले समस्त स्थानों को प्रदर्शित करती है। प्रत्येक तटस्थता वक्र ऊँचाई को प्रदर्शित करने की अपेक्षा सन्तुष्टि के स्तर को प्रदर्शित करता है।"
3. **हैण्डरसन एवं क्योण्ड्ट** (Henderson & Quandt) के शब्दों में, "वस्तुओं के ऐसे समस्त संयोगों का बिन्दुपथ जिनसे उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्राप्त होती है, तटस्थता वक्र का निर्माण करता है।"
4. **ए० एल० मेयर्स** (A.L. Meyers) के शब्दों में, "तटस्थता अनुसूची वह अनुसूची है, जो दो वस्तुओं के ऐसे विभिन्न संयोगों को प्रदर्शित करती है, जिससे किसी व्यक्ति को समान सन्तुष्टि प्राप्त होती है। यदि इस अनुसूची को वक्र के रूप में प्रदर्शित करें, तब हमें तटस्थता वक्र प्राप्त हो जाता है।"
5. **के० ई० बोल्डिंग** (K.E. Boulding) के शब्दों में, "समान अनुराग प्रदर्शित करने वाली रेखाएँ तटस्थता वक्र कहलाती हैं, क्योंकि वे वस्तुओं के ऐसे संयोगों को व्यक्त करती है, जो एक-दूसरे से न तो अच्छे होते हैं और न ही बुरे।"
6. **जे० के० ईस्थम** (J.K. Eastham) के अनुसार, "यह वस्तुओं के उन जोड़ों को प्रदर्शित करने वाले बिन्दुओं का बिन्दुपथ (Locus) होता है, जिनके प्रति व्यक्ति उदासीन रहता है, अत: इसे उदासीनता वक्र (Indifference Curve) कहते हैं।"

तटस्थता वक्र विश्लेषण की मान्यताएँ
(Assumptions of Indifference Curve Analysis)

तटस्थता वक्र विश्लेषण में अन्य नियमों की तरह से निम्नलिखित मान्यताओं को मान लिया गया है—

1. **विवेकपूर्ण उपभोक्ता**—इस विश्लेषण की पहली मान्यता यह है कि उपभोग करते समय उपभोक्ता विवेकपूर्ण व्यवहार करता है। सचमुच में ही, अधिकतम सन्तुष्टि मिलना तभी सम्भव है, जबकि उपभोक्ता सोच-समझकर कम उपयोगी वस्तुओं के स्थान पर अधिक उपयोगी वस्तुओं पर व्यय करे।
2. **विभाजित एवं समरूप वस्तुएँ**—तटस्थता वक्र विश्लेषण इस मान्यता पर आधारित है कि उपभोक्ता जिन वस्तुओं का उपभोग कर रहा है वे ऐसी वस्तुएँ हैं जिनको छोटे-छोटे भागों में बाँटा जा सकता है।
3. **बाजार का ज्ञान**—तटस्थता वक्र विश्लेषण की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उपभोक्ता को सम्पूर्ण बाजार का ज्ञान हो। उपभोक्ता को इस बात की जानकारी हो कि कौन-सी वस्तु कहाँ और किस मूल्य पर मिल रही है।
4. **संयोगों के महत्त्व की जानकारी**—प्रत्येक उपभोक्ता को इस बात की जानकारी होती है कि उसे किस संयोग से कितनी उपयोगिता मिल रही है? अर्थात संयोग में परिवर्तन करने पर उनसे प्राप्त उपयोगिताओं में कितनी घट-बढ़ हो जाती है।
5. **पूर्ण तृप्ति का अभाव**—उपभोक्ता किसी भी वस्तु के उपभोग में पूर्ण तृप्ति के बिन्दु पर नहीं पहुँचा है इसलिए वह वस्तुओं की कम मात्राओं की अपेक्षा अधिक मात्राओं को अधिक उपयोगी समझकर अधिक पसन्द करता है।
6. **सकर्मकता**—इस मान्यता का अर्थ है कि यदि एक उपभोक्ता के लिए A की अपेक्षा B संयोग अधिक सन्तुष्टिदायक है और B की तुलना में वह C संयोग से अधिक सन्तुष्टि प्राप्त करता है, तो C संयोग का सन्तोष निश्चित ही A संयोग से अधिक होगा, अर्थात यदि $B > A$ और $C > B$ तो $B > A$ होगा।

7. **चुनाव में संगति**—तटस्थता वक्र विश्लेषण उपभोक्ता के व्यवहार में संगति मानकर चलता है। इसका यह अर्थ है कि यदि वस्तुओं के A संयोग का सन्तोष B संयोग की अपेक्षा आज अधिक है तो वह कल भी रहेगा। दूसरे शब्दों में, सन्तोष की दृष्टि से A हमेशा B से अधिक रहेगा। B कभी भी A से अधिक नहीं होगा अर्थात् $A > B$; $B > A$।
8. **घटती सीमान्त प्रतिस्थापन दर**—तटस्थता वक्र विश्लेषण यह भी मानकर चलता है कि जैसे-जैसे एक उपभोक्ता किसी एक वस्तु (जैसे Y) के लिए दूसरी वस्तु (जैसे X) की मात्रा प्रतिस्थापित करता जाता है वैसे-वैसे वह X के लिए Y की पहले की अपेक्षा कम मात्रा छोड़ने के लिए तैयार होता जाता है।

उपभोक्ता सन्तुलन की शर्तें (Conditions of Consumer's Equilibrium)

संतुलन की शर्तें—एक उपभोक्ता संतुलन की स्थिति (या अधिकतम संतुष्टि) तब प्राप्त करेगा जब निम्न शर्तें पूरी होंगी—

1. उपभोक्ता उस बिन्दु पर संतुलन की स्थिति में होगा जहाँ कीमत रेखा तटस्थता वक्र की स्पर्श रेखा बन जाती है।
2. दो वस्तुओं की सीमान्त-प्रतिस्थापन दर = उनका कीमत अनुपात।
3. स्थायी संतुलन के लिए सीमांत प्रतिस्थापन दर संतुलन बिन्दु पर घटती हुई होनी चाहिए अर्थात् तटस्थता वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर (convex) होना चाहिए।

प्र.7. तटस्थता वक्र प्रणाली की उपयोगिता विश्लेषण पर श्रेष्ठता के किन्हीं पाँच बिन्दुओं का उल्लेख कीजिए।
Mention any five points about the superiority of Indifference Curve Technique over Utility Analysis.

उत्तर

तटस्थता वक्र प्रणाली की उपयोगिता विश्लेषण से श्रेष्ठता
(Superiority of Indifference Curve Technique Over Utility Analysis)

प्रो० ऐलन एवं **हिक्स** द्वारा निर्मित तटस्थता वक्र तकनीक को **मार्शल** के उपयोगिता विश्लेषण पर सुधार माना जाता है, क्योंकि यह अपेक्षाकृत अधिक वास्तविक तथा कम मान्यताओं पर आधारित है—

1. **यह उपयोगिता के संख्यात्मक माप का परित्याग करता है**—यह विश्लेषण इस मान्यता का परित्याग करता है कि उपयोगिता की गणना की जा सकती है। इस सिद्धान्त के अनुसार उपयोगिता की तुलना की जा सकती है, माप नहीं। अत: उपयोगिता विश्लेषण से यह सिद्धान्त श्रेष्ठ है।
2. **यह सिद्धान्त एक वस्तु के स्थान पर दो वस्तुओं के संयोगों का अध्ययन करता है**—उपयोगिता सिद्धान्त केवल एक वस्तु का विश्लेषण करता है। इसमें यह मान लिया जाता है कि एक वस्तु की उपयोगिता दूसरी वस्तु की उपयोगिता से स्वतंत्र रहती है। तटस्थता वक्र तकनीक एक के स्थान पर दो वस्तुओं के संयोगों का अध्ययन करता है। अर्थात् तटस्थता वक्र तकनीक द्विवस्तु तकनीक है जो स्थानापन्नों, पूरक वस्तुओं और सम्बन्धित वस्तुओं के विषय में उपभोक्ता के व्यवहार की व्याख्या करता है।
3. **यह विश्लेषण मुद्रा की स्थिर सीमांत उपयोगिता की मान्यता से मुक्त है**—उपयोगिता विश्लेषण की अपेक्षा तटस्थता वक्र तकनीक निश्चय ही श्रेष्ठ है, क्योंकि यह मुद्रा की स्थिर सीमांत उपयोगिता की धारणा से मुक्त है। जब उपभोक्ता की आय में परिवर्तन होता है तो उसके लिए मुद्रा की सीमांत उपयोगिता स्थिर न होकर बदलती रहती है।
4. **यह विश्लेषण 'आय-प्रभाव' तथा 'प्रतिस्थापन-प्रभाव' की स्पष्ट व्याख्या करता है**—तटस्थता वक्र विश्लेषण किसी वस्तु की कीमत में होने वाले परिवर्तन के 'आय' और 'प्रतिस्थापन' प्रभावों की बड़ी स्पष्टता से व्याख्या करता है जबकि मार्शल का उपयोगिता सम्बन्धी विश्लेषण इन प्रभावों को व्यक्त करने में असमर्थ हैं। अत: यह विश्लेषण उपयोगिता विश्लेषण से निश्चित ही श्रेष्ठ है।
5. **तटस्थता वक्र 'सम्बन्धित वस्तुओं'** (Related goods), **प्रतिस्पर्धात्मक** (Competitive) **और पूरक** (Complementary) **वस्तुओं का भी अध्ययन करता है**, जबकि मार्शल का उपयोगिता विश्लेषण ऐसा अध्ययन करने में समर्थ नहीं है। अत: यह अधिक वास्तविक तथा श्रेष्ठ है। वस्तु विशेष की उपयोगिता उस वस्तु की पूर्ति पर ही निर्भर न होकर अन्य सम्बन्धित वस्तुओं की पूर्ति पर भी निर्भर करती है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.8. तटस्थता वक्र विश्लेषण के महत्त्व पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
Write a brief note on the importance of Indifference Curve Analysis.

उत्तर

तटस्थता वक्र विश्लेषण का महत्त्व तथा उपयोग
(Importance of Indifference Curve Analysis)

आधुनिक आर्थिक विश्लेषण में तटस्थता वक्र विश्लेषण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके महत्त्व को नीचे दिया गया है—

1. **उपभोग में महत्त्व**—तटस्थता वक्र विश्लेषण की सहायता से उपभोक्ता के सन्तुलन की जानकारी ज्ञात की जा सकती है, उपभोक्ता के किन्हीं दो विकल्पों के बीच अनुराग क्रम (scale of preference) को निर्धारित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, तटस्थता वक्र से उपभोक्ता की बचत (consumer's surplus) को भी मापा जाता है।
2. **उत्पादन के क्षेत्र में महत्त्व**—उत्पादन के क्षेत्र में भी तटस्थता वक्र का विशेष महत्त्व है, भले ही वहाँ अध्ययन समोत्पादक वक्र रेखाओं की सहायता से किया जाता है। ये वक्र उत्पादन के दो उपादानों के ऐसे दो या दो से अधिक संयोगों को दिखाते हैं, जिनसे समान उपज प्राप्त होती है। उत्पादक इन विभिन्न संयोगों में से प्रत्येक के प्रति उसी प्रकार उदासीन या तटस्थ रहता है जिस प्रकार उपभोग में, क्योंकि इनमें प्रत्येक संयोग समान उपज देता है। उत्पादक विभिन्न संयोगों में से किस संयोग का चुनाव करे यह तुलनात्मक लागत पर निर्भर है।
3. **विनिमय में महत्त्व**—तटस्थता वक्र रेखाओं की सहायता से विनिमय की समस्या का समाधान ढूंढ़ा जा सकता है। प्राय: वस्तु विनिमय के अन्तर्गत दो वस्तुओं के विनिमय की सीमा निर्धारित की जा सकती है। **एजवर्थ** ने यह स्पष्ट किया कि यदि दो व्यक्तियों का दो वस्तुओं के सन्दर्भ में अधिमान क्रम मालूम हो तो यह ज्ञात किया जा सकता है कि व्यक्ति आपस में इन वस्तुओं का विनिमय किस सीमा तक करेंगे।
4. **राजस्व के क्षेत्र में महत्त्व**—तटस्थता वक्र विश्लेषण का महत्त्व राजस्व के क्षेत्र में बहुत अधिक है। राजस्व के अन्तर्गत कर-निर्धारण में तटस्थता वक्र की सहायता ली जा सकती है।
5. **राशनिंग के क्षेत्र में महत्त्व**—राशनिंग का प्रयोग चोरबाजारी, जमाखोरी रोकने तथा युद्ध के समय वस्तुओं के उचित वितरण के लिए किया जाता है। इस विधि में उपभोक्ता को पर्याप्त मात्रा में वस्तुएँ उपलब्ध नहीं हो पाती हैं, जिसके कारण उसके सन्तोष में कमी होती है।
6. **अनुदानों के प्रभाव की माप में महत्त्व**—सरकार समय-समय पर पिछड़े व निर्धन लोगों की आर्थिक सहायता करती है। अनुदान देने से पूर्व सरकार इस बात की जानकारी कर लेती है कि अनुदान प्राप्त करने वाले व्यक्ति पर अनुदान का क्या प्रभाव पड़ रहा है? इस बात की जानकारी तटस्थता वक्र की सहायता से ज्ञात की जा सकती है।
7. **उपभोक्ता का सन्तुलन**—तटस्थता वक्र विश्लेषण की सहायता से हम उपयोगिता की गणना के बिना भी उपभोक्ता के साम्य की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। यदि हमें उपभोक्ता की आय तथा वस्तुओं की कीमतें ज्ञात हों तो जिस बिन्दु पर कीमत रेखा तटस्थता वक्र को स्पर्श करती है वही बिन्दु उपभोक्ता का सन्तुलन बिन्दु होता है।

उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट होता है कि तटस्थता वक्र का अर्थशास्त्र के सम्पूर्ण क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

प्र.9. माँग वक्र तथा कीमत उपभोग वक्र में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
Make clear the difference between Demand Curve and Price Consumption Curve.

उत्तर

माँग वक्र तथा कीमत उपभोग वक्र में अन्तर
(Difference between Demand Curve and Price Consumption Curve)

माँग वक्र तथा कीमत उपभोग वक्र दोनों से एक जैसी सूचना प्राप्त होती है परन्तु इन दोनों वक्रों के ग्राफों में निम्नलिखित अन्तर पाए जाते हैं—

1. साधारण परम्परावादी माँग वक्र बनाते समय हम OX-अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा OY-अक्ष पर कीमत को प्रदर्शित करते हैं। परन्तु कीमत उपभोग वक्र बनाते समय हम दोनों अक्षों पर दो वस्तुएँ अथवा OX-अक्ष पर एक वस्तु की मात्रा तथा OY-अक्ष पर मुद्रा की ईकाइयाँ अथवा उपभोक्ता की आय प्रदर्शित करते हैं।

2. परम्परावादी माँग वक्र द्वारा कीमत प्रभाव को आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव में नहीं बांटा जा सकता है जबकि कीमत उपभोग वक्र द्वारा इन दोनों प्रभावों को स्पष्ट किया जा सकता है। **इस दृष्टि से कीमत उपभोग वक्र परम्परावादी माँग वक्र से श्रेष्ठ है।**
3. साधारण परम्परावादी माँग वक्र के सम्बन्ध में आय को स्थिर मान लिया जाता है और वस्तु की कीमत को प्रत्यक्ष रूप से OY–अक्ष पर दिखाया जाता है। परन्तु कीमत उपभोग वक्र के सम्बन्ध में हम कीमत को प्रत्यक्ष रूप से नहीं दिखाते बल्कि कीमत रेखा की ढलान कीमत को प्रकट करता है। माँग वक्र से सम्बन्धित चित्र से हमें वस्तु की कीमत तथा माँगी गई मात्रा का पता चल जाता है जबकि कीमत उपभोग वक्र से वस्तु की कीमत तथा खरीदी गई मात्रा का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट नहीं होता है।

स्पष्टता की दृष्टि से परम्परावादी माँग वक्र कीमत उपभोग वक्र से श्रेष्ठ है।

प्र.10. बजट प्रतिबन्ध से आप क्या समझते हैं? इसके मॉडल को किस प्रकार विकसित किया जा सकता है? स्पष्ट कीजिए।

What do you understand by Budget Constraint? How can its model be developed? Clarify.

उत्तर

बजट प्रतिबन्ध का अर्थ
(Meaning of Budget Constraint)

सरकारी बजट प्रतिबंध राजकोषीय नीति के विश्लेषण का एक प्रमुख अंग है। यह इस तथ्य का अध्ययन एवं विश्लेषण करता है कि सरकार के बजट व्यय तथा बजट प्राप्तियों में समानता लाने के लिए सरकारी व्यय की अतिरिक्त मात्रा का वित्तीयन किस प्रकार किया जा सकता है एवं इसे किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है अर्थात्, सरकारी बजट प्रतिबंध, सरकारी व्यय एवं सरकारी राजस्व के मध्य अन्तर के परिणामस्वरूप होने वाले घाटे के वित्त पोषण में आने वाली कठिनाइयों तथा समस्याओं का अध्ययन तथा विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

इस तरह, "सरकारी बजट प्रतिबंध एक लेखांकन तादात्म (accounting identity) है, जो मौद्रिक प्राधिकार (monetary authority) के मुद्रा वृद्धि तथा मौद्रिक ब्याज दर के चयन एवं राजकोषीय प्राधिकार के व्यय, कराधान तथा उधार चयन के बीच एक समयावधि में सम्बन्ध स्थापित करता है।" जब कभी उधार लेना राजकोषीय वित्तीयन का एक स्रोत होता है, तब सरकारी बजट प्रतिबंध चालू मौद्रिक एवं वित्तीय चुनावों एवं प्रत्याशित भावी मौद्रिक और चरों के बीच सम्बन्ध बनाने में सहायता करता है।

सरकारी बजट प्रतिबंध मॉडल को निम्न प्रकार विकसित किया जा सकता है—

मॉडल
(Model)

टिकाऊ आर्थिक विकास एक ठोस समष्टिगत आर्थिक ढाँचे के अन्तर्गत ही सम्भव हो पाता है। राजकोषीय नीति इस ढाँचे का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

राजकोषीय नीति के अन्तर्गत सरकारी व्यय, करारोपण की संरचना एवं वह विधियाँ आती हैं, जिनके द्वारा सरकारी व्यय का वित्तीयन किया जाता है। राजकोषीय नीति का विश्लेषण सरकारी बजट प्रतिबन्ध की विवेचना के साथ प्रारम्भ होता है। एक परिवार (गृहस्थी) की भाँति सरकार को भी बजट प्रतिबन्ध का सामना करना पड़ता है। सरकार विभिन्न स्रोतों जैसे कि कर आदि से निधियों को प्राप्त करती है एवं उसे विभिन्न मदों जैसे प्रतिरक्षा आदि पर व्यय करती है। सजगता की स्थिति में सभी मदों पर किए जाने वाले व्यय एवं स्रोतों से होने वाली प्राप्तियाँ बराबर होनी चाहिए। इस प्रतिबन्ध का परीक्षण करने के लिए विवेचना को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है.सरकारी निधियों का उपयोग एवं इन निधियों की प्राप्ति के स्रोत।।

यह विश्लेषण सभी स्तरों की सरकारों-संघीय, राज्य एवं स्थानीय पर लागू होता है, लेकिन राजकोषीय नीति की अधिकांश विवेचना संघीय सरकार पर केन्द्रित होती है। संघीय सरकार द्वारा अंगीकृत नीतियाँ प्राय: सभी राज्यों को प्रभावित करती हैं।

प्र.11. बजट रेखा (Budget Line) से आपका क्या अभिप्राय है?

What do you mean by Budget Line?

उत्तर बजट रेखा—उपभोक्ता दो वस्तुओं के किन संयोगों को वास्तव में खरीद सकता है, यह बात उसकी मौद्रिक आय एवं वस्तुओं की कीमतों पर निर्भर होती है। उपभोक्ता की आय और दोनों वस्तुओं की कीमतों की सहायता से जो वक्र तैयार होता है, उसे हम बजट रेखा अथवा कीमत रेखा अथवा कुल व्यय की रेखा कहते हैं। दिए गए चित्र में AB कीमत रेखा है।

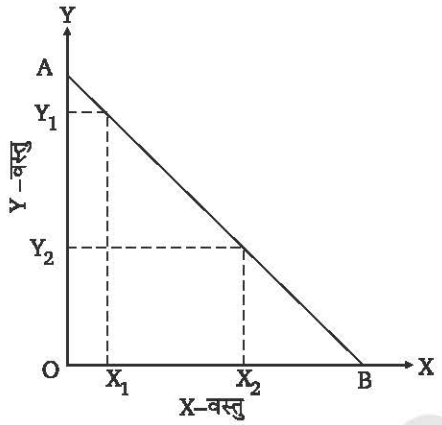

प्र.12. आय प्रभाव किसे कहते हैं? इस पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

What is Income Effect? Write a short note.

उत्तर आय प्रभाव उस स्थिति का विवेचन करता है जबकि वस्तुओं/सेवाओं की कीमतें तो यथास्थिर रहें परन्तु उपभोक्ता की आय का स्तर परिवर्तित हो जाए। आय में होने वाले परिवर्तनों का उपभोक्ता की सन्तुष्टि पर जो कुछ प्रभाव पड़ता है, उसी को **आय प्रभाव** (Income Effect) कहते हैं। स्पष्ट है कि इस दशा में व्यक्ति की आय में होने वाली वृद्धि उसे सन्तुष्टि के उच्चतर उदासीनता वक्र पर ले जाती है जबकि आय में होने वाली कमी से उपभोक्ता की सन्तुष्टि का स्तर गिरता जाता है। आय उपभोग रेखा (Income Consumption Curve—ICC) यह प्रकट करती है कि आय में परिवर्तन होने पर यदि वस्तुओं की कीमतें यथापूर्व रहें तो उपभोक्ता के उपभोग (सन्तुष्टि स्तर) में किस प्रकार परिवर्तन होगा। इस प्रकार आय उपभोग रेखा आय प्रभाव का अनुरेखण करती है। आय प्रभाव को रेखाकृति द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है। (देखें चित्र)

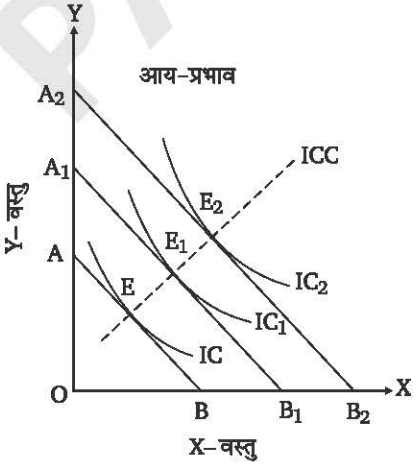

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. उपभोक्ता बजट के सन्दर्भ में बजट प्रतिबन्ध को स्पष्ट कीजिए।

Make clear Budget Constraint in the context of Consumer Budget.

उत्तर

बजट प्रतिबन्ध
(Budget Constraint)

उपभोक्ता सामान्य रूप से बहुत-सी वस्तुओं का उपभोग करता है, परन्तु सरलीकरण के लिए यहाँ उपभोक्ता की चयन समस्या पर ऐसी स्थिति में विचार किया जा रहा है जहाँ केवल दो ही वस्तुएँ हों। अध्ययन सरलता की दृष्टि से इन दोनों वस्तुओं को वस्तु X तथा वस्तु Y कहेंगे। दोनों वस्तुओं की मात्राओं की कोई भी सम्मिलित राशि को उपभोक्ता बण्डल अथवा संक्षेप में बण्डल कह सकते हैं। सामान्यत: हम वस्तु X की मात्रा को व्यक्त करने के लिए q_X परिवर्त और वस्तु Y की मात्रा को व्यक्त करने के लिए q_Y परिवर्त का उपयोग करेंगे। x_1 और x_2 धनात्मक या शून्य हो सकते हैं। $q_X q_Y$ का तात्पर्य होगा कि वस्तु X की q_X मात्रा तथा वस्तु Y की q_Y मात्रा। x_1 तथा x_2 के किसी विशेष मूल्य के लिए (q_X, q_Y), हमें एक विशेष बण्डल प्रदान करती है। उदाहरणार्थ—बण्डल (5, 10) में वस्तु X की 5 इकाइयाँ और वस्तु Y की 10 इकाइयाँ हैं; बण्डल (10, 5) में वस्तु X की 10 इकाइयाँ और वस्तु Y की 5 इकाइयाँ हैं।

TOUCH 'n' PASS

उपभोक्ता का बजट (Consumer's Budget)

मान लीजिए किसी उपभोक्ता के पास केवल एक निश्चित मात्रा में पैसे (आय) ऐसी दो वस्तुओं पर व्यय करने के लिए हैं, जिनकी कीमत बाजार में दी गई हैं। उपभोक्ता दोनों वस्तुओं की अलग-अलग या मिली-जुली ऐसी मात्रा को खरीद सकता, जिनका वह उपभोग करना चाहता है। उपभोक्ता के लिए उपलब्ध उपभोग बण्डल दोनों वस्तुओं की कीमत तथा उपभोक्ता की आय पर निर्भर करता है। निश्चित आय तथा दोनों वस्तुओं की कीमतों को देखते हुए उपभोक्ता केवल उन्हीं बण्डलों को खरीद सकता है जिनका व्यय उसकी आय से कम हो या बराबर हो।

बजट सेट (Budget Set)

मान लीजिए उपभोक्ता की आय M है तथा दोनों वस्तुओं की कीमतें क्रमशः p_1 तथा p_2 हैं। यदि उपभोक्ता 1 की x_1 ईकाइयाँ खरीदना चाहता है तो उसे कुल मिलाकर p_1x_1 धन व्यय करना पड़ेगा। इसी प्रकार से, अगर उपभोक्ता वस्तु 2 की x_2 ईकाइयाँ खरीदना चाहता है तो उसे p_2x_2 धन व्यय करना होगा। इसलिए यदि उपभोक्ता वस्तु 1 की x_1 इकाइयों और वस्तु 2 की x_2 इकाइयों का बण्डल खरीदना चाहता है तो उसे $p_1x_1 + p_2x_2$ धन राशि व्यय करनी होगी। वह यह बण्डल तभी खरीद पाएगी, जब उसके पास कम-से-कम $p_1x_1 + p_2x_2$ धनराशि हो। वस्तुओं की विद्यमान कीमतों तथा अपनी आय के अनुसार उपभोक्ता ऐसा कोई भी बण्डल उसी सीमा तक खरीद सकता है, जब तक उसकी कीमत उसकी आय के बराबर या उससे कम रहे। दूसरे शब्दों में, उपभोक्ता कोई (x_1x_2) बण्डल अग्रलिखित स्थिति में खरीद सकता है—

$$p_1x_1 + p_2x_2 \leq M \qquad \ldots(1)$$

यह उपभोक्ता का **बजट प्रतिबन्ध** कहलाती है जिसे चित्र-1 में दर्शाया गया है। उपभोक्ता के लिए उपलब्ध बण्डलों के सेट को **बजट सेट** कहा जाता है। इस प्रकार, बजट सेट उन सभी बण्डलों का संग्रह है, जिसे उपभोक्ता विद्यमान बाजार कीमतों पर अपनी आय से खरीद सकता है।

उदाहरण—एक ऐसे उपभोक्ता का उदाहरण लेते हैं, जिसके पास ₹ 20 हैं तथा मान लीजिए दोनों वस्तुओं की लागत ₹ 5 रखी गई है और ये समाकलित इकाइयों के रूप में ही उपलब्ध हैं। जो बण्डल उपभोक्ता खरीद सकता है, वे हैं—(0, 1), (0, 2), (0, 3), (0, 4), (1,0), (1, 1), (1, 2), (1, 3), (2,0), (2, 1), (2, 2), (3,0), (3, 1) तथा (4,0)। इन बण्डलों में से (0, 4), (1, 3), (2, 2), (3, 1) तथा (4,0) की लागत ठीक ₹ 20 है तथा अन्य बण्डलों की लागत ₹ 20 से कम है। उपभोक्ता (3, 3) तथा (4,5) बण्डलों को खरीद नहीं सकता, क्योंकि प्रचलित लागतों पर उनकी कीमत ₹ 20 से अधिक है।

बजट रेखा (Budget Line)

यदि दोनों वस्तुएँ पूर्णतः विभाज्य हों तो उपभोक्ता के बजट सेट में सभी बण्डल (x_1x_2) समाहित होंगे, जबकि x_1 तथा x_2 ऐसी संख्याएँ हैं जो शून्य (0) और $p_1x_1 + p_2x_2 \leq M$ से बड़ी या उसके बराबर है। इस बजट सेट को चित्र-1 में एक आरेख के द्वारा दर्शाया गया है।

चित्र-1 में धनात्मक चतुर्थांश के वे सभी बण्डल जो रेखा AB के नीचे या उस पर स्थित हैं, बजट सेट में शामिल हैं। रेखा का समीकरण है—

$$p_1x_1 + p_2x_2 = M \qquad \ldots(2)$$

इस रेखा में वे सभी बण्डल शामिल हैं, जिनकी लागत M के बराबर है। यह रेखा **बजट रेखा** कहलाती है। **बजट रेखा** के नीचे के बिन्दु उन बण्डलों को प्रदर्शित करते हैं, जिनका लागत M से बिल्कुल कम हो।

समीकरण को इस प्रकार भी लिखा जा सकता है।

$$x_2 = \frac{M}{p_2} - \frac{p_1}{p_2}x_1 \qquad \ldots(3)$$

बजट रेखा एक सीधी रेखा है जिसका समस्तरीय अन्तःखण्ड $\frac{M}{p_1}$ तथा ऊर्ध्वाधर अन्तःखण्ड $\frac{M}{p_2}$ है। समस्तरीय अन्तःखण्ड उस बण्डल का प्रतिनिधित्व करता है जिसको

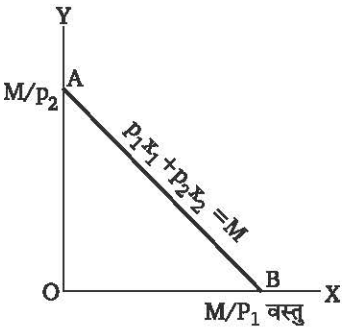

चित्र 1. बजट सेट–वस्तु X की मात्रा क्षैतिज अक्ष तथा वस्तु Y की मात्रा ऊर्ध्वाधर अक्ष पर मापी जा रही है। इस आरेख में कोई भी बिन्दु दोनों वस्तुओं के एक बण्डल को प्रदर्शित करता है। इस बजट सेट में दर्शायी गई सीधी रेखा के ऊपर या नीचे स्थित सभी बिन्दु आ जाते हैं। इसका समीकरण है– $p_1x_1 + p_2x_2 = M$

उपभोक्ता उसी स्थिति में खरीद सकता है, यदि वह अपनी सारी आय वस्तु X पर व्यय कर दे। इसी तरह ऊर्ध्वाधर अन्त:खण्ड उसी बण्डल का प्रतिनिधित्व करता है जिसे उपभोक्ता उस स्थिति में खरीद सकता है, जब वह अपनी सारी आय वस्तु Y पर व्यय कर दे। बजट रेखा की ढाल है $-\frac{p_1}{p_2}$.

प्र.2. सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम की परिभाषाएँ देते हुए इसके लागू होने के कारण बताइए। इस नियम के महत्त्व पर भी प्रकाश डालिए।

Giving definitions of Law of Diminishing Marginal Utility, tell the laws of its application. Also throw light on its importance.

***अथवा* ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता के नियम से आप क्या समझते हैं? (2021)**

***Or* What do you understand by Law of Diminishing Marginal Utility.**

उत्तर

सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम
(Law of Diminishing Marginal Utility)

19वीं शताब्दी के प्रमुख अर्थशास्त्री **गोसेन** (Gossen) ने इस विचार का प्रयोग पहली बार किया था इसलिए इस नियम को **गोसेन का प्रथम नियम** (Gossen's First Law) कहा जाता है। बाद में इस नियम की वैज्ञानिक व्याख्या **प्रो० मार्शल** (Prof. Marshall) ने की थी।

परिभाषाएँ (Definitions)

सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम की प्रमुख परिभाषाएँ निम्न हैं—

1. **मार्शल** (Marshall)—"अन्य बातें समान रहने पर किसी व्यक्ति के पास किसी वस्तु की मात्रा (स्टॉक) में वृद्धि होने पर जो अतिरिक्त लाभ (सन्तुष्टि या उपयोगिता) प्राप्त होता है, वह वस्तु की मात्रा में प्रत्येक वृद्धि के साथ-साथ घटता जाता है।" (मार्शल की परिभाषा से स्पष्ट है कि किसी वस्तु का उत्तरोत्तर उपभोग करते रहने से उस वस्तु की प्रत्येक अगली इकाई से मिलने वाली अतिरिक्त उपयोगिता घटने लगती है। घटती हुई अतिरिक्त उपयोगिता को ही सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम कहा जाता है।)
2. **चैपमैन** (Chapman)—"जिस किसी भी वस्तु की जितनी ही अधिक मात्रा हमारे पास होती है, हम उस वस्तु के लिए उतने ही कम इच्छुक होते जाते हैं, अथवा हम उस वस्तु की उतनी ही कम अतिरिक्त ईकाइयाँ चाहते हैं।" (प्रो. चौपमैन की धारणा भी प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में मार्शल की धारणा से मिलती है। दोनों अर्थशास्त्री इस बात को मानते हैं कि वस्तु की मात्रा के बढ़ने या उनका लगातार उपभोग करते रहने से उससे प्राप्त होने वाली अतिरिक्त उपयोगिता घटते हुए क्रम में प्राप्त होती है।)
3. **बोल्डिंग** (Boulding)—"जब कभी कोई उपभोक्ता अन्य वस्तुओं के उपभोग को स्थिर रखते हुए किसी एक वस्तु के उपभोग को बढ़ाता है, तो उस बढ़ायी गयी वस्तु की सीमान्त उपयोगिता अन्त में अवश्य घटती है।" (प्रो० बोल्डिंग की धारणा एक नयी बात बताती है, जो अन्य अर्थशास्त्रियों की परिभाषा में नहीं है। पहले पहल एक या दो इकाइयों के उपभोग से सीमान्त उपयोगिता बढ़ेगी और उसके तुरन्त बाद उसमें गिरावट आने लगेगी। यह विचारधारा वर्तमान समय के अर्थशास्त्रियों की देन कही जाती है।)

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि उपभोक्ता ज्यों-ज्यों वस्तुओं का उपभोग करता है, त्यों-त्यों उपभोग की जाने वाली वस्तुओं के सम्बन्ध में उसकी सीमान्त उपयोगिता घटती है और एक बिन्दु के बाद तो कुल उपयोगिता में भी कमी आने लगती है।

नियम के लागू होने के कारण
(Causes of Application of Law)

प्रो० बोल्डिंग ने नियम के लागू होने के लिए निम्न कारण बताए हैं—

1. **पूर्ण स्थानापन्न वस्तु का अभाव**—वस्तुएँ एक-दूसरे की स्थानापन्न नहीं होती हैं, क्योंकि वस्तुओं का उपभोग एक-दूसरे के रूप में एक उचित मात्रा के साथ, मक्खन की एक निश्चित मात्रा तक ही किया जा सकता है। उदाहरण के

लिए, रोटी की एक निश्चित मात्रा के साथ, मक्खन की एक निश्चित मात्रा का उपयोग, एक आदर्श उपयोग होगा, यदि रोटी की मात्रा को स्थिर रखकर मक्खन की मात्रा को बढ़ाते जाएँ, तो मक्खन की इकाइयों से घटती हुई सीमान्त उपयोगिता प्राप्त होगी।

2. **किसी समय विशेष पर किसी एक ही आवश्यकता की पूर्ति की जा सकती है**—समय और साधन की कमी के कारण एक समय में एक साथ सभी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं की जा सकती है। उपभोग करते-करते उपभोक्ता एक ऐसे बिन्दु पर पहुँच जाता है, जहाँ पर उपभोग को जाने वाली वस्तु की सीमान्त उपयोगिता घटकर शून्य (Zero) हो जाती है। इस बिन्दु पर उपभोक्ता को पूर्ण सन्तुष्टि (Full Satisfaction) मिलती है और कुल उपयोगिता भी अधिकतम होती है। इस प्रकार अधिकतम इकाइयों के उपभोग से सन्तुष्टि बढ़ने की अपेक्षा घटती है।
3. **वैकल्पिक प्रयोग**—प्रत्येक वस्तु के अनेक उपयोग होते हैं। कुछ प्रयोग (Uses) बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं तथा कुछ कम महत्त्वपूर्ण होते हैं। जैसे-जैसे किसी वस्तु विशेष के स्टॉक में वृद्धि होती जाती है उस वस्तु का उपभोग कम महत्त्व वाली जगह किया जाने लगता है।

सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम का महत्त्व
(Importance of the Law of Diminishing Marginal Utility)

सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम के महत्त्व को निम्न दो शीर्षकों से स्पष्ट किया जा सकता है—

I. सैद्धान्तिक महत्त्व (Theoretical Importance)

इस नियम का सैद्धान्तिक महत्त्व निम्न है—

1. **उपभोक्ता की बचत में महत्त्व**—उपयोगिता ह्रास नियम का महत्त्व उपभोक्ता की बचत की धारणा के लिए है। कोई भी उपभोक्ता किसी वस्तु की इकाई को उस बिन्दु तक क्रय करता है, जहाँ पर उस वस्तु की सीमान्त इकाई की उपयोगिता उसके मूल्य के बराबर होती है। इस सीमान्त इकाई के पहले वाली इकाइयों से उपभोक्ता को अधिक उपयोगिता मिलती है, जबकि उसने सभी इकाइयों के लिए समान मूल्य दिया है। यही अतिरिक्त उपयोगिता उपभोक्ता की बचत है।
2. **मूल्य सिद्धान्त में महत्त्व**—सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम मूल्य सिद्धान्त के लिए आधारशिला का कार्य करता है, क्योंकि यह नियम स्पष्ट करता है कि वस्तु की पूर्ति में वृद्धि होने पर मूल्य में क्यों कमी आती है।
3. **माँग के नियम का आधार** (Basis of Law of Demand)—सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम माँग के नियम का आधार है। यह नियम यह बताता है कि माँग वक्र क्यों दायीं ओर को झुका हुआ होता है। ज्यों-ज्यों उपभोक्ता किसी वस्तु का उपभोग करता है, त्यों-त्यों उसे उस वस्तु से मिलने वाली अतिरिक्त उपयोगिता घटते हुए क्रम में मिलती है। इसीलिए उपभोक्ता पहली वस्तु की अपेक्षा दूसरी वस्तु का कम मूल्य देता है। यही बात माँग का नियम भी बताता है।

II. नियम का व्यावहारिक महत्त्व (Practical Importance)

व्यावहारिक दृष्टिकोण से सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम का निम्नलिखित महत्त्व है—

1. **नये उत्पादन को प्रोत्साहित करना**—सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम का महत्त्व केवल उपभोग तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका महत्त्व उत्पादन के क्षेत्र में भी है। यदि उपभोक्ता लगातार किसी वस्तु का उपभोग करता रहे, तो उसके लिए उस वस्तु की उपयोगिता घटेगी। अब उपभोक्ता की रुचि नई वस्तु के प्रति बढ़ने लगती है। उपभोक्ता की इस रुचि को देखकर उत्पादक अपने उत्पादन के साधनों को नई वस्तुओं के उत्पादन में लगाएँगे, जिससे नई वस्तुओं का उत्पादन होगा।
2. **कर प्रणाली का आधार**—सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम का महत्त्व राजस्व में भी है। यह नियम बताता है कि वस्तु की मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ उसकी उपयोगिता में कमी होती है। यही बात मुद्रा के सम्बन्ध में भी लागू होती है। द्रव्य की उपयोगिता एक धनी व्यक्ति की अपेक्षा निर्धन व्यक्ति के लिए अधिक होती है। सरकार इस आधार पर धनी व्यक्ति पर प्रगतिशील दर (Progressive Taxes) पर कर लगाती है। धन के न्यायोचित वितरण के लिए इस नियम की सहायता ली जा सकती है।
3. **सम-सीमान्त उपयोगिता नियम का आधार**—प्रत्येक उपभोक्ता अपने सीमित साधनों से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करना चाहता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सम-सीमान्त उपयोगिता नियम की सहायता ली जाती है। सम-सीमान्त

उपयोगिता नियम की प्रमुख मान्यता सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम है। अधिकतम सन्तुष्टि के लिए उपभोक्ता अपने द्रव्य की प्रथम इकाई उस आवश्यकता पर खर्च करता है जिससे उसे अधिक उपयोगिता मिलती है। इस प्रकार के खर्च से उपभोक्ता को अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होती है और उसकी कुल उपयोगिता भी बढ़ती है। इन तथ्यों के अध्ययन से स्पष्ट है कि यह नियम सम-सीमान्त-उपयोगिता नियम का आधार है।

4. **विनिमय मूल्य व प्रयोग मूल्य के अन्तर को स्पष्ट करना**—सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम विनिमय मूल्य (Value in Exchange) तथा प्रयोग मूल्य (Value in Use) के अन्तर को भी स्पष्ट करता है। जिन वस्तुओं की पूर्ति पर्याप्त मात्रा में होती है उनकी सीमान्त उपयोगिता उतनी ही कम होती है। इसलिए ऐसी वस्तुओं का विनिमय मूल्य कम अथवा शून्य होता है। उदाहरण के लिए, पानी, हवा व सूर्य की रोशनी, आदि—यद्यपि इन वस्तुओं का प्रयोग मूल्य अर्थात् कुल उपयोगिता सर्वाधिक होती है।

इस नियम की सहायता से **एडम स्मिथ** के प्रसिद्ध **हीरा-पानी विरोधाभास** की भी व्याख्या की जा सकती है। अपेक्षाकृत दुर्लभ होने के कारण हीरों की सीमान्त उपयोगिता अधिक है और इसलिए उसकी कीमत ऊँची होती है। यद्यपि पानी की कुल उपयोगिता बहुत अधिक है, फिर भी अपेक्षाकृत बहुत अधिक मात्रा में मिलने के कारण इसकी सीमान्त उपयोगिता कम है। अत: हीरे की अपेक्षा अधिक लाभदायक होने पर भी पानी की कीमत बहुत कम है।

उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक महत्त्व है और नियम का क्षेत्र भी काफी व्यापक है। इस सम्बन्ध में **कैरेनक्रास** का कहना है कि "यह नियम केवल रोटी, मक्खन, रेल यात्रा व व्यक्ति की हैट आदि वस्तुओं पर ही क्रियाशील नहीं होता, बल्कि अर्थशास्त्रियों के व्याख्यानों, राजनीतिज्ञों के भाषणों तथा जासूसी कहानियों के अनेक संदिग्ध व्यक्तियों के सम्बन्ध में भी समान रूप से सत्य उतरता है।" इसलिए हम यह कह सकते हैं कि सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम सर्वव्यापक व सार्वभौमिक सत्य को लिए हुए है।

प्र.3. तटस्थता वक्रों की सहायता से आय प्रभाव एवं प्रतिस्थापन प्रभाव का विस्तृत विवेचन कीजिए।
With the help of Indifference Curve, perform a detailed explanation of Income Effect and Substitution Effect.

उत्तर

आय प्रभाव
(Income Effect)

जब उपभोग की जा रही वस्तुओं को स्थिर मान लिया जाता है और उपभोक्ता की आय (अर्थात् मौद्रिक आय) में परिवर्तन होता है तब उपभोक्ता की माँग में जो परिवर्तन आ जाता है उसे **आय प्रभाव** कहते हैं। इस प्रकार "आय प्रभाव उपभोग मात्रा में परिवर्तन को बतलाता है जो केवल आय में परिवर्तन के कारण उत्पन्न होता है जबकि वस्तुओं की कीमतें स्थिर बनी रहती हैं।"

आय प्रभाव में वस्तु कीमतों के स्थिर रहने के कारण कीमत रेखा अपने समान्तर बायें अथवा दायें खिसकती है।

चित्र 1 में AB, A_1B_1, A_2B_2 कीमत रेखाएँ एक-दूसरे के समान्तर हैं, क्योंकि X तथा Y-वस्तुओं की कीमतों (माना P_x तथा P_y) में कोई परिवर्तन नहीं होता है, कीमत अनुपात P_x/P_y समान रहता है। दूसरे शब्दों में, समान्तर कीमत रेखाओं का ढाल समान होता है। ये विभिन्न कीमत रेखाएँ तटस्थता रेखाओं Ic_1, Ic_2 तथा Ic_3 को D, D_1 तथा D_2 बिन्दुओं पर स्पर्श करती हैं। ये बिन्दु विभिन्न तटस्थता रेखाओं पर उपभोक्ता के सन्तुलन को प्रदर्शित करते हैं। सन्तुलन के इन बिन्दुओं को मिलाने से एक बिन्दु रेखा प्राप्त होती है, जिसे **आय उपभोग-वक्र** (*Icc*) कहा जाता है। *Icc* रेखा मूल बिन्दु से जितनी ही अधिक दूरी पर होगी वह X तथा Y वस्तुओं के उतने ही ऊँचे संयोगों को प्रकट करेगी।

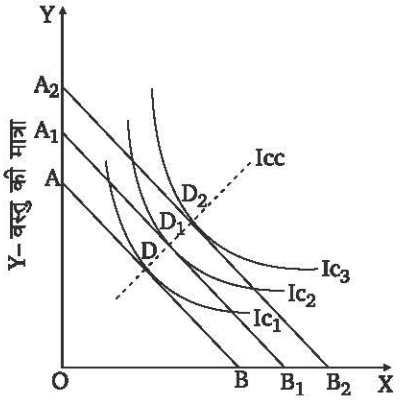

चित्र 1

वस्तु की प्रकृति एवं आय प्रभाव
(Nature of Goods and Income Effect)

वस्तु की प्रकृति के आधार पर आय प्रभाव को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है—
1. धनात्मक आय प्रभाव, 2. ऋणात्मक आय प्रभाव (गिफिन का विरोधाभास)।

1. **धनात्मक आय प्रभाव**—सामान्य वस्तुओं के लिए आय प्रभाव धनात्मक होता है जिसमें आय उपभोग वक्र बायें से दायें ऊपर उठता है। वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहने की दशा में जब उपभोक्ता की आय में वृद्धि होती है तब उपभोक्ता दोनों वस्तुओं (यदि वे सामान्य एवं श्रेष्ठ वस्तुएँ हैं) की माँग में वृद्धि करता है जिसके कारण आय उपभोग वक्र धनात्मक ढाल वाला हो जाता है। चित्र 1 में धनात्मक आय प्रभाव प्रदर्शित किया गया है।
2. **ऋणात्मक आय प्रभाव**—आय प्रभाव ऋणात्मक भी हो सकता है। इस तथ्य का उल्लेख सर्वप्रथम रॉबर्ट गिफिन ने किया। यह तब होता है जब आय में वृद्धि होने पर उपभोक्ता उपभोग की जाने वाली वस्तु का उपभोग घटा देता है। प्राय: यह बात निम्न कोटि या घटिया वस्तुओं (inferior goods) में होती है। आय बढ़ जाने पर श्रेष्ठ वस्तुओं (superior goods) का उपभोग बढ़ा दिया जाता है, भले ही इन वस्तुओं के मूल्य में कमी न हो अत: ऐसी स्थिति में निम्न कोटि की वस्तुओं के स्थान पर श्रेष्ठतर वस्तुओं का प्रतिस्थापन होने लगता है।

चित्र 2 में हमने इस बात की व्याख्या की है कि उपभोक्ता की आय में वृद्धि होने के परिणामस्वरूप उस वस्तु की माँग में कमी कर देता है जो वस्तु उसके लिए निकृष्ट वस्तु (inferior goods) होती है, जबकि वह श्रेष्ठ वस्तु (superior goods) का उपभोग बढ़ा देता है। इस स्थिति को चित्र 2 में दिखाया गया है। चित्र में हम केवल Y–वस्तु पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे जो एक घटिया वस्तु है। चित्र में जैसे-जैसे आय का स्तर बढ़ने से कीमत रेखा AB, A_1B_1, A_2B_2 तथा A_3B_3 के रूप में ऊपर उठती जा रही है सन्तुलन बिन्दु P, P_1, P_2 तथा P_3 के रूप में पहले से कम ऊँचे होते चले जा रहे हैं। दूसरे शब्दों में, आय के बढ़ने के साथ-साथ उपभोक्ता Y–वस्तु का उपयोग कम किया जा रहा है, जबकि X का अधिक। इस प्रकार आय के परिवर्तन का Y–वस्तु के उपयोग पर ऋणात्मक प्रभाव पड़ रहा है अत: Y–वस्तु एक घटिया वस्तु है।

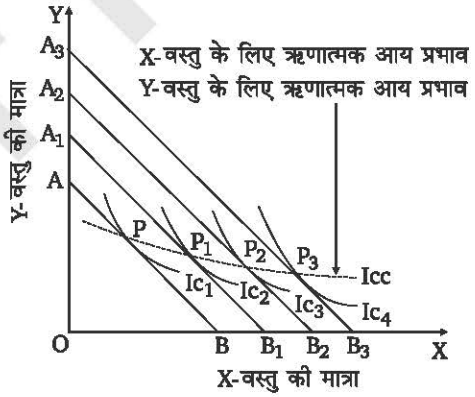

चित्र 2

लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक घटिया वस्तु का उपभोग आरम्भ से घटना शुरू हो, आय के बढ़ जाने से एक स्तर के बाद भी ऐसा हो सकता है। इस स्थिति को आय उपभोग वक्रों (Icc) की सहायता से चित्र 3 में दर्शाया गया है। इस चित्र से Icc_1 रेखा X–वस्तु की दृष्टि से पीछे की ओर मुड़ रही है जो यह बताती है कि यह रेखा X–वस्तु को घटिया वस्तु प्रदर्शित करती है। वस्तु की मात्रा के हिसाब से जब आय का स्तर बढ़ता है, तो उपभोक्ता का सन्तुलन बिन्दु A_1 से सरक कर A_2 पर पहुँच जाता है। इस प्रकार आय के बढ़ने से X–वस्तु की मात्रा OX_1 घटकर OX_2 हो जाती है। इसी प्रकार Icc_2 पर Y–वस्तु घटिया है। इस पर जब उपभोक्ता आय बढ़ने से A_3 से A_4 बिन्दु पर चला जाता है, Y–वस्तु की मात्रा OY_3 से घटकर OY_4 रह जाती है।

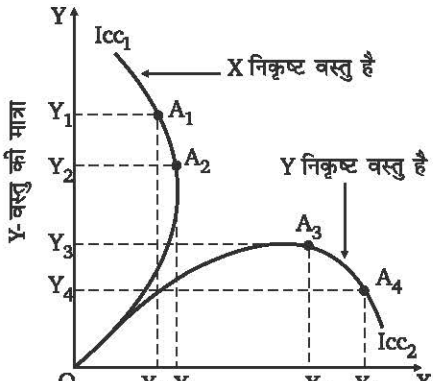

चित्र 3

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि आय के परिवर्तन से वस्तुओं के उपभोग पर जो प्रभाव पड़ता है उसे आय प्रभाव कहते हैं तथा यह प्रभाव सामान्य वस्तुओं के लिए धनात्मक तथा घटिया (या गिफिन) वस्तुओं के लिए ऋणात्मक होता है।

प्रतिस्थापन प्रभाव
(Substitution Effect)

जब उपभोक्ता की आय में कोई परिवर्तन न हो तथा दो वस्तुओं के सापेक्ष कीमतों में परिवर्तन हो जाए तो इसके फलस्वरूप किसी वस्तु की माँग में जो परिवर्तन होता है उसे प्रतिस्थापन प्रभाव कहा जाता है। प्रतिस्थापन प्रभाव उस समय कार्यशील होता है, जबकि उपभोक्ता की आय में परिवर्तन न होते हुए दोनों ही वस्तुओं की सापेक्ष कीमतों में इस प्रकार परिवर्तन होते हैं कि उपभोक्ता पहले की अपेक्षा न अच्छी स्थिति में होता है न खराब स्थिति में अर्थात् उसकी सन्तुष्टि का स्तर पूर्ववत् बना रहता है। उपभोक्ता को बदलती हुई कीमतों पर अपनी खरीद को इस प्रकार व्यवस्थित करना पड़ता है कि अपेक्षाकृत महंगी वस्तु कम खरीदी जाती है तथा अपेक्षाकृत सस्ती वस्तु अधिक मात्रा में क्रय की जाती है। कुल मिलाकर उपभोक्ता को न तो हानि होती है और न ही लाभ होता है, बल्कि सन्तुष्टि का स्तर यथावत् बना रहता है।

इस तरह जब उपभोक्ता एक ही तटस्थता वक्र पर एक सन्तुलन बिन्दु से दूसरे सन्तुलन बिन्दु पर जाता है तो इसे प्रतिस्थापन प्रभाव कहते हैं।

चित्र 4 में उपभोक्ता की प्रारम्भिक कीमत रेखा P_0L_0 है जिस पर उपभोक्ता का सन्तुलन E_0 है जो दोनों वस्तुओं के $OX_0 + OY_0$ संयोग को प्रकट करता है। यदि X-वस्तु सस्ती हो जाती है, तो अब उसी मौद्रिक आय में उपभोक्ता X-वस्तु की पहले की अपेक्षा अधिक इकाइयाँ खरीद सकता है जिससे कीमत रेखा P_0L_2 हो जाएगी। यह कीमत रेखा पहले की अपेक्षा ऊँची है जिस पर सन्तुलन का नया बिन्दु किसी ऊँचे तटस्थता वक्र में होगा और यह ऊँचे सन्तोष तथा आय में वृद्धि का प्रतीक होगा।

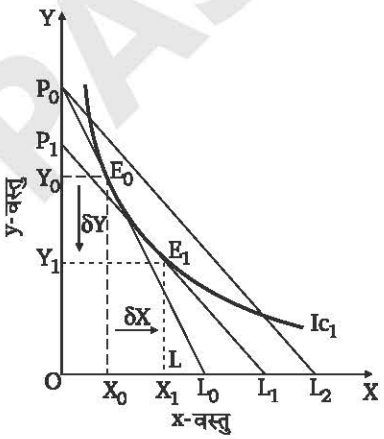

चित्र 4

अत: उपभोक्ता के समान वास्तविक आय व सन्तोष को बनाए रखने के लिए उसी तटस्थता वक्र (Ic) पर रहना पड़ेगा। इसलिए वास्तविक आय को समान रखने के लिए उपभोक्ता को कुछ मौद्रिक आय बचा कर रखनी पड़ेगी। इस प्रकार नए कीमत अनुपात को बनाए रखने वाली कीमत रेखा P_1L_1 होगी। यह तटस्थता वक्र Ic के E_1 बिन्दु पर स्पर्श रेखा है जिसके अनुसार उपभोक्ता का नया वस्तु संयोग-X वस्तु की OX_1 की OY_1 मात्रा का है अर्थात् $OX_1 + OY_1$। इस प्रकार X-वस्तु की कीमत के घट जाने से उपभोक्ता ने महंगी Y-वस्तु की Y_0Y_1 इकाइयों के स्थान पर सस्ती X-वस्तु की X_0Y_1 इकाइयों का प्रतिस्थापन किया है अर्थात्

$$\delta Y \downarrow = \delta X \uparrow$$

यहाँ यह स्पष्ट करना अनिवार्य है कि प्रतिस्थापन प्रभाव हमेशा धनात्मक (positive) होता है। इस सम्बन्ध में अभी यह अस्पष्टता बनी हुई है कि इसे धनात्मक क्यों कहा जाता है? वास्तव में X-वस्तु की कीमत घटने से इस वस्तु की माँग बढ़ी है और चूंकि दो चरों के बीच के सम्बन्ध को variables के विपरीत दिशाओं के बदलने से इनको ऋणात्मक माना जाता है। इसलिए वाटसन जैसे अर्थशास्त्रियों ने प्रतिस्थापन प्रभाव को ऋणात्मक लिखा है, लेकिन ऋणात्मक लिखने से कीमत प्रभाव के आय प्रभाव व प्रतिस्थापन प्रभाव का योग होने की स्थिति को समझाने में कठिनाई होती है इसलिए धनात्मक ही लिखना अधिक उचित है।

संक्षेप में प्रतिस्थापन प्रभाव के अन्तर्गत निम्नलिखित बातों का समावेश होता है—

1. उपभोक्ता की आय पूर्ववत् बनी रहती है।
2. दो वस्तुओं की सापेक्ष कीमतों में परिवर्तन हो जाता है।
3. एक वस्तु महंगी तथा दूसरी वस्तु सस्ती हो जाती है।
4. एक वस्तु के महंगे होने का प्रभाव दूसरी वस्तु के सस्ते होने वाले प्रभाव से पूर्णतया समाप्त हो जाता है।
5. उपभोक्ता का कुल सन्तोष पूर्ववत् बना रहता है, अर्थात् वह अपने पुराने तटस्थता वक्र पर ही बना रहता है।

प्र.4. तटस्थता वक्र द्वारा माँग वक्र की व्युत्पत्ति किस प्रकार सम्भव है? चित्र की सहायता से स्पष्ट कीजिए।
How is the derivation of Demand Curve possible through Indifference Curve? Make clear with the help of diagram.

उत्तर तटस्थता वक्र की सहायता से माँग वक्र को व्युत्पन्न करना (Derivation of Demand Curve through Indifference Curve)

माँग के नियम को प्रकट करने वाला माँग वक्र यह बताता है कि अन्य बातें समान रहने पर वस्तु की कीमत तथा खरीदी गई मात्रा में विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है। कीमत घटने से माँगी गई मात्रा में वृद्धि होती है और कीमत बढने से इसमें कमी आती है। तटस्थता वक्र दृष्टिकोण से माँग वक्र अथवा माँग के नियम को कीमत उपभोग वक्र द्वारा ज्ञात किया जाता है। कीमत उपभोग वक्र प्रत्येक कीमत पर उपभोक्ता द्वारा खरीदी गई वस्तु-X की मात्रा को प्रकट करता है। इस प्रकार यह वक्र उस सूचना को समाविष्ट करता है जिससे उपभोक्ता के माँग वक्र का निर्माण होता है।

कीमत-उपभोग वक्र की सहायता से माँग वक्र की रचना निम्नवत की जा सकती है—

लिप्सी (Lipsey) के शब्दों में, "कीमत उपभोग वक्र पर प्रत्येक बिन्दु की कीमत तथा माँगी गई मात्रा दोनों को व्यक्त करता है।"

कीमत-उपभोग वक्र से माँग तालिका बनाकर माँग-वक्र का निर्माण (Formation of Demand Curve by making Demand Table from Price Consumption Curve)

इस विधि के अनुसार कीमत-उपभोग वक्र (Pcc) की सहायता से उपभोक्ता की माँग अनुसूची तैयार कर ली जाती है तथा इस अनुसूची की सहायता से उपभोक्ता की माँग का निर्माण कर लिया जाता है। इस सन्दर्भ में निम्न बातों को मान लिया गया है—

(i) उपभोक्ता की आय ₹ 24 है,

(ii) X-वस्तु का मूल्य गिरता है फलतः उपभोक्ता X-वस्तु को लगातार अधिक क्रय करता है।

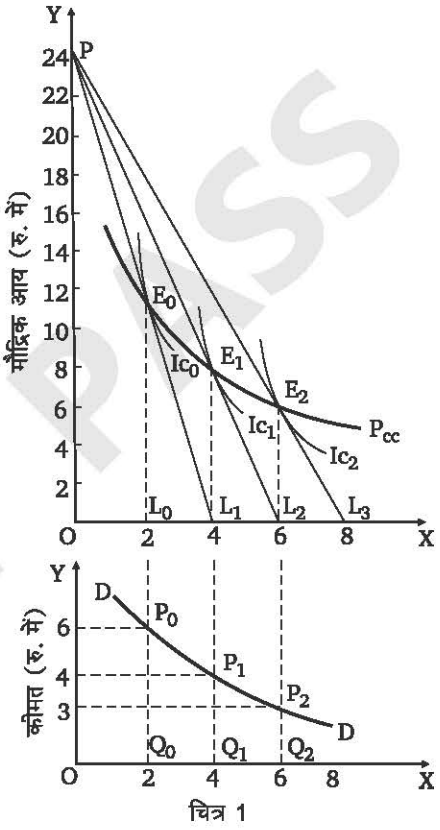

चित्र 1

चित्र 1 में X-axis पर X-वस्तु की इकाइयाँ तथा Y-axis पर उपभोक्ता की मौद्रिक आय दिखायी गयी है। चित्र में उपभोक्ता की प्रारम्भिक कीमत रेखा PL_1 है। X-वस्तु के मूल्य में कमी होते रहने से नयी कीमत रेखाएं क्रमशः PL_2 तथा PL_3 हैं। उपभोक्ता इन नयी कीमत रेखाओं पर E_0, E_1 व E_2 बिन्दुओं पर साम्य की दशा में होता है। यदि इन साम्य बिन्दुओं को मिला दिया जाये तो कीमत-उपभोग वक्र (Pcc) प्राप्त होगा। यह रेखा बताती है कि उपभोक्ता एक दी हुई आय पर विभिन्न कीमतों पर X-वस्तु की कितनी मात्राएँ क्रय करेगा। कीमत उपभोग वक्र की सहायता से उपभोक्ता की माँग अनुसूची तैयार की जा सकती है।

प्रारम्भ में कीमत रेखा PL_1 है जिस पर उपभोक्ता अपनी समस्त आय OP अर्थात् ₹ 24 X-वस्तु पर खर्च करे, तो वह इसकी OL_1 ईकाइयाँ प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार X-वस्तु की कीमत लगातार घटते चले जाने के कारण उपभोक्ता की कीमत रेखाएँ चपटी होती चली जाती हैं और PL_2 तथा PL_3 बन जाती हैं। इन रेखाओं पर सन्तुलन बिन्दु E_0, E_1 तथा E_2 हैं। चित्र के अनुसार जब उपभोक्ता प्रारम्भिक कीमत रेखा PL_1 पर E_0 बिन्दु पर सन्तुलन में होता है, तो X की कीमत $\frac{OP}{OL_1}$ या ₹ $\frac{24}{4}$ या 6 है, जबकि वस्तु की मात्रा OL_0 या 2 इकाइयाँ हैं। X-वस्तु की कीमत घटने से जब नयी कीमत रेखा PL_2 हो जाती है, तो $\frac{OP}{OL_2}$ या $\frac{24}{6}$ = ₹ 4 है। इस कीमत रेखा पर सन्तुलन बिन्दु E_1 है जो वस्तु की OL_1 या 4 इकाइयों को प्रकट करता है। इसी प्रकार कीमत के और घटने से जो कीमत रेखा PL_3 बनती है उस पर वस्तु की कीमत $\frac{OP}{OL_3}$ या $\frac{24}{8}$ = ₹ 3 है। इस कीमत रेखा पर

सन्तुलन बिन्दु E_2 पर वस्तु की OL_2 या 6 इकाइयों को बताता है। इस सारी जानकारी को एक माँग तालिका के रूप में अग्र प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

तालिका : माँग अनुसूची

X-वस्तु की कीमत	*Y*-वस्तु की माँगी गई मात्रा
$\frac{OP}{OL_1}$ या ₹$\frac{24}{4}$ = ₹6	$OL_0 = 2$
$\frac{OP}{OL_2}$ या ₹$\frac{24}{6}$ = ₹4	$OL_1 = 4$
$\frac{OP}{OL_3}$ या ₹$\frac{24}{8}$ = ₹3	$OL_2 = 6$

तालिका के आधार पर एक माँग वक्र आसानी से बनाया जा सकता है। हमने यह माँग वक्र चित्र 1 के निचले वाले हिस्से में ही बना दिया है। माँग-वक्र बताता है कि उपभोक्ता P_0Q_0 (या ₹6) कीमत पर OQ_0 (या 2) इकाइयाँ खरीदता है और जब कीमतें घटकर P_1Q_1 (या 4) और P_2Q_2 (या ₹3) हो जाती हैं, तो वह उस वस्तु की माँग बढ़ाकर क्रमश: OQ_1 (या 4) और OQ_2 (या 6) कर देता है।

प्र.5. गिफिन वस्तुओं तथा निम्न वस्तुओं को सचित्र स्पष्ट करते हुए विस्तृत लेख लिखिए।
Write a detailed note, along with diagrams, to make Giffen Goods and Inferior Goods.

उत्तर

गिफिन वस्तुएँ एवं निम्न वस्तुएँ
(Giffen Goods and Inferior Goods)

सामान्य वस्तु की दशाओं में आय प्रभाव धनात्मक होता है तथा प्रतिस्थापन प्रभाव की दिशा में कार्य करके उसे सबल बनाता है। प्रतिस्थापन प्रभाव का चिह्न (Sign) सदैव ऋणात्मक होता है क्योंकि प्रतिस्थापन प्रभाव वस्तु की कीमत एवं माँग में विपरीत सम्बन्ध स्थापित करता है अर्थात् किसी वस्तु की कीमत की कमी उस वस्तु की माँग में वृद्धि जरूर करेगी और कीमत में वृद्धि उस वस्तु की माँग में कमी अवश्य करेगी। वस्तु की कीमत कम होने पर आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव दोनों एक ही दिशा में कार्य करके सामान्य वस्तु की माँग मात्रा को बढ़ा देंगे तथा वस्तु की माँग बढ़ने पर माँग को कम कर देंगे।

किन्तु सामान्य वस्तु के विपरीत निम्न वस्तु (Inferior Goods) के सम्बन्ध में आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव एक ही दिशा में कार्य नहीं करते। निम्न वस्तु के सम्बन्ध में आय प्रभाव ऋणात्मक होता है जिसका अर्थ है कि उपभोक्ता आय में वृद्धि होने पर वस्तु का उपभोग कम कर रहा है तथा आय में कमी होने पर वस्तु का उपभोग अधिक करता है। निम्न वस्तु में माँग का नियम क्रियाशील होता है क्योंकि आय प्रभाव, प्रतिस्थापन प्रभाव से निर्बल होता है। प्रतिस्थापन प्रभाव, जो वस्तु की कीमत कम होने पर वस्तु के उपभोग को बढ़ा रहा है, उस आय प्रभाव से बलवान होता है जो वस्तु की कीमत कम होने पर वस्तु के उपभोग को घटा रहा है। परिणामस्वरूप प्रतिस्थापन प्रभाव, आय प्रभाव को समाप्त करके निम्न वस्तु की दशा में कीमत गिरने पर वस्तु की शुद्ध माँग (Net Demand) को बढ़ाएगा। इस प्रकार निम्न वस्तुओं में कीमत-माँग का विपरीत सम्बन्ध बना रहता है। इस स्थिति का मुख्य कारण यह है कि उपभोक्ता अपनी आय का एक सूक्ष्म भाग ही वस्तु के क्रय पर व्यय कर रहा है जिसके कारण आय प्रभाव अति क्षीण होता है। वस्तु की कीमत घटने पर उपभोक्ता की वास्तविक आय में वृद्धि नहीं होती कि वह प्रतिस्थापन प्रभाव को नष्ट कर सके। दूसरी ओर गिफिन वस्तु (Giffen Goods) के सम्बन्ध में माँग के नियम का कीमत माँग का सम्बन्ध बिगड़ जाता है और कीमत-माँग के ऋणात्मक सम्बन्ध के स्थान पर धनात्मक अर्थात् सीधा सम्बन्ध स्थापित होता है। इस धनात्मक सम्बन्ध का अर्थ कि उपभोक्ता वस्तु की कीमत घटने पर वस्तु के उपभोग को घटा देता है तथा कीमत बढ़ने पर वस्तु के उपभोग को बढ़ा देता

है। इस स्थिति का उल्लेख उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटेन के सर रॉबर्ट गिफिन ने माँग के नियम अपवाद के रूप में प्रस्तुत किया था जिसे उन्हीं के नाम पर 'गिफिन का विरोधाभास' (Giffen's Paradox) कहा जाता है। उनके अनुसार एक गरीब व्यक्ति अपनी आय का एक बड़ा भाग भोजन पर व्यय करता है जिसमें वह अधिकांश रूप से ब्रेड (Bread) का उपभोग करता है, शेष भाग वह केक (Cake) तथा मांस (Meat) पर व्यय करता है। अब अगर ब्रेड की कीमत में वृद्धि हो जाए तो उपभोक्ता ब्रेड का उपभोग बढ़ा देगा क्योंकि कीमत बढ़ जाने से उसकी वास्तविक आय कम हो गई है जिसके कारण अब वह मंहगी खाद्य सामग्री केक तथा मांस का उपभोग कम करेगा क्योंकि ब्रेड की कीमत बढ़ने पर भी ब्रेड अन्य खाद्य पदार्थ केक तथा मांस से सस्ती है। इस प्रकार ब्रेड की कीमत बढ़ने पर उपभोक्ता इसका उपभोग कम करने के स्थान पर बढ़ा देते हैं जो माँग के नियम का अपवाद है। इसी प्रकार ब्रेड की कीमत की कमी उपभोक्ता की माँग को कम कर देगी क्योंकि ब्रेड की कीमत घटने से आय का बड़ा भाग उपभोक्ता के पास बच जाएगा जिससे वह उच्च प्रकृति के खाद्य–केक तथा मांस की ओर स्थानान्तरित होगा और ब्रेड की मात्रा कम करेगा। इस विरोधाभास का मुख्य कारण है कि गिफिन वस्तुओं पर आय का एक बड़ा भाग वस्तु के उपभोग पर व्यय किए जाने के कारण ऋणात्मक आय प्रभाव, प्रतिस्थापन प्रभाव से बलवान हो जाता है। दूसरे शब्दों में, ऋणात्मक आय प्रभाव, वस्तु की कीमत कम होने पर उपभोग को इतना कम कर देगा कि प्रतिस्थापन प्रभाव, जो कीमत घटने के कारण वस्तु की माँग की मात्रा को बढ़ा रहा है, ऋणात्मक आय प्रभाव से कम शक्तिशाली रहता है। फलत: ऋणात्मक आय प्रभाव गिफिन वस्तुओं में प्रतिस्थापन प्रभाव को पूर्णत: समाप्त करके अपना प्रभाव बनाए रखता है।

इस प्रकार, **निम्न वस्तु** (Inferior Goods) **के लिए**

ऋणात्मक आय प्रभाव कमजोर होता है प्रतिस्थापन प्रभाव से अर्थात् माँग का नियम $\left(P \propto \frac{1}{Q}\right)$ क्रियाशील रहता है क्योंकि उपभोक्ता आय का एक छोटा भाग वस्तु के क्रय में व्यय कर रहा है।

गिफिन वस्तु (Giffen Goods) **के लिए**

ऋणात्मक आय प्रभाव बलशाली होता है प्रतिस्थापन प्रभाव से, अर्थात् माँग का नियम $\left(P \propto \frac{1}{Q}\right)$ क्रियाशील नहीं होता क्योंकि इस दशा में उपभोक्ता आय का एक बड़ा भाग वस्तु के क्रय में व्यय कर रहा है।

दूसरे शब्दों में, विशिष्ट प्रकार की निम्न वस्तुएँ जिनमें ऋणात्मक आय प्रभाव प्रभावी एवं बलशाली होता है, गिफिन वस्तुएँ कहलाती हैं।

प्रो० हिक्स ने गिफिन वस्तु के लिए तीन शर्तों का उल्लेख अपनी पुस्तक '*A Revision of Demand Theory*' में किया है, जो इस प्रकार हैं

1. निम्न वस्तु का ऋणात्मक आय प्रभाव अधिक शक्तिशाली हो;
2. उस वस्तु का प्रतिस्थापन प्रभाव कम हो; तथा
3. उस वस्तु पर आय का एक बड़ा भाग व्यय किया जा रहा हो।

कीमत-माँग सम्बन्ध का चित्र निरूपण (निम्न वस्तु एवं गिफिन वस्तु के सन्दर्भ में)
(Diagrammatic Representation of Price-Demand Relationship)

चित्र 1 में निम्न वस्तु के लिए कीमत प्रभाव का विभाजन किया गया है। वस्तु X की कीमत कम होने पर कीमत रेखा R_1S से R_1S_1 हो जाती है। आरम्भ में उपभोक्ता IC_1 के बिन्दु P पर सन्तुलन में है। कीमत परिवर्तन से उपभोक्ता बिन्दु P से बिन्दु R पर स्थानान्तरित हो जाता है। बिन्दु P से उपभोक्ता बिन्दु R पर सीधे नहीं पहुँचता वरन P से Q पर तथा उसके बाद Q से R पर। M_1M_2 ऋणात्मक आय प्रभाव है (P से Q तक स्थानान्तरण) तथा M_2M_3 धनात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव है (Q से R तक स्थानान्तरण)। प्रतिस्थापन प्रभाव ऋणात्मक आय प्रभाव से अधिक बलशाली है ($M_2M_3 > M_1M_2$) अत: निम्न वस्तु के लिए कीमत प्रभाव धनात्मक होगा अर्थात् M_1M_3।

चित्र 2 में गिफिन वस्तु के लिए कीमत प्रभाव का विभाजन प्रस्तुत किया गया है। गिफिन वस्तु के लिए ऋणात्मक आय प्रभाव (P से Q तक) धनात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव (Q से R तक) से अधिक बलशाली है ($M_1M_2 > M_2M_3$)। अत: वस्तु X की कीमत कम होने पर वस्तु की M_1M_3 मात्रा कम हो जाएगी।

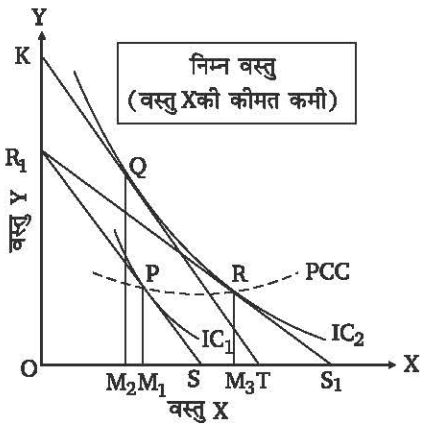

चित्र 1

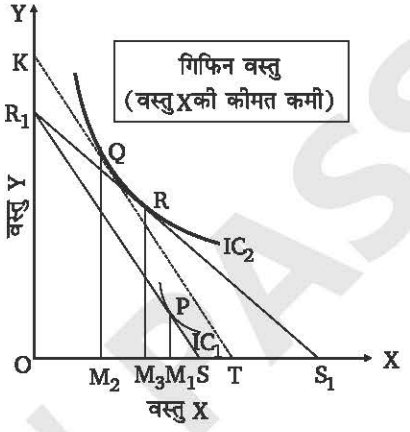

चित्र 2

प्र.6. प्रकट (उद्घाटित) अधिमान सिद्धान्त की विस्तृत विवेचना कीजिए।

Give a detailed discussion of Revealed Preference Theory.

उत्तर

प्रकट अधिमान सिद्धान्त
(Revealed Preference Theory)

उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त का प्रयोग माँग-नियम के निर्धारण के लिए भी किया गया है। **प्रो० सैमुअल्सन** ने अपने उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त की सहायता से मार्शल के माँग के नियम का व्युत्पादन किया है। जैसा कि सर्वविदित है, मार्शल का माँग-नियम यह बताता है कि एक वस्तु की कीमत में वृद्धि होने पर, यदि आय व अन्य कीमतें स्थिर रहें, वस्तु की माँग-मात्रा में कमी हो जाती है। अन्य शब्दों में, मार्शल के माँग के नियम के अनुसार किसी वस्तु की कीमत तथा माँग-मात्रा में विलोम सम्बन्ध होता है। सैमुअल्सन माँग और कीमत के इस सम्बन्ध को इस मान्यता के आधार पर प्रमाणित करने का प्रयत्न करता है कि माँग की आय-लोच (income elasticity of demand) धनात्मक (positive) है। धनात्मक आय लोच के द्वारा ही वह मार्शल द्वारा प्रतिपादित माँग व कीमत में सम्बन्ध को व्युत्पादित करता है। वह माँग के नियम का, जिसको उसने 'उपभोग सिद्धान्त का आधारभूत नियम' (Fundamental Theorem of Consumption Theory) कहा है, निम्न प्रकार वर्णन करता है—

"कोई भी वस्तु (साधारण हो या जटिल), जिसकी माँग मौद्रिक आय के बढ़ने पर सदा बढती है, की माँग मात्रा में अवश्य संकुचन होना चाहिए जब केवल इसकी कीमत में वृद्धि हो।"

आधारभूत उपभोग-नियम के उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि सेमुअल्सन ने कीमत तथा माँग में विलोम सम्बन्ध नियम के लिए माँग की आय-लोच के धनात्मक होने को एक आवश्यक शर्त बना दिया है। आधारभूत नियम में ज्यामितिक प्रमाण को चित्र-1 में चित्रित किया गया है। मान लीजिए कि उपभोक्ता अपनी समस्त आय को दो वस्तुओं X तथा Y पर व्यय करता है। वस्तुओं की दी हुई कीमतों तथा आय से बजट रेखा AB बनाई गई है। AB रेखा उस कीमत-आय स्थिति को दर्शाती है जिसका सामना उपभोक्ता करता है। OAB त्रिभुज पर, या उसके भीतर के समस्त संयोग उपभोक्ता को प्राप्य हैं और उनमें से किसी भी एक संयोग को वह चयन कर सकता है। मान लीजिए कि उपभोक्ता संयोग Q का चयन करता है। इसका अर्थ है कि उपभोक्ता OAB त्रिभुज पर तथा उसके भीतर के विभिन्न संयोगों में से संयोग Q के लिए अधिमान को उद्घाटित करता है। अब मान लीजिए कि वस्तु X की कीमत बढ़ जाती है जबकि वस्तु Y की कीमत स्थिर रहती है। वस्तु X की कीमत के बढ़ने पर बजट अथवा कीमत रेखा AB से बदलकर AC हो जाती है। कीमत रेखा AC नई कीमत-आय स्थिति को दर्शाती है। अब हम यह जानना चाहते हैं कि

वस्तु X की कीमत के बढ़ने का इसकी माँग पर क्या प्रभाव पड़ता है। हम यह मान लेते हैं कि माँग में परिवर्तन आय में हो रहे परिवर्तनों की दिशा में होते हैं (अर्थात् माँग की आय-लोच धनात्मक है)। चित्र-1 से स्पष्ट है कि कीमत-आय स्थिति AC में उपभोक्ता को संयोग Q प्राप्य नहीं है। अब हम यह मान लेते हैं कि वस्तु X की बढ़ी हुई कीमत की क्षतिपूर्ति के लिए उपभोक्ता को अधिक रुपया देना होगा जिससे कि वह वस्तु X की बढ़ी हुई कीमत पर भी संयोग Q को प्राप्त कर सके।

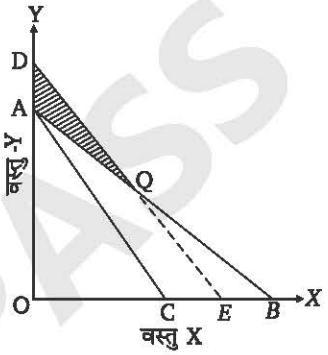

चित्र 1

वस्तु X की कीमत बढ़ने पर उपभोक्ता को पहले वाले संयोग क्रय को सम्भव बनाने के लिए जो अतिरिक्त रुपया देना होगा, उसको **जे० आर० हिक्स** ने लागत अन्तर (Cost difference) कहा है। चित्र-1 में AC के समानान्तर रेखा DE इस प्रकार खींची गई है कि यह Q पर से गुजरे। DE रेखा वस्तु X की बढ़ी हुई कीमत तथा उपभोक्ता की बढ़ी हुई आय (लागत-अन्तर के बराबर) को प्रदर्शित करती है। अब प्रश्न यह है कि कीमत-आय स्थिति DE में उपभोक्ता कौन-से संयोग का चयन करेगा। कीमत-आय स्थिति DE में भी प्रारम्भिक संयोग Q उपभोक्ता को उपलब्ध है। यह स्पष्ट है कि यह DE रेखा पर Q से नीचे के किसी भी संयोग का चयन नहीं करेगा क्योंकि यदि वह DE रेखा पर Q के नीचे के किसी संयोग को चुनता है तो उसका चयन असंगत होगा। DE पर Q के नीचे के सभी संयोगों अर्थात् QE पर के सभी संयोगों को वह पहले भी क्रय कर सकता था परन्तु AB कीमत आय स्थिति में उसने इन सभी को Q के लिए त्याग कर दिया था। (QE के समस्त बिन्दु AOB त्रिभुज में सम्मिलित थे)। चूँकि हम उपभोक्ता के व्यवहार में संगति की कल्पना कर चुके हैं इसलिए वह कीमत-आय की DE स्थिति में QE पर Q की तुलना में, किसी भी संयोग को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होगा (जबकि उसको नई स्थिति में भी Q प्राप्य है)। इसलिए यह कहा जा सकता है कि DE कीमत-आय स्थिति में उपभोक्ता या तो पूर्व संयोग Q का ही चयन करेगा या DE रेखा के QD भाग पर अथवा उसके नीचे छायाकृत क्षेत्र के भीतर स्थित किसी संयोग का चयन करेगा (यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि QD पर स्थित संयोगों में Q की तुलना में पसन्द करने में कोई असंगति नहीं होगी क्योंकि ये संयोग पहले वाली कीमत-आय स्थिति AB में प्राप्य नहीं थे।) QE कीमत-आय स्थिति में उपभोक्ता यदि पूर्व संयोग Q का चयन करता है तो वह X तथा Y की पहले के बराबर ही ईकाइयाँ प्राप्त करेगा, और यदि वह QD पर Q से ऊपर की ओर तथा छायाकृत क्षेत्र के भीतर के किसी संयोग को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है तो वह पहले की तुलना में X की कम मात्रा खरीदता है तथा वस्तु Y की अधिक। अत: यद्यपि वस्तु X की कीमत में हुई वृद्धि की क्षतिपूर्ति के लिए उपभोक्ता को अतिरिक्त आय पर्याप्त मात्रा में प्रदान कर दी गई है, तो भी वस्तु X की कीमत में वृद्धि होने पर या तो उसकी पहले जितनी मात्रा खरीदता है या पहले से कम। अब उसको जो अतिरिक्त क्रयशक्ति प्रदान की गई थी यदि उससे वापस ले ली जाए, तो वह निश्चित रूप से, वस्तु X की कीमत बढ़ने पर उसकी कम मात्रा का क्रय करेगा। ऐसा तब होगा जबकि आय में कमी होने पर वस्तु X की माँग गिरती है (अर्थात् यदि माँग की आय-लोच धनात्मक है)। अन्य शब्दों में, जबकि वस्तु X की कीमत बढ़ जाए और उपभोक्ता को कोई अतिरिक्त आय प्राप्त न हो जिस कारण वह AC कीमत-आय स्थिति में ही क्रय करता है तो वह, Q स्थिति की तुलना में, वस्तु X की कम मात्रा का क्रय करेगा। अत: माँग की आय लोच को धनात्मक मानकर, कीमत-माँग में विलोम सम्बन्ध सिद्ध हो जाता है।

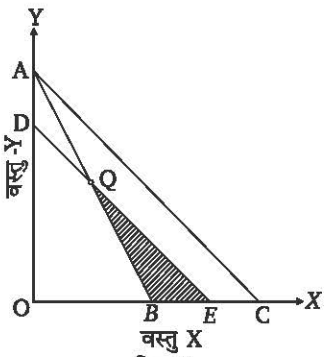

चित्र 2

कीमत गिरने की स्थिति में भी कीमत व माँग में विलोम सम्बन्ध को चित्र-2 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए कि AB रेखा प्रारम्भिक कीमत आय स्थिति को दर्शाती है तथा उपभोक्ता OAB त्रिभुज पर के तथा इसके भीतर के समस्त संयोगों में से Q चयन करता है। मान लीजिए कि वस्तु X की कीमत गिर जाती है और कीमत रेखा दाईं ओर को विवर्तित होकर AC बन जाती है। अब हम उपभोक्ता की क्रयशक्ति को कुछ कम कर देते हैं जिससे वह वस्तु X की कम कीमत पर Q संयोग को क्रय कर सकता है। अत: चित्र-2 में AC के समानान्तर DE रेखा खींची गई है जो कि Q पर से गुजरती है। DE रेखा वस्तु X की कम कीमत (जैसे कि AC' द्वारा व्यक्त है) तथा उपभोक्ता की गिरी हई आय (लागत-अन्तर के बराबर कमी) को दर्शाती है। यह स्पष्ट है कि DE कीमत-आय स्थिति में, उपभोक्ता Q बिन्दु से ऊपर की ओर QD पर के किसी भी संयोग का चयन नहीं करेगा

क्योंकि ये सब संयोग उसको पूर्व कीमत-आय स्थिति AB में उपलब्ध थे और Q उसने इन सब को त्याग दिया था। अत: उपभोक्ता या तो Q का चयन करेगा या QE पर के अथवा छायाकृत क्षेत्र के भीतर के किसी संयोग का कीमत-आय स्थिति DE में, यदि वह Q का चयन करता है तो वह X तथा Y वस्तुओं की उतनी ही मात्रा प्राप्त करेगा जितनी कि वह कीमत-आय की पूर्व स्थिति AB में कर रहा था। परन्तु यदि वह QE पर के किसी संयोग का चयन करता है तो वह वस्तु X का क्रय अधिक मात्रा में करता है तथा वस्तु Y का कम मात्रा में (पूर्व कीमत-आय स्थिति AB की तुलना में)। अत: उपभोक्ता की आय के कम कर देने पर भी उपभोक्ता, कम कीमत पर वस्तु X की या तो पहले जितनी ही मात्रा खरीदता है या पहले से अधिक। यदि, जो क्रयशक्ति उससे ले ली गई थी, वह उसको वापस कर दी जाती है तो वह AC' कीमत-आय स्थिति का सामना करेगा और, निश्चित रूप से, वस्तु X की कम कीमत पर इस वस्तु का क्रय अधिक मात्रा में करेगा। ऐसा तभी होगा जबकि आय के बढ़ने से उस वस्त X के लिए माँग बढ़ जाती है (अर्थात् वस्तु X के लिए उसकी माँग की आय-लोच (income elasticity) धनात्मक है)।

उपर्युक्त विश्लेषण से माँग सिद्धान्त का आधारभूत नियम सिद्ध हो जाता है जिसके अनुसार जिस वस्तु की माँग में परिवर्तन आय में परिवर्तन की दिशा में होता है, उस वस्तु की माँग कीमत बढ़ने पर संकुचित तथा कीमत गिरने पर विस्तृत होती है। यह बताना आवश्यक है कि सैमुअल्सन के सिद्धान्त में दो मान्यताएँ निहित हैं जिनका वर्णन ऊपर नहीं किया गया है। सर्वप्रथम, उपभोक्ता सर्वदा उन संयोगों में चयन करता है जो कीमत रेखा पर स्थित होते हैं। दूसरे शब्दों में, वह त्रिभुज के भीतर के किसी भी संयोग को वास्तव में नहीं चुनता। यह इस मान्यता पर आधारित है कि उपभोक्ता सदा, वस्तुओं की कम मात्रा की तुलना में, उनकी अधिक मात्रा को पसन्द करता है। सैमुअल्सन के सिद्धान्त में दूसरी निहित मान्यता यह है कि प्रत्येक कीमत-आय स्थिति में वह वस्तुओं के केवल एक संयोग के लिए ही अपना अधिमान उद्घाटित करता है। इन दो निहित मान्यताओं के आधार पर तथा उपभोक्ताओं के चयन में संगति (consistency of choice) का व्यवहार तथा माँग की आय-लोच के धनात्मक (positive income elasticity) होने की दो स्पष्ट मान्यताओं के आधार पर सैमुअल्सन ने कीमत-माँग में व्युत्क्रम (inverse) के नियम को सिद्ध किया है। ❑

TOUCH 'n' PASS

UNIT-III

उत्पादन एवं कीमत
Production and Costs

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. उत्पाद फलन से आप क्या समझते हैं?

What do you understand by Product Function?

उत्तर किसी फर्म के उत्पाद और आदा के मध्य सम्बन्धों को 'उत्पाद फलन' कहते हैं।

प्र.2. परिवर्तनशील अनुपातों का नियम किस उत्पादन फलन से सम्बन्धित है?

To which Production Function is the Law of Variable Proportions related?

उत्तर परिवर्तनशील अनुपातों का नियम अल्पकालीन उत्पादन फलन से सम्बन्धित है।

प्र.3. यदि उत्पादन वर्द्धमान प्रतिफल नियम के अन्तर्गत होता है तो इसे क्या कहेंगे?

What will be production called if its under Law of Production Returns?

उत्तर यदि उत्पादन वर्द्धमान प्रतिफल नियम के अन्तर्गत होता है तो इसे 'एक से अधिक मात्रा का समाघात उत्पादन फलन' कहेंगे।

प्र.4. फलन में आश्रित चर की किस चर पर निर्भरता की व्याख्या कर सकते हैं?

In production, dependence of dependent variable on which variable can be analysed?

उत्तर फलन में आश्रित चर की स्वतन्त्र चर पर निर्भरता की व्याख्या कर सकते हैं।

प्र.5. दीर्घकालीन उत्पादन फलन से आपका क्या आशय है?

What do you mean by Long-run Production Function?

उत्तर वे उत्पादन फलन जिनमें सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं, 'दीर्घकालीन उत्पादन फलन' कहे जाते हैं।

प्र.6. उत्पादन से आपका क्या आशय है?

What do you mean by production?

उत्तर जिस प्रक्रिया से वस्तुओं में उपयोगिता का सृजन होता है, उसे उत्पादन कहते हैं।

प्र.7. उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता के क्या कारण हैं?

What are the reasons for the productivity of Law of Diminishing Return?

उत्तर उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता के कारण निम्नलिखित हैं—

1. जब एक अथवा कुछ साधनों को स्थिर रखा जाता है एवं शेष साधनों को परिवर्तनशील, तो परिवर्तनशील साधनों की पूर्ण क्षमता का उपयोग नहीं हो पाता; परिणामस्वरूप उत्पादन शक्ति में ह्रास होने लगता है।
2. उत्पादन के एक साधन को किसी दूसरे के स्थान पर एक सीमा तक ही प्रयोग किया जा सकता है, क्योंकि ये साधन एक-दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न नहीं होते।

TOUCH 'n' PASS

प्र.8. उत्पत्ति ह्रास नियम की कोई परिभाषा दीजिए।

Give any one definition of Law of Diminishing Return.

उत्तर मार्शल के अनुसार, "यदि कृषि कला में उन्नति न हो तो सामान्यत: कृषि में लगाई गई पूँजी व श्रम की इकाई से कम अनुपात में उत्पादन बढ़ता है।"

प्र.9. परिवर्तनशील अनुपातों का नियम किस परिस्थिति में लागू होता है?

In which conditions is the Law of Variable Proportion applied?

उत्तर जब सीमान्त व औसत उत्पादन दोनों घटने लगते हैं, परिवर्तनशील अनुपातों का नियम लागू होता है।

प्र.10. परिवर्तनशील साधन की सीमान्त उत्पादकता किस अवस्था में ऋणात्मक होती है?

In which condition is the marginal productivity of the variable factors is negative?

उत्तर ऋणात्मक प्रतिफल की अवस्था में परिवर्तनशील साधन की सीमान्त उत्पादकता भी ऋणात्मक होती है।

प्र.11. उत्पादन की आरम्भिक अवस्था में उत्पत्ति वृद्धि नियम किस कारण लागू होता है?

In the initial stage production, law of increasing returns is applied for which reason?

उत्तर उत्पादन की आरम्भिक अवस्था में उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू होता है, क्योंकि इस दशा में पैमाने की मितव्ययिताएँ प्राप्त होती हैं।

प्र.12. क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम समझाइए।

Explain Law of Increasing Return.

उत्तर क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम उत्पादन के प्रतिफल की उस अवस्था की ओर संकेत करता है जब उत्पत्ति के साधनों की अतिरिक्त इकाइयों के प्रयोग से उत्पादन में अनुपात से अधिक वृद्धि होती है।

प्र.13. समोत्पाद वक्र किन धारणाओं पर आधारित होता है?

On which assumptions is Iso-curved curve based?

उत्तर समोत्पाद वक्र निम्नलिखित धारणाओं पर आधारित होता है; जैसे—

1. वस्तु के उत्पादन के लिए केवल दो साधनों का ही प्रयोग किया जा रहा है। क्योंकि यदि हम दो से अधिक साधनों के प्रयोग की मान्यता स्वीकार करते हैं तो समोत्पाद वक्रों की सरलता समाप्त हो जाती है।
2. विश्लेषण की अवधि में उत्पादन की प्राविधिक दशाएँ अपरिवर्तित रहती हैं।
3. उत्पादन के साधन छोटी-छोटी इकाइयों में विभाज्य हैं।
4. साधनों को पूर्ण कुशलता के साथ प्रयुक्त किया जाता है।

प्र.14. समोत्पाद मानचित्र से आप क्या समझते हैं?

What do you understand Iso-product map?

उत्तर जब एक से अधिक समोत्पाद वक्र एक ही चित्र में दर्शाए जाते हैं तो वह समोत्पाद मानचित्र कहलाता है।

प्र.15. समोत्पाद वक्र की दो प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

Write two characteristics of Iso-product curve.

उत्तर समोत्पाद वक्र की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं—

1. समोत्पाद वक्र ऊपर से नीचे गिरते हुए होते हैं।
2. समोत्पाद वक्र मूलबिन्दु के उन्नतोदर होते हैं।

TOUCH 'n' PASS

प्र.16. सीमान्त लागत से आप क्या समझते हैं?

What do you understand by Marginal Cost?

उत्तर किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन से कुल लागत में जो वृद्धि होती है, वह सीमान्त लागत कहलाती है। इसका सूत्र निम्न प्रकार है—

$$MC = TC_N - TC_{N-1}$$

या

$$MC = \frac{\Delta TC}{\Delta Q}$$

प्र.17. औसत लागत से आपका क्या अभिप्राय है?

What do you mean by Average Cost?

उत्तर कुल लागत को कुल उत्पादन से भाग देने पर जो लागत प्राप्त होती है, उसे औसत लागत कहते हैं। इसका सूत्र है—

$$\text{औसत लागत} = \frac{\text{कुल लागत}}{\text{कुल उत्पादन (इकाइयाँ)}}$$

प्र.18. स्पष्ट लागतों से आपका क्या आशय है?

What do you mean by Clear Costs?

उत्तर स्पष्ट लागतें वे लागतें होती हैं, जो उत्पादक उत्पादन के अन्य साधनों के बदले उनके स्वामियों को देता है।

प्र.19. स्थिर या अनुपूरक लागत क्या है?

What is Stable or Supplementary Cost?

उत्तर स्थिर या अनुपूरक लागत उसे कहते हैं, जिसकी कुल राशि अल्पकाल में उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन होने पर भी पूर्णरूप से अपरिवर्तित रहती है।

प्र.20. प्रमुख या परिवर्तनशील लागतों से आप क्या समझते हैं?

What do you understand by Main or Variable Cost?

उत्तर प्रमुख या परिवर्तनशील लागत उसे कहते हैं, जिसकी राशि उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन होने पर परिवर्तित होती है।

प्र.21. बाह्य बचतें किन्हें कहते हैं?

What are external economies of scale?

उत्तर बाह्य बचतें वे लाभ एवं सुविधाएँ होती हैं जो किसी विशेष उद्योग की सभी फर्मों को प्राप्त होती हैं। ये एक फर्म के निजी प्रयत्नों का परिणाम नहीं होतीं अपितु सम्पूर्ण उद्योग के उत्पादन में वृद्धि का प्रतिफल होती हैं।

प्र.22. आन्तरिक बचतें किन्हें कहते हैं?

What are known as external economies of scale?

उत्तर एक विशेष फर्म का आकार बढ़ने से उसकी आन्तरिक व्यवस्था एवं संगठन में सुधार होने के कारण उस फर्म को जो बचतें प्राप्त होती हैं, वे आन्तरिक बचतें कहलाती हैं।

प्र.23. लाभ अधिकतमीकरण की दो प्रमुख मान्यताएँ बताइए।

Write any two beliefs of Profit Maximization.

उत्तर लाभ अधिकतमीकरण की प्रमुख मान्यताएँ हैं—1. उद्यमी स्वयं ही फर्म का मालिक है। 2. उत्पादन की तकनीक दी हुई है।

प्र.24. एक फर्म का प्रमुख उद्देश्य क्या होना चाहिए?

What should be the main purpose of a firm?

उत्तर एक फर्म का प्रमुख उद्देश्य लाभ अधिकतमीकरण होना चाहिए।

TOUCH 'n' PASS

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. उत्पत्ति वृद्धि नियम से आप क्या समझते हैं? इसकी परिभाषा भी दीजिए।

What do you understand by Law of Increasing Returns? Also, give its definition.

उत्तर अर्थ—क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम उत्पादन के प्रतिफल की उस अवस्था की ओर संकेत करता है जबकि उत्पत्ति के साधनों की अतिरिक्त इकाइयों के प्रयोग से उत्पादन में, अनुपात से अधिक वृद्धि होती है। दूसरे शब्दों में, यदि उत्पादन में किसी एक साधन की मात्रा में वृद्धि करने से (अन्य साधनों के स्थिर रहने पर) अधिक अनुपात में वृद्धि होती है तो इसे क्रमागत **उत्पत्ति वृद्धि नियम** (Law of Increasing Returns) तथा **लागत ह्रास नियम** (Law of Diminishing Cost) कहते हैं।

उत्पत्ति वृद्धि नियम की परिभाषाएँ—इस नियम की प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं—

प्रो० मार्शल के अनुसार, "श्रम तथा पूँजी में वृद्धि करने से सामान्यत: संगठन व्यवस्था में सुधार आ जाता है जिससे श्रम और पूँजी की कार्यक्षमता में वृद्धि हो जाती है।"

प्रो० चैपमैन के अनुसार, "किसी उद्योग के विकास में जिनमें उचित साधनों का अभाव नहीं है, अन्य बातें समान रहने पर उत्पत्ति में वृद्धि हो जाती है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि उत्पादन के साधनों की कुशलता में वृद्धि होने से ही उत्पादन वृद्धि की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। **श्रीमती जॉन रॉबिन्सन** ने इस सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए लिखा है—"जब किसी कार्य के लिए उत्पत्ति के किसी साधन की अधिक मात्रा प्रयोग की जाती है तो प्राय: संगठन में सुधार करना सम्भव होता है, जो साधनों की इकाइयों को अधिक कार्यकुशल बना देता है और इसीलिए उत्पादन में वृद्धि करने के लिए साधनों की मात्रा को उसी अनुपात में बढ़ाना आवश्यक नहीं होता·····यह नियम या प्रवृत्ति उत्पत्ति ह्रास नियम की भाँति। उत्पत्ति के सभी साधनों के सम्बन्ध में समान रूप से लागू हो सकता है परन्तु उत्पत्ति ह्रास नियम के विपरित यह प्रत्येक दशा में लागू नहीं होता है। कभी-कभी साधनों में वृद्धि से कुशलता में सुधार होंगे और कभी नहीं भी होंगे।" **प्रो० मार्शल** एवं उनके सहयोगियों ने इस नियम की क्रियाशीलता को केवल निर्माण उद्योगों तक ही सीमित माना था, लेकिन आधुनिक अर्थशास्त्री इस नियम को कृषि, उद्योग तथा उत्पादन के सभी क्षेत्रों में क्रियाशील मानते हैं।

प्र.2. सीमान्त लाभ तथा वृद्धिगत लाभ को संक्षेप में समझाइए।

Explain Marginal Profit and Personal Profit in brief.

उत्तर सीमान्त लाभ—स्थायी आर्थिक परिस्थिति में लागू होने के कारण सीमान्त लाभ की धारणा अल्पकाल में ही उपयोगी होती है। साधारणत: इससे दिए हुए कौशल, मूल्य सीमाएँ, संयन्त्र का पैमाना तथा विभिन्न उत्पादनों में होने वाले परिवर्तनों के समायोजन के फलस्वरूप लाभ साधनों के बीच एक दिए हुए सम्बन्ध के अन्तर्गत लाभ में होने वाले परिवर्तनों तक ही सीमित रहता है। ये शर्त विद्यमान होने पर फर्म उस सीमा तक उत्पत्ति को समायोजित करेगी जहाँ शुद्ध लाभ शून्य के बराबर है।

वृद्धिगत लाभ—तकनीकी, वस्तु सम्मिश्रण तथा उत्पादन के पैमाने आदि में जब महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो जाते हैं तो यह विश्लेषण कुछ गतिशील पहलुओं को ले लेता है। अधिक वास्तविकता के कारण वृद्धिगत लाभ अर्थपूर्ण होते हैं। अत: जहाँ अनुकूलतम क्रियाएँ सीमान्त लाभ को शून्य (Zero) करने के लिए समायोजन करती हैं वहाँ अधिकतम लाभ वाली फर्म शून्य वृद्धि से सन्तुष्ट नहीं होगी। 'वृद्धिगत लाभ' का अर्थ नए प्रबन्ध की क्रिया से औसत आय में वृद्धि है। ऐसा नई वस्तु-शृंखला, वर्तमान वस्तु में विभेद, वितरण-मार्गों के विकास, आदि के कारण होता है। नई क्रिया प्रारम्भ होने के बाद फर्म नई स्थिति के अनुसार समायोजित होती है जिससे कि सीमान्त लाभ पुन: शून्य हो जाए, लेकिन इस नई क्रिया से लाभ का स्तर बदलता है। नए लाभ-स्तर तथा पुराने लाभ-स्तर के बीच का अन्तर 'वृद्धिगत लाभ' कहलाता है।

प्र.3. उत्पादन फलन का अर्थ एवं परिभाषा लिखिए।

Write the definition and meaning of Product Function.

उत्तर

उत्पादन फलन का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definition of Production Function)

उत्पादन फलन से अभिप्राय एक वस्तु के भौतिक साधनों तथा भौतिक उत्पादन के बीच पाए जाने वाले फलनात्मक सम्बन्ध से है। **प्रो० फर्गुसन** (Ferguson) के अनुसार, "उत्पादन के सिद्धान्त का अर्थ है कि एक उत्पादक निश्चित उत्पादन तकनीक के आधार पर उत्पादन की एक निश्चित मात्रा प्राप्त करने के लिए विभिन्न उत्पत्ति उपादानों (Inputs) का किस प्रकार

कुशलतापूर्वक संयोग करता है।'' उत्पादन विभिन्न उत्पत्ति के साधनों के सामूहिक प्रयत्नों का फल है। उत्पत्ति के चार आधारभूत साधना—भूमि, पूँजी, श्रम एवं साहस—परस्पर विभिन्न अनुपात में एकत्रित एवं कार्यशील होकर एक निश्चित उत्पादन देते हैं। **प्रो० लेफ्टविच** के शब्दों में, ''उत्पादन फलन का अभिप्राय फर्म के उत्पत्ति साधनों और प्रति समय इकाई वस्तुओं और सेवाओं के बीच का भौतिक सम्बन्ध है जबकि मूल्यों को छोड़ दिया जाए।''

दूसरे शब्दों में, ''एक उत्पादन फलन एक दिए गए समय के लिए उत्पत्ति के साधनों एवं उनके द्वारा उत्पादित उत्पादन की मात्रा के भौतिक सम्बन्ध को बताता है।''

गणितीय रूप में $X = f(A, B, C, D)$

जहाँ X फर्म के उत्पादन को तथा A, B, C तथा D विभिन्न उत्पत्ति के साधनों को प्रदर्शित कर रहे हैं।

इस प्रकार उत्पादन फलन एक आर्थिक नहीं वरन् तकनीकी समस्या है। किसी फर्म का उत्पादन फलन उत्पादन तकनीक (Tecnique of Production) पर आधारित होता है। एक फर्म उस उत्पादन तकनीक का चुनाव करेगी जिसकी सहायता से वह अपने पास उपलब्ध उत्पत्ति के साधनों का पूर्ण विदोहन (Optimum Utilisation) करते हुए अपने उत्पादन को अधिकतम कर सके। उत्पादन तकनीक का सुधार निश्चित रूप से उत्पादन में वृद्धि करेगा। इस प्रकार सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि ''उत्पादन फलन एक ऐसी सारणी पर आधारित है जो दी गई उत्पादन तकनीक के अन्तर्गत उत्पत्ति साधनों को एक निश्चित संयोग द्वारा प्रयोग करके प्राप्त होने वाले अधिकतम उत्पादन को प्रदर्शित करती है।''

उत्पादन फलन में यदि स्थिर तथा दी गई तकनीक को सम्मिलित कर लिया जाए, तब

$$X = f[A, B, C, D, \overline{T}]$$

जहाँ $\overline{T}$ उपलब्ध तकनीक का सूचक है।

प्र.4. उत्पादन फलन के रूप तथा विशेषताएँ लिखिए।

Write forms and features of Production Function.

उत्तर

उत्पादन फलन के रूप
(Types of Production Function)

1. **स्थिर या निश्चित अनुपात अथवा अल्पकालीन उत्पादन फलन**—जब उत्पादन के कुल साधनों की मात्रा को स्थिर रखते हुए, अन्य परिवर्तनशील साधनों की मात्रा में वृद्धि की जाती है तो वह 'स्थिर अनुपात वाला उत्पादन फलन' कहलाता है। इसे 'अल्पकालीन उत्पादन फलन' भी कहा जाता है, क्योंकि अल्पकाल में उत्पादन के सभी साधनों को बढ़ाना या घटाना सम्भव नहीं होता जबकि परिवर्तनशील साधनों की मात्रा को आवश्यकतानुसार घटाया-बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार का उत्पादन फलन 'परिवर्तनशील अनुपातों के नियमों' का विषय है।
2. **परिवर्तनशील अनुपात अथवा दीर्घकालीन उत्पादन फलन**—जब उत्पादन के सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं अर्थात् जब किसी साधन को स्थिर न रखकर सभी साधनों की मात्रा में वृद्धि की जाती है तो वह 'परिवर्तनशील साधनों वाला उत्पादन फलन' कहलाता है। यह उत्पादन फलन दीर्घकालीन होता है क्योंकि दीर्घकाल में उत्पादन के साधनों को आवश्यकता के अनुसार परिवर्तित किया जा सकता है। यह उत्पादन फलन पैमाने के प्रतिफल का विषय है।

उत्पादन फलन की विशेषताएँ (Features of Production Function)

उत्पादन फलन की मुख्य विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

1. उत्पादन फलन साधनों की भौतिक मात्रा एवं उत्पादन की भौतिक मात्रा के सम्बन्ध को दर्शाता है।
2. एक उत्पादन फलन दी गई तकनीकी ज्ञान के सन्दर्भ में परिभाषित किया जाता है।
3. उत्पादन फलन उत्पादित वस्तु की कीमत और साधनों की कीमतों से पूर्णरूप से स्वतन्त्र होते हैं।
4. कोई उत्पादन फलन एक दिए हुए समय या प्रति इकाई समय के सन्दर्भ में होता है।
5. साधनों की स्थिरता तथा परिवर्तनशीलता के आधार पर उत्पादन फलन को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—**प्रथम**, वे उत्पादन फलन जिनमें कुछ साधनों की मात्राएँ स्थिर रहती हैं और कुछ की परिवर्तनशील। **द्वितीय**, वे उत्पादन फलन जिनमें सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं।

6. परिवर्तनशील अनुपातों के नियम उत्पादन फलन की एक अवस्था होती है।
7. ऐसे उत्पादन फलन जिनमें सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं, को दीर्घकालीन उत्पादन फलन कहा जाता है।

जब साधनों को एक ही अनुपात में बढ़ाया जाता है तो प्राप्त होने वाली उत्पादन की मात्रा की तीन अवस्थाएँ होती हैं—(i) पैमाने के बढ़ते उत्पादन की अवस्था, (ii) पैमाने के स्थिर उत्पादन की अवस्था तथा (iii) पैमाने के घटते उत्पादन की अवस्था।

प्र.5. उत्पादन का अल्पकालीन सिद्धान्त अथवा परिवर्तनशील अनुपातों का नियम लिखिए।

Write Short-Run Production Function or Law of Variable Proportions.

उत्तर उत्पादन का अल्पकालीन सिद्धान्त अथवा परिवर्तनशील अनुपातों का नियम (Short-Run Production Function or Law of Variable Proportions)

अल्पकाल का अभिप्राय उस समयावधि से है जिसमें उत्पत्ति के समस्त साधनों को परिवर्तित नहीं किया जा सकता। अल्पकाल में सूक्ष्म समयावधि के कारण जिन उत्पत्ति के साधनों को परिवर्तित नहीं किया जा सकता उन्हें स्थिर साधन (fixed factors) कहा जाता है। अल्पकाल में कुछ उत्पत्ति के साधन परिवर्तनशील हैं। मुख्यत: पूँजी, पूँजीगत उपकरण, भूमि, उत्पादन तकनीक आदि अल्पकाल में स्थिर हैं जबकि श्रम की ईकाइयाँ परिवर्तनीय हो सकती हैं। अल्पकाल में उत्पादन के संयन्त्र अथवा प्लाण्ट का आकार (Size of the plant) अपरिवर्तित रहता है। इस प्रकार अल्पकालीन उत्पादन फलन में कुछ उत्पत्ति के साधन स्थिर होते हैं तथा कुछ परिवर्तनीय। परिवर्तनशील साधनों में परिवर्तन करके उत्पादन स्तर में परिवर्तन किया जा सकता है। अल्पकालीन उत्पादन फलन को परिवर्तनशील अनुपात नियम कहते हैं।

अल्पकाल में जब एक फर्म उत्पत्ति के कुछ साधनों को स्थिर रखकर अन्य साधनों की मात्रा में परिवर्तन करती है तब उत्पादन की मात्रा में जो परिवर्तन होते हैं उन्हें 'उत्पत्ति के नियम' (Law of returns) के नाम से जाना जाता है।

अल्पकालीन उत्पादन फलन की तीन अवस्थाएँ होती हैं जिन्हें उत्पत्ति के तीन नियमों के रूप में जाना जाता है—

1. उत्पत्ति वृद्धि नियम (Law of Increasing Returns)
2. उत्पत्ति समता नियम (Law of Constant Returns)
3. उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Returns)।

प्र.6. परिवर्तन अनुपात नियम लागू होने के प्रमुख कारणों पर प्रकाश डालिए।

Throw light on the main causes for the application of Law of Variable Proportion.

उत्तर आधुनिक अर्थशास्त्री उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने के निम्न कारण मानते हैं—

1. **एक या एक से अधिक साधनों का स्थिर होना**—जब अन्य साधनों की मात्रा को स्थिर रखते हुए एक साधन (माना श्रम) की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि की जाती है तो परिवर्तनशील साधन श्रम का स्थिर साधनों के साथ अनुपात परिवर्तित होता चला जाता है। दूसरे शब्दों में, बढ़ती हुई श्रम मात्रा को स्थिर साधनों की ओर कम मात्रा के साथ काम करना पड़ता है। ऐसी दशा में श्रम की उत्पादकता कम होती चली जाती है और उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जाता है।
2. **साधनों की अविभाज्यता**—उत्पत्ति के अधिकांश साधन अविभाज्य होते हैं। ये अविभाज्य साधन अनुकूलतम बिन्दु की प्राप्ति तक तो उत्पादकता को बढ़ाते हैं किन्तु जब अनुकूलतम बिन्दु की प्राप्ति के बाद भी साधनों का निरन्तर उपयोग जारी रहता है तब साधन की उत्पादकता घटने लगती है और उत्पत्ति ह्रास-नियम लागू हो जाता है।
3. **उत्पत्ति के साधनों का पूर्ण स्थानापन्न न होना—श्रीमती जॉन रॉबिन्सन** साधनों की अपूर्ण स्थानापन्नता को उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता का मुख्य कारण मानती हैं। उनके अनुसार उत्पादकता प्रक्रिया में एक साधन को दूसरे साधन के स्थान पर केवल एक सीमा तक ही प्रतिस्थापित किया जा सकता है। उनके अनुसार उत्पत्ति के विभिन्न साधन परस्पर अपूर्ण स्थानापन्न होते हैं जिसके कारण सीमित साधन की कमी को किसी अन्य साधन से पूरा नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, साधनों की स्थानापन्नता की लोच अनन्त नहीं होती जिसके कारण घटते प्रतिफल उत्पन्न होते हैं।
4. **साधनों की सीमितता**—कुछ उत्पत्ति के साधनों की पूर्ति स्थिर एवं सीमित होती है जैसे भूमि। अत: जब एक उत्पादन किसी साधन की पूर्ति को नहीं बढ़ा पाता तो उसे उस साधन की सीमित मात्रा से ही काम चलाना पड़ता है। परिणामस्वरूप सीमित साधन का अन्य परिवर्तनशील साधनों से प्रयोग अनुपात में बदल जाता है और उत्पत्ति ह्रास नियम क्रियाशील हो जाता है।

प्र.7. तकनीक के चुनाव के विभिन्न घटकों पर प्रकाश डालिए।
Throw light on different components of the choice of techniques.

उत्तर

तकनीक के चुनाव के घटक
(Considerations of Choice of Techniques)

तकनीक के चुनाव का निर्णय करते समय निम्नांकित घटकों को ध्यान में रखना आवश्यक होता है—

1. **संस्थागत व्यवस्था**—किसी भी राष्ट्र के प्राविधिक स्तर को निश्चित करते समय आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक व जनता के व्यवहार एवं दृष्टिकोण को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। देश की सामाजिक पद्धति भी बदलती हुई तकनीक के साथ समायोजित होनी चाहिए।
2. **साधनों की उपलब्धता**—किसी भी देश में तकनीक का चुनाव वहाँ के साधनों की उपलब्धता पर निर्भर करता है। प्राय: यह देखा गया है कि साधनों की उपलब्धि, संगठन, उत्पादन की मात्रा एवं तकनीक को निर्धारित करती है। छोटे उद्योगों के सम्बन्ध में, निम्न लागत, उच्च उत्पादकता उपस्कर तथा मशीनें उन्नत देशों से आयात की जा सकती हैं तथा देशीय कुशलता व कच्चे माल से देश के भीतर ही अनेक उत्पाद तैयार किए जा सकते हैं। पूँजी विकास के साधनों में प्रमुख स्थान रखती है। वास्तव में जो तकनीक जितनी ही अधिक पूँजी-प्रधान होती है वह उतनी अधिक विकसित मानी जाती है, परन्तु पूँजी ही अकेली तकनीक में विकास नहीं कर सकती। इसके लिए संगठन, कुशलता एवं अन्य साधनों का सहयोग प्राप्त होना आवश्यक है। अर्द्ध-विकसित राष्ट्र में पूँजी एवं अन्य साधनों का अभाव पाया जाता है जिससे तकनीक स्तर को प्राप्त करने की प्रक्रिया की गति धीमी रहती है। अत: अर्द्ध-विकसित राष्ट्रों के नियोजित विकास के लिए यह आवश्यक है कि वे विकास की आरम्भिक दशा में श्रम-प्रधान तकनीक का चयन करें तथा विकसित राष्ट्रों की तकनीक को एक साथ न अपना कर शनै:-शनै: अपनाएँ।
3. **पूर्व प्राविधिक स्तर**—प्रत्येक विकसित या अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्था में कुछ न कुछ पूर्व प्राप्त प्राविधिक स्तर अवश्य रहता है जो देश की परिस्थितियों, रीति-रिवाज, तकनीकी-ज्ञान, प्रशिक्षण सुविधाओं, आदि पर निर्भर रहता है। अत: तकनीकी विकास कार्यक्रम को निर्धारित करते समय पूर्व प्राविधिक स्तर को ध्यान में रखा जाता है तथा इन्हीं को आधार मानकर नवीन प्राविधिक विधियों का विकास किया जाता है।
4. **वर्तमान साधन घटक**—किसी भी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में घटकों का अनुपात उनकी वर्तमान तकनीक से प्रभावित होता है। प्राविधिक परिवर्तन घटकों में गुणात्मक और संख्यात्मक परिवर्तन के बिना सम्भव नहीं है, परन्तु यह एक धीमी प्रक्रिया है और यही आर्थिक विकास का मुख्य उद्देश्य होता है। अत: किसी तकनीक के चुनाव में परिवर्तन लाने के लिए वर्तमान तकनीक को आधार मानकर काम करना उचित समझा जाता है।

प्र.8. उपयुक्त प्रौद्योगिकी एवं रोजगार पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
Write a brief note on appropriate technology and employment.

उत्तर

उपयुक्त प्रौद्योगिकी एवं रोजगार
(Appropriate Technology and Employment)

श्रम प्रधान एवं पूँजी प्रधान प्रौद्योगिकी के पक्ष एवं विपक्ष में दिए जाने वाले तर्कों के परिप्रेक्ष्य में यह निर्धारित करना आवश्यक हो जाता है कि कौन-सी तकनीक अपनाई जाय जो देश के आर्थिक विकास को गति प्रदान करने के साथ-ही-साथ रोजगार के पर्याप्त अवसर भी सुलभ कराए। श्रम-प्रधान तकनीक जहाँ रोजगार के अवसरों में वृद्धिकर देश में उपलब्ध श्रमशक्ति को सोखने में सहायता करती है वहीं दूसरी ओर पूँजी प्रधान तकनीक देश के औद्योगिक विकास के स्तर को ऊँचा उठाकर आर्थिक विकास की गति को तीव्र करती है। इस तरह दोनों ही तकनीके अपने-अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें से किसी भी एक को छोड़ा नहीं जा सकता। इस सम्बन्ध में **नर्कसे** का मत है कि "औद्योगिक विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में अल्पविकसित देशों को उत्पादन की श्रम गहन तकनीकें ही अपनानी चाहिए।"

इसी तरह समस्या का समाधान प्रस्तुत करते हुए **लुईस** ने कहा है कि "निर्धन राष्ट्रों द्वारा पूँजी प्रधान उद्योगों को अवश्य अपनाया जाना चाहिए बशर्ते कि देश में प्राकृतिक स्रोत वांछित मात्रा में उपलब्ध हों अथवा अन्य तुलनात्मक लाभ-युक्त स्थितियां विद्यमान हों जिनके उपयोग के लिए गहन पूँजी की आवश्यकता होती है। हाँ! अल्पविकसित देशों की तकनीक, सामान्यतया विकसित देशों की तकनीक की अपेक्षा कम पूँजी प्रधान होनी चाहिए अर्थात् लघु उद्योग बड़े पैमाने के उद्योगों के पूरक के रूप में विकसित किए जाने चाहिए।"

वास्तव में, अर्धविकसित एवं विकासशील देशों में उपयुक्त प्रौद्योगिकी के चुनाव से अधिक महत्त्वपूर्ण है उसका उचित ढंग से संचालन एवं लागू करना। ऐसे देशों में श्रम आधारित तकनीक का प्रयोग कृषि, लघु एवं कुटीर उद्योग-धन्धों, कृषि से सम्बद्ध धन्धों यथा—मत्स्य पालन, रस्सी बनाना, रूई धुनना, हस्तशिल्प से खिलौने बनाना, गलीचे एवं दरियाँ बनाना, कृषि यन्त्र एवं फर्नीचर आदि में किया जाना चाहिए। ऐसे कार्यों के लिए आयातित तकनीक की आवश्यकता नहीं होती। इसके विपरीत, भारी उद्योगों में पूँजी प्रधान तकनीक का प्रयोग किया जाना चाहिए जहाँ भारी पूँजी निवेश के साथ-साथ उन्नत प्रौद्योगिकी की आवश्यकता होती है।

प्र.9. सम लागत रेखा को चित्र की सहायता से समझाइए।
Explain Iso-Cost Line with a diagram.

उत्तर

सम लागत रेखा (अथवा साधन कीमत रेखा)
[Iso-Cost Line or (Factor Price Line)]

एक दी हुई सम लागत रेखा एक दिए गए लागत-व्यय (Cost-outlay) के अन्तर्गत उपलब्ध दो उत्पत्ति साधनों के विभिन्न संयोगों को बताती है।

चित्र में RS, R_1S_1 तथा R_2S_2 उत्पादक के तीन लागत व्ययों (Cost outlays) को स्पष्ट करती है। RS लागत व्यय ₹ 200 को बताती है। यदि साधन X की प्रति इकाई कीमत P_x है तो उत्पादक साधन X की अधिकतम $\frac{200}{P_x}$ अर्थात् OS ईकाइयाँ खरीद सकेगा। इसी लागत व्यय ₹ 200 होने पर यदि साधन Y की प्रति इकाई कीमत P_y होने की दशा में वह साधन Y की होने की दशा में वह साधन Y की अधिकतम $\frac{200}{P_y}$ अर्थात् OR ईकाइयाँ खरीद सकेगा।

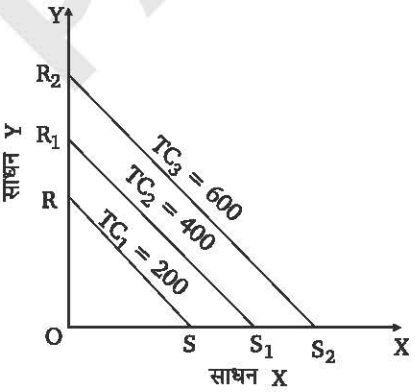

चित्र : सम लागत रेखाएँ

इस प्रकार उत्पादक के पास बिन्दु R तथा S के रूप में दो उच्चतम साधन उपलब्धताएं हैं। यदि इन दोनों बिन्दुओं को मिला दिया जाए तो रेखा RS के रूप में हमें साधन कीमत रेखा अथवा सम लागत रेखा प्राप्त होती है। यदि साधन X तथा साधन Y की कीमतें P_x तथा P_y स्थिर रहे तो लागत व्यय ₹ 400 हो जाने पर साधन कीमत रेखा R_1S_1 तथा लागत व्यय ₹ 600 हो जाने पर साधन कीमत रेखा R_2S_2 हो जाती है। यह सभी साधन कीमत रेखाएं परस्पर समानान्तर होंगी क्योंकि साधनों की कीमत स्थिर रहते हुए लागत व्यय में परिवर्तन हो रहा है। लागत व्यय जितना अधिक होगा, साधन कीमत रेखा उतनी ही ऊँची होगी अर्थात् साधन कीमत रेखा साधन कीमत स्थिर रहने पर लागत व्यय में वृद्धि के साथ मूल बिन्दु से दूर होती जाएगी (समानान्तर रूप से) तथा लागत व्यय में कमी होने पर समानान्तर रूप से मूल बिन्दु की ओर स्थानान्तरित होती जाएगी। दूसरे शब्दों में, साधन कीमत-स्थिर रहने पर लागत व्यय का परिवर्तन, साधन-कीमत रेखा के ढाल (Slope) में कोई परिवर्तन नहीं करता।

साधन कीमत रेखा RS का ढाल = Tangent of $(180 - \angle OSR)$

$$= - \text{Tangent of } \angle OSR$$

(यदि RS रेखा का कुल लागत व्यय TC_1 है तब $OS = \frac{TC_1}{P_x}$ तथा $OR = \frac{TC_1}{P_y}$)

$$= - \frac{OR}{OS} = - \frac{TC_1 / P_y}{TC_1 / P_x}$$

साधन कीमत रेखा का ढाल $= \frac{P_x}{P_y}$ (ऋणात्मक चिह्न केवल घटते-ढाल का सूचक है अत: हटाया जा सकता है।)

इस प्रकार, साधन कीमत रेखा का ढाल उत्पत्ति साधनों की कीमतों के अनुपात को बताता है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.10. दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र पर संक्षिप्त लेख लिखिए।

Write a short note on Long-Run Marginal Cost Curve.

उत्तर

दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र
(Long-Run Marginal Cost Curve)

दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र की व्युत्पत्ति दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की सहायता से की जा सकती है। जो सम्बन्ध अल्पकालीन सीमान्त लागत एवं अल्पकालीन औसत लागत के मध्य पाया जाता है ठीक वही सम्बन्ध दीर्घकालीन सीमान्त लागत एवं दीर्घकालीन औसत लागत के मध्य भी उपस्थित होता है। चित्र में इस सम्बन्ध को दर्शाया गया है। जहाँ कहीं भी *SAC* वक्र *LAC* वक्र को स्पर्श करता है वहाँ उससे सम्बन्धित क्रमशः *SMC* तथा *LMC* परस्पर बराबर होते हैं। जब तक *LAC* वक्र नीचे गिर रहा होता है तब तक *SMC* तथा *LMC* की यह समानता *SAC* तथा *LAC* वक्रों के स्पर्श बिन्दु से नीचे होती है (देखें बिन्दु *K* तथा *T*)। प्लाण्ट के अनुकूलतम आकार (Optimum Scale of Plant) पर, जहाँ *LAC* तथा *SAC* दोनों अपने न्यूनतम बिन्दुओं पर परस्पर स्पर्श करते हैं, वहाँ *LMC* तथा *SMC* परस्पर इस प्रकार बराबर होती है कि *LMC* = *SMC* = *LAC* = *SAC* (देखें बिन्दु *Q*)। प्लाण्ट इस न्यूनतम आकार बिन्दु के बाद *SMC* तथा *LMC* की समानता का बिन्दु *SAC* और *LAC* के स्पर्श बिन्दु से ऊपर स्थित होता है (देखें बिन्दु *R* तथा *S*)। इस प्रकार *LAC* तथा *LMC* में वही सम्बन्ध पाया जाता है जो *SAC* तथा *SMC* में अर्थात्,

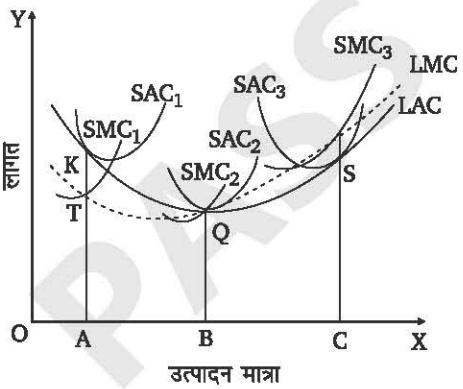

चित्र : दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र की व्युत्पत्ति

(i) यदि *LAC* > *LMC* तब *LAC* नीचे गिरेगा।

(ii) यदि *LAC* = *LMC* तब *LAC* स्थिर रहेगा।

दूसरे शब्दों में, *LMC* वक्र *LAC* वक्र को उसके न्यूनतम बिन्दु पर काटता है तथा

(iii) यदि *LMC* > *LAC* तब *LAC* ऊपर की ओर बढ़ता हुआ होगा।

प्र.11. कीमत विश्लेषण में आगम अवधारणाओं का क्या महत्त्व है?

What is the importance of Concepts of Revenue in Price Analysis?

उत्तर

कीमत विश्लेषण में आगम अवधारणाओं का महत्त्व
(Importance of Concepts of Revenue in Price Analysis)

कीमत विश्लेषण में आगम अवधारणाओं के महत्त्व को लागत की धारणाओं से अलग बताना कठिन होगा। लागत का सन्दर्भ लेते हुए आगम अवधारणाओं का महत्त्व मुख्यतः निम्न प्रकार है—

1. **सन्तुलन मात्रा का निर्धारण**—बाजार का चाहे कोई भी रूप क्यों न हो, सन्तुलन मात्रा का निर्धारण वहाँ होता है जहाँ अतिरिक्त इकाई से प्राप्त राशि (*MR*) उस अतिरिक्त इकाई की लागत (*MC*) के बराबर (*MR* = *MC*) हो।
2. **कीमत का निर्धारण**—एकाधिकार एवं अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं में फर्म ही स्वयं कीमत का निर्धारण करती है। कीमत का यह निर्धारण सन्तुलन मात्रा के अनुरूप *AR* बना है अर्थात् वह मात्रा जिस कीमत पर बेची जा सकती है वही होगा।
3. **लाभ-हानि का अनुमान**—जब औसत आगम (*AR*), औसत लागत (*AC*) से अधिक (*AR* > *AC*) होती है तो फर्म को असामान्य लाभ (Super Normal Profit) होता है। *AR* = *AC* होने पर सामान्य लाभ (Normal Profit) तथा *AR* < *AC* होने पर हानि (loss) होती है।
4. **कीमत परिवर्तन का प्रभाव**—कुल आगम (*TR*) में वृद्धि या कमी तथा उनकी मात्रा के आधार पर यह देखा जा सकता है कि कीमत परिवर्तन का फर्म की लाभदायकता पर क्या प्रभाव पड़ा है।

TOUCH 'n PASS

प्र.12. किसी फर्म के लिए पूर्ण प्रतियोगिता में अल्पकालीन पूर्ति वक्र का निर्माण करते हुए उसे समझाइए।
In case of a firm, make a Short-Run Supply Curve under Perfect competition and explain it.

उत्तर

पूर्ण प्रतियोगिता में अल्पकालीन पूर्ति वक्र : फर्म के लिए
(Short-run Supply Curve under Perfect Competition : Case of a Firm)

पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म-उद्योग संबंध के अनुसार फर्म उद्योग से कीमत प्राप्त करती है। उद्योग में माँग एवं पूर्ति दशाओं के आधार पर वस्तु मूल्य निर्धारित होता है तथा प्रत्येक दशाओं के आधार पर वस्तु मूल्य निर्धारित होता है तथा प्रत्येक फर्म उसे दिया हुआ मान लेती हैं। पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म दी गयी कीमतों पर विभिन्न उत्पत्ति मात्राएं उत्पादित करेंगी और बेचेंगी। फर्म के लिए पूर्ण प्रतियोगिता में अल्पकालीन पूर्ति वक्र प्राप्त करने की क्रिया को चित्र में दिखाया गया है। उद्योग से प्राप्त OP_1 कीमत पर फर्म का सन्तुलन बिन्दु T है तथा फर्म औसत परिवर्तनशील लागत से अधिक प्राप्त कर रही है। अत: अल्पकाल में वह OQ_2 उत्पादन करती रहेगी। OP_2 कीमत पर भी फर्म AVC से अधिक प्राप्त कर रही है। फलत: फर्म OQ_1 का उत्पादन करती रहेगी। OP_3 कीमत पर फर्म अपनी AVC के बराबर ही वस्तु मूल्य प्राप्त कर रही है अत: तटस्थ रहेगी। किन्तु जैसे ही वस्तु कीमत OP_3 से कम होती है, फर्म अल्पकाल में उत्पादन करना पूर्णत: बन्द कर देगी। यही कारण है कि OP_3 कीमत से नीचे सीमान्त लागत वक्र (जो फर्म का पूर्ति वक्र भी होता) टूटा हुआ दिखाया गया है। इस प्रकार, सीमान्त लागत वक्र का वह भाग जो अल्पकालीन औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) से ऊपर होता है, फर्म का अल्पकालीन पूर्ति वक्र कहलाता है। साथ ही साथ यह भी स्पष्ट है कि फर्म का अल्पकालीन पूर्ति वक्र सदैव बायें से दायें ऊपर चढ़ता हुआ होता है।

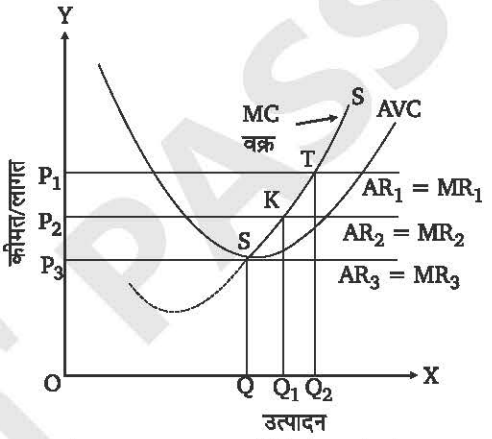

चित्र : अल्पकालीन पूर्ति रेखा का निर्माण

प्र.13. पैमाने के वृद्धिमान प्रतिफल की ओर ले जाने वाले कारक कौन-से हैं? व्याख्या कीजिए। (2021)
What are the factors that lead to increasing returns of scale? Describe.

उत्तर पैमाने के वृद्धिमान प्रतिफल की ओर ले जाने वाले कारक निम्नलिखित हैं—

1. **साधनों की अविभाज्यताएँ** (Indivisibility of Factors)—कुछ उत्पत्ति के साधन निश्चित आकार के होते हैं जिसके कारण उनको विभाजित करके प्रयोग नहीं किया जा सकता। साधनों की अविभाज्यता के कारण प्रारम्भ में इन साधनों का पूर्ण विदोहन (Optimum Utilisation) सम्भव नहीं हो पाता। पैमाने के वृद्धि होने पर इन अविभाज्य साधनों का पूर्ण प्रयोग होने से पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल प्राप्त होते हैं।
2. **श्रम-विभाजन** (Division of Labour)—**प्रो० चैम्बरलिन** श्रम-विभाजन को वर्द्धमान प्रतिफल का मुख्य कारण मानते हैं। श्रम-विभाजन से कार्यक्षमता में वृद्धि होती है जिसके कारण पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल प्राप्त होते हैं।
3. **विशिष्टीकरण** (Specialisation)—श्रम-विभाजन विशिष्टीकरण को जन्म देता है जिससे अधिक क्षमता वाले विशिष्ट साधन प्रयोग में लाए जा सकते हैं। फलत: उत्पादन में वृद्धि होती है और पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल मिलते हैं।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. विभिन्न परिभाषाएँ देते हुए उत्पादन का अर्थ लिखिए तथा उपयोगिता सृजन की विधियाँ लिखिए। उत्पादन कार्य की लाभप्रदता पर भी संक्षिप्त लेख लिखिए।
Give different definitions of Production to make clear its meaning and write methods of Utilities Generation. Also, write a short note on Work Advantageous.

TOUCH 'n' PASS

उत्तर

उत्पादन का अर्थ एवं परिभाषाएँ
(Meaning and Definitions of Production)

साधारण रूप में उत्पादन का अर्थ किसी भौतिक वस्तु के निर्माण से होता है; उदाहरणार्थ, कृषकों द्वारा गेहूँ, धान आदि अनाज पैदा करना तथा कारखानों में श्रमिकों द्वारा कपड़ा, चूड़ी अथवा अन्य औद्योगिक वस्तुओं का निर्माण करना, उत्पादन कहलाता है। किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्य न तो किसी वस्तु का निर्माण ही कर सकता है और न ही किसी वस्तु को नष्ट कर सकता है। वह तो प्रकृति प्रदत्त पदार्थों को केवल आवश्यकतानुसार उपयोगी बना सकता है अर्थात्, वह वस्तु में उपयोगिता का सृजन कर सकता है। **मार्शल** के शब्दों में, "मनुष्य पदार्थ उत्पन्न नहीं कर सकता, वह केवल उसके अन्दर विद्यमान उपयोगिता का सृजन कर सकता है।" अत: किसी वस्तु में उपयोगिता का सृजन अथवा वृद्धि ही उत्पादन है।

उत्पादन से सम्बन्धित कुछ मुख्य परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं—

ए०जे० ब्राउन के शब्दों में, "उत्पादन उन सभी क्रियाओं तथा सेवाओं का द्योतक है, जोकि किसी भी आवश्यकता को सन्तुष्ट करती हैं या करने की आशा से की जाती हैं।"

प्रो० एली के शब्दों में, "आर्थिक उपयोगिता का सृजन ही उत्पादन है।"

एच० स्मिथ के शब्दों में, "उत्पादन वह प्रक्रिया है, जिससे वस्तुओं में उपयोगिता का सृजन होता है।"

थॉमस के शब्दों में, "वस्तु के मूल्य में वृद्धि करना ही उत्पादन है।"

फेयरचाइल्ड के शब्दों में, "धन में उपयोगिता का सृजन करना ही उत्पादन कहलाता है।"

फ्रेजर के शब्दों में, "यदि उपभोग से तात्पर्य किसी वस्तु से उपयोगिता प्राप्त करना है तो उत्पादन से तात्पर्य उसमें उपयोगिता का सृजन करना है।"

संक्षेप में, उत्पादन से आशय उपयोगिता को पैदा करना अथवा उपयोगिता में वृद्धि करना है। **फ्रेजर** के अनुसार, "यदि उपभोग का अर्थ उपयोगिता निकाल लेना या नष्ट कर देना है तो उत्पादन का अर्थ उपयोगिता भर देना या उपयोगिता का निर्माण कर देना है।"

उत्पादन अथवा उपयोगिता सृजन की विधियाँ
(Production or Utilities Generation Methods)

उत्पादन अथवा उपयोगिता सृजन की प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित हैं—

1. **स्वरूप में परिवर्तन द्वारा उत्पादन**—जब किसी वस्तु या पदार्थ का रूप एवं आकार बदलकर उसे पहले की अपेक्षा और अधिक उपयोगी बना दिया जाता है, तब उसे 'रूप परिवर्तन द्वारा' उत्पादन करना अथवा उपयोगिता में वृद्धि करना कहते हैं; उदाहरणार्थ—बढ़ई द्वारा लकड़ी के टुकड़े से मेज का निर्माण करना उत्पादन क्रिया होती है।
2. **स्थान परिवर्तन द्वारा उत्पादन**—जब किसी वस्तु को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजकर उसकी उपयोगिता में वृद्धि कर दी जाती है तो इसे 'स्थान परिवर्तन द्वारा उत्पादन' अथवा 'उपयोगिता सृजन' कहते हैं; उदाहरणार्थ—जंगल से लकड़ी लाकर शहर में बेचना तथा खान से कोयला निकालकर उपभोक्ताओं तक पहुँचाना 'स्थान परिवर्तन द्वारा उत्पादन' के उदाहरण हैं।
3. **समय परिवर्तन द्वारा उत्पादन**—कुछ ऐसी वस्तुएँ भी होती हैं, जिनकी उपयोगिता में कुछ समय अवधि के पश्चात् वृद्धि हो जाती है; उदाहरणार्थ—नये चावलों की तुलना में पुराने चावलों की उपयोगिता अधिक होती है। इसी प्रकार पुराने आसव नये आसवों से श्रेष्ठ होते हैं।
4. **अधिकार परिवर्तन द्वारा उत्पादन**—किसी वस्तु के 'अधिकार' या 'स्वामित्व' में परिवर्तन करने से भी उपयोगिता में वृद्धि हो जाती है; उदाहरणार्थ—पुस्तकें पुस्तक-विक्रेता से विद्यार्थियों के अधिकार में आने पर अधिक उपयोगी हो जाती हैं।
5. **सेवा द्वारा उत्पादन**—मनुष्य की अनेक आवश्यकताएँ किसी वस्तु से सन्तुष्ट न होकर किसी मनुष्य की शारीरिक या मानसिक सेवाओं से सन्तुष्ट होती हैं। इस प्रकार की सेवाएँ उत्पादन के अन्तर्गत शामिल की जाती हैं; जैसे—नर्तक, गायक, वकील, अध्यापक, अभिनेता आदि अपनी सेवा द्वारा उपयोगिता का सृजन करते हैं।
6. **ज्ञान द्वारा उत्पादन**—जब किसी वस्तु अथवा पदार्थ के विषय में अधिक ज्ञान प्राप्त हो जाने से भी उसकी उपयोगिता में वृद्धि होती है तो उसको ज्ञान द्वारा प्राप्त उपयोगिता कहते हैं। विभिन्न वस्तुओं के विभिन्न उपयोगों का ज्ञान होने पर ये वस्तुएँ और अधिक उपयोगी हो जाती हैं।

उत्पादन कार्य की लाभप्रदता
(Work Advantageous)

कोई भी विवेकशील उत्पादक हमेशा द्वितीय अवस्था या घटते प्रतिफल की दशा में उत्पादन कार्य करना अधिक पसन्द करेगा। प्रथम अवस्था या बढ़ते प्रतिफल की अवस्था में जब परिवर्तनशील साधन की मात्रा को बढ़ाया जाता है तब कुल उत्पादकता में वृद्धि होती है क्योंकि अविभाज्य स्थिर साधनों का पूर्ण विदोहन हो पाता है। प्रथम अवस्था में ही यदि उत्पादक उत्पादन कार्य रोक देता है तो इससे आशय है कि वह उस अतिरिक्त लाभ से वंचित है जिसे वह परिवर्तनशील साधन की अतिरिक्त इकाइयाँ उत्पादन क्षेत्र में लगाकर प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार उत्पादक के लिए लाभप्रद यह है कि वह परिवर्तनशील साधन की इकाइयों को उत्पादन क्षेत्र में तब तक बढ़ाता जाए जब तक उसे कुल उत्पादकता में तीव्र वृद्धि प्राप्त होती है। एक विवेकशील उत्पादक इस प्रकार परिवर्तनशील साधन की *ON* इकाइयों से कम का प्रयोग नहीं करेगा। परिवर्तनशील साधन की *OS* इकाई पर साधन की सीमान्त उत्पादकता शून्य तथा इसके बाद साधन की सीमान्त उत्पादकता ऋणात्मक हो जाती है जिसका अर्थ है कि इस तृतीय अवस्था या ऋणात्मक प्रतिफल की अवस्था में उत्पादक के लाभ में कमी होगी। अत: उत्पादक परिवर्तनशील साधन की *OS* इकाई से अधिक प्रयोग नहीं करेगा। केवल द्वितीय अवस्था—साधन की *ON* मात्रा से अधिक किन्तु *OS* मात्रा से कम—ही उत्पादन को सम्भव एवं लाभदायक बनाती है। द्वितीय अवस्था में साधन की सीमान्त उत्पादकता घट तो रही है लेकिन धनात्मक है जो कुल उत्पादकता में कुछ-न-कुछ वृद्धि अवश्य करेगी। घटती सीमान्त उत्पादकता उत्पादन के लिए खतरे की सूचना अवश्य देती है क्योंकि घटती सीमान्त उत्पादकता शून्य तक पहुँच कर उसके पश्चात् ऋणात्मक भी हो जाती है। उत्पादक तीसरी अवस्था के प्रारम्भ होने से पूर्व ही अपने उत्पादन स्तर को नियन्त्रित करता है। इस प्रकार द्वितीय अवस्था ही उत्पादन कार्य योग्य है।

प्र.2. परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की व्यावहारिकता पर प्रकाश डालते हुए घटते प्रतिफल के नियम का महत्त्व लिखिए तथा उत्पत्ति ह्रास नियम का क्षेत्र भी बताइए।

Throwing light on the practicability of the Law of Variable Proportions, write the importance of Law of Diminishing Returns and also, tell its scope.

उत्तर

परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की व्यावहारिकता
(Practicability of Law of Variable Proportions)

स्थिर साधनों की अविभाज्यताओं के कारण ही बढ़ते तथा घटते प्रतिफल उत्पन्न होते हैं। बढ़ते प्रतिफल उत्पादन की प्रथम अवस्था में इसलिए प्राप्त होते हैं क्योंकि आरम्भ में परिवर्तनशील साधन की मात्रा में वृद्धि स्थिर साधनों का पूर्ण उपभोग सम्भव बनाती है। परिवर्तनशील साधन की मात्रा की निरन्तर वृद्धि एक बिन्दु पर स्थिर साधन का पूर्ण विदोहन (Perfect or Optimum Utilisation) कर लेती है। इस बिन्दु पर परिवर्तनशील साधन तथा स्थिर साधनों का संयोग अनुपात अनुकूलतम (Optimum Proportion) होता है। यदि इस अनुकूलतम बिन्दु के बाद भी परिवर्तनशील साधन की मात्रा में वृद्धि की जाती है तो स्थिर साधन अति उपयोग (Over-Utilisation) होने के कारण परिवर्तनशील साधन का औसत उत्पादन घटने लगता है। यही **घटते प्रतिफल** या **परिवर्तनशील अनुपातों** का नियम है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री **रिकार्डो** एवं **माल्थस** ने इस सिद्धान्त को कृषि क्षेत्र पर लागू किया था। उनके अनुसार कृषि क्षेत्र तथा उससे सम्बन्धित व्यवसाय (जैसे मछली पकड़ना आदि) में कुछ समय बाद घटते प्रतिफल उत्पन्न होते हैं। **रिकार्डो** के अनुसार भूमि की सीमित मात्रा तथा ह्रासमान उर्वरा-शक्ति के कारण कृषि क्षेत्र में घटते प्रतिफल उत्पन्न होते हैं। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने घटते प्रतिफल नियम को केवल कृषि क्षेत्र में लागू करके इसके क्षेत्र को सीमित कर दिया। आधुनिक अर्थशास्त्री उद्योग उत्पादन के सभी क्षेत्रों में इस सिद्धान्त की व्यावहारिकता स्वीकार करते हैं। यह एक सार्वभौमिक (Universal) सिद्धान्त है। चाहे कोई भी क्षेत्र क्यों न हो, अन्य साधनों की तुलना में एक साधन की कमी सदैव घटते प्रतिफल को जन्म देगी। श्रीमती **जॉन रॉबिन्सन** उत्पत्ति के साधनों की अपूर्ण स्थानापन्नता को घटते प्रतिफल का कारण मानती हैं। उनके अनुसार उत्पत्ति के विभिन्न साधन परस्पर अपूर्ण स्थानापन्न होते हैं जिसके कारण स्थिर साधन की कमी को किसी अन्य साधन से पूरा नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, **श्रीमती रॉबिन्सन** के अनुसार साधनों में स्थानापन्नता की लोच अनन्त नहीं है जिसके कारण घटते प्रतिफल उत्पन्न होते हैं। घटते प्रतिफल की व्यावहारिकता को देखते हुए **विक्स्टीड** ने कहा है कि घटते प्रतिफल का नियम 'उतना ही सार्वभौमिक है जितना कि जीवन का नियम' (as Universal as the Law of Life and Death)।

घटते प्रतिफल (या उत्पत्ति ह्रास) के नियम का महत्त्व
(Importance of Law of Diminishing Returns)

1. **अर्थशास्त्र का आधारभूत नियम**—यह नियम केवल कृषि पर ही लागू नहीं होता बल्कि खनन, मछली-पालन, उद्योग, मकान-निर्माण, आदि सभी उत्पादन क्षेत्रों में क्रियाशील होने के कारण इस नियम का कार्य-क्षेत्र बहुत व्यापक है।
2. **माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त का आधार**—**माल्थस** का सिद्धान्त यह बताता है कि देश में खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि जनसंख्या में वृद्धि से कम होती है। खाद्यान्नों में धीमी वृद्धि का कारण उत्पत्ति ह्रास नियम ही है।
3. **रिकार्डो के लगान सिद्धान्त का आधार**—**रिकार्डो** के गहरी खेती व विस्तृत खेती दोनों में लगान उत्पन्न होने का कारण उत्पत्ति ह्रास नियम है। गहरी खेती में जब दिए गए भू-खण्ड पर श्रम व पूँजी के अतिरिक्त इकाइयों का प्रयोग किया जाता है तो उत्तरोत्तर इकाइयों की उत्पादकता घटती जाती है क्योंकि उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है। सीमान्त इकाई की तुलना में पहले की इकाइयों को जो बचत प्राप्त होती है उसे रिकार्डो ने लगान कहा है। इस प्रकार यह लगान उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता का ही परिणाम है।
4. **सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त का आधार**—इस सिद्धान्त में उत्पत्ति के साधनों को उनकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार पुरस्कार दिया जाता है। उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता के कारण परिवर्तनशील साधन की सीमान्त उत्पादकता घटती हुई होती है।
5. **एक क्षेत्र के लोगों का जीवन-स्तर प्रभावित करता है**—एक क्षेत्र में जनसंख्या उत्पत्ति के अन्य साधनों की तुलना में अधिक तेजी से बढ़ती है तब वहाँ उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होने के कारण उस क्षेत्र के लोगों का रहन-सहन स्तर गिर जाएगा।
6. **आविष्कारों एवं खोजों के लिए प्रेरणादायक**—उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता को स्थगित करने के लिए अनेक आविष्कार एवं खोज करने की प्रेरणा मिलती है।

इस प्रकार परिवर्तनशील अनुपात के नियम की अवस्थाएं सैद्धान्तिक (Theoretical) एवं व्यावहारिक (Practical) दोनों दृष्टिकोणों से महत्त्वपूर्ण हैं।

उत्पत्ति ह्रास नियम का क्षेत्र
(Scope of the Law of Diminishing Returns)

उत्पत्ति ह्रास नियम निम्न क्षेत्रों में लागू होता है—

1. **खान व्यवसाय में**—उत्पत्ति ह्रास नियम खान व्यवसाय में अग्र प्रकार लागू होता है—
   (i) **प्रथम रीति या विस्तृत रीति**—खनिज खदान का मालिक सबसे पहले उस स्थान पर खनिजों की खुदाई करेगा, जहाँ उसे आसानी से श्रमिक, यातायात व बाजार की सुविधा उपलब्ध हो सके। जब ऐसे स्थानों का खनिज समाप्त होता है, तब वह बाजार व आबादी से दूरी की खानों की ओर बढ़ता है। इस प्रकार दूसरी खानों की उत्पादन लागत पहली खानों की उत्पादन लागत की अपेक्षा ऊँची होगी। इससे यह स्पष्ट होता है कि खान व्यवसाय में उत्पत्ति ह्रास नियम लागू हो जाता है।
   (ii) **द्वितीय रीति या गहरी रीति**—कभी-कभी खान का मालिक एक ही खान से अधिकाधिक खनिज प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। जब खान कम गहरी होती है, तब खान के भीतर विशेष प्रयत्न नहीं करने पड़ते हैं। ज्यों-ज्यों खान गहरी होती जाती है, त्यों-त्यों खान के अन्दर मजदूरों के रख-रखाव पर अधिक व्यय करना होता है। रख-रखाव के अन्तर्गत ऑक्सीजन, रोशनी, पानी, आने-जाने, सुरक्षा, पोशाक, क्रेन तथा आधुनिक यन्त्र, आदि की व्यवस्था करना है। इन सब व्यवस्थाओं पर अतिरिक्त खर्च करना पड़ता है। जब खान के मुहाने से खनिज प्राप्त किया जा रहा था तब इस प्रकार के व्यय नहीं होते थे, परिणामस्वरूप खनिजों की उत्पादन लागत कम बैठती थी, परन्तु अब खनिजों को गहराई से निकाला जा रहा है तब उनकी उत्पादन लागत में वृद्धि हो जाती है। परिणामस्वरूप उत्पत्ति ह्रास नियम क्रियाशील हो जाता है।
2. **मछली पकड़ने के व्यवसाय में**—उत्पत्ति ह्रास नियम मछली पकड़ने के व्यवसाय में भी लागू होता है। नदी, तालाब व झील में ज्यों-ज्यों मछली पकड़ने के लिए जाल डाले जाते है त्यों-त्यों मछलियों की मात्रा में कमी आती जाती है जिससे मछली पकड़ने की दर कम होती है और खर्चा बढ़ जाता है।

मछली पकड़ने के व्यवसाय में गहरी व विस्तृत दोनों ही रीतियों को अपनाया जाता है। गहरी रीति से मछली पकड़ने का अभिप्राय यह है कि जब नदी, तालाब व समुद्री सतह पर मछलियों की संख्या कम रह जाती है तब मछुए गहराई की ओर जाने लगते हैं। गहराई में प्रवेश पाने के लिए उन्हें आधुनिक यन्त्रों, उपकरणों व साजो-सामान की आवश्यकता होती है जिस पर अत्यधिक खर्च आता है। अत: सतह पर जितनी कम लागत से मछलियां पकड़ी जा सकती हैं उतनी कम लागत पर गहराई से नहीं। ऐसा उत्पत्ति ह्रास नियम के ही कारण है।

मछलियों को पकड़ने का दूसरा तरीका विस्तृत है। जब मछलियां नदी, झील व समुद्र के किनारे समाप्त हो जाती हैं, तब मछुआरों को नावों में बैठकर आधुनिक जालों के साथ दूर-दूर तक भटकना पड़ता है जिसमें समय, साधन और अधिक जोखिम झेलनी पड़ती है जिससे उत्पादन लागत बढ़ जाती है, परिणामस्वरूप उत्पत्ति ह्रास नियम क्रियाशील हो जाता है।

3. **मकान व दुकान बनाने में**—भवन-निर्माण में भी उत्पत्ति ह्रास नियम क्रियाशील होता है। यह बात बहुमंजिली इमारतों में लागू होती है। एक मंजिल की अपेक्षा दूसरी मंजिल में और दूसरी से तीसरी मंजिल की लागत बढ़ती जाती है, क्योंकि जमीन से ऊपर कच्चे माल को लाने व ले जाने में अधिक श्रम व पूँजी की आवश्यकता होती है। ज्यों-ज्यों मकान की मंजिलें बढ़ायी जाती हैं त्यों-त्यों प्रत्येक अगली मंजिल की लागत बढ़ती जाती है। यह व्याख्या उत्पत्ति ह्रास नियम के ही मन्तव्य को स्पष्ट करती है।
4. **गौण धन्धों में**—गौण धन्धों में तथा तैयार माल बनाने वाले उद्योगों में भी एक सीमा के बाद उत्पत्ति ह्रास नियम क्रियाशील हो जाता है। भले ही वैज्ञानिक आविष्कारों तथा नयी-नयी उत्पादन तकनीकों के कारण इन व्यवसायों में उत्पत्ति ह्रास नियम कृषि की अपेक्षा देरी से लागू होता है, लेकिन लागू अवश्य होता है। यदि ऐसा नहीं होता तो उद्योगों में लगातार श्रम और पूँजी की उत्तरोत्तर ईकाइयाँ लगायी जातीं और मनमाना उत्पादन प्राप्त कर लिया जाता और विश्व से उत्पादन की समस्या हमेशा-हमेशा के लिए समाप्त हो गयी होती, परन्तु ऐसा नहीं होता है। स्पष्ट है कि उत्पत्ति ह्रास नियम सर्वव्यापी है।

प्र.3. पैमाने के प्रतिफल पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिए।
Write a detailed essay on Returns to Scale.

उत्तर

पैमाने के प्रतिफल
(Returns to Scale)

पैमाने के प्रतिफल उत्पादन फलन की दीर्घकालीन प्रवृत्ति को सूचित करते हैं। दीर्घकाल में कोई उत्पत्ति का साधन स्थिर नहीं रहता। सभी उत्पत्ति के साधन परिवर्तनशील हो जाते हैं तथा उन्हें आवश्यकतानुसार परिवर्तित भी किया जा सकता है। सभी उत्पत्ति साधनों के परिवर्तनशील होने के कारण उत्पादन का पैमाना (Scale of Production) परिवर्तित किया जा सकता है। उत्पादन तकनीक में सुधार, श्रम-विभाजन, विशिष्टीकरण, आदि के कारण उत्पादन में आन्तरिक एवं बाह्य बचतें (Internal and External Economies) प्राप्त होती हैं। किन्तु ये आन्तरिक और बाह्य बचते सदैव स्थायी नहीं रहतीं बल्कि कुछ समय के बाद में बचतें हानियों (Diseconomies) का रूप ले लेती हैं। आरम्भ में ये आन्तरिक एवं बाह्य बचतें पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल (Increasing Returns to Scale) देती हैं, किन्तु ये बचतें जब हानियों में बदल जाती हैं तो पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल (Decreasing Returns to Scale) उत्पन्न होते हैं। इन दोनों प्रतिफलों के बीच की कड़ी पैमाने के स्थिर प्रतिफल (Constant Returns to Scale) की है।

पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल (Increasing Returns to Scale)

जब सभी उत्पत्ति के साधनों को एक निश्चित अनुपात में बढ़ाया जाता है तब पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल के अन्तर्गत उत्पादन उस निश्चित अनुपात से अधिक अनुपात में बढ़ जाता है। इस प्रकार यदि उत्पत्ति साधनों को 10% बढ़ाया जाता है तो उत्पादन में 10% से अधिक की वृद्धि होती है। पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल उत्पादन पैमाने में वृद्धि, श्रम-विभाजन तथा विशिष्टीकरण के कारण उत्पन्न होते हैं। श्रम-विभाजन एवं विशिष्टीकरण श्रम की उत्पादकता में वृद्धि करता है। पैमाने के आकार में वृद्धि के कारण विशिष्ट एवं अधिक क्षमता वाली मशीनरी का प्रयोग किया जा सकता है। ये सभी घटक पैमाने में वर्द्धमान प्रतिफल उत्पन्न करते हैं।

इस प्रकार **पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल** में,

उत्पादन में आनुपातिक वृद्धि > साधनों की मात्रा में आनुपातिक वृद्धि;

पैमाने के वर्द्धमान नियम को दूसरे शब्दों में भी व्यक्त किया जा सकता है। इस नियमानुसार साधनों की निश्चित वृद्धि से क्रमशः अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है अथवा उत्पादन में एकसमान वृद्धि प्राप्त करने के लिए क्रमशः साधनों की घटती मात्रा में वृद्धि की आवश्यकता पड़ेगी इस कथन को सम-उत्पाद वक्र (Iso-product Curve) की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है।

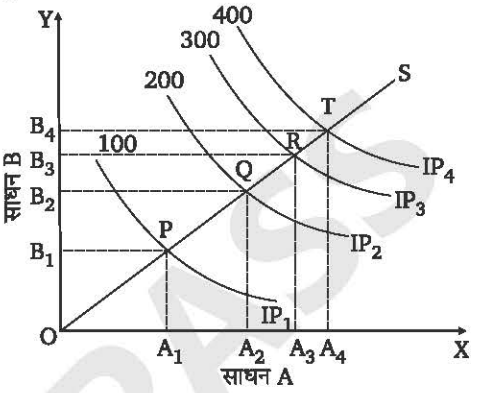

चित्र 1. पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल

चित्र 1 में पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल को सम उत्पाद वक्र IP_1, IP_2, IP_3 तथा IP_4 की सहायता से प्रदर्शित किया गया है। ये सम उत्पाद वक्र उत्पादन में एकसमान वृद्धि (अर्थात् 100 इकाई) को प्रदर्शित करती है। OS पैमाने (Scale) को प्रदर्शित कर रही है जिस पर उत्पादन किया जा रहा है। समउत्पाद वक्र पैमाना रेखा OS को क्रमशः बिन्दु P, Q, R तथा T बिन्दु पर काट रहे हैं। ये सभी बिन्दु P, Q, R तथा T दिए गए पैमाने पर क्रमशः 100, 200, 300 तथा 400 इकाई उत्पादन करने के लिए आवश्यक दो उत्पत्ति साधन A तथा B के संयोगों को प्रदर्शित कर रहे हैं। चित्र में $PQ > QR > RT$ है अर्थात् उत्पादन में एकसमान वृद्धि (अर्थात् 100 इकाई) प्राप्त करने के लिए दो साधनों की क्रमशः कम मात्राओं की आवश्यकता पड़ेगी। यही पैमाने का वर्द्धमान नियम है।

पैमाने के स्थिर प्रतिफल (Constant Returns to Scale)

इसके अनुसार यदि उत्पत्ति के समस्त साधनों को एक निश्चित अनुपात में बढ़ाया जाए तो उत्पादन भी उसी निश्चित अनुपात से बढ़ता है। इस प्रकार यदि उत्पत्ति साधनों में 10% वृद्धि की जाती है तो उत्पादन भी 10% बढ़ता है। इसी प्रकार जिस अनुपात में उत्पत्ति साधनों में कमी की जाती है, ठीक उसी अनुपात में उत्पादन में भी कमी हो जाती है।

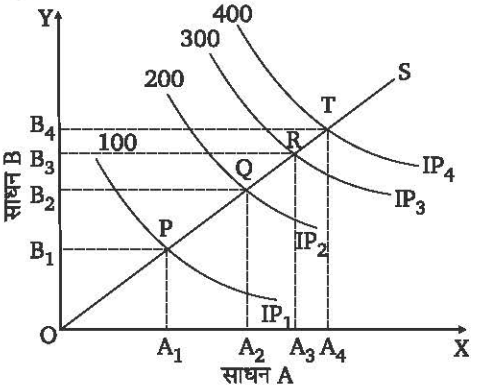

चित्र 2. पैमाने के स्थिर प्रतिफल

दूसरे शब्दों में, पैमाने के स्थिर प्रतिफल के अन्तर्गत उत्पादन में एकसमान वृद्धि करने के लिए क्रमशः साधनों की समान मात्राओं की आवश्यकता पड़ेगी।

चित्र 2 से स्पष्ट है कि उत्पादन में समान वृद्धि (अर्थात् 100 इकाई) के लिए स्थिर अनुपात वाले दो साधनों A तथा B की मात्राओं की आवश्यकता पड़ेगी।

चित्र में, $$PQ = QR = RT$$

जो स्थिर पैमाने के प्रतिफल को स्पष्ट करता है।

पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल (Decreasing Returns to Scale)

इसके अनुसार उत्पत्ति के साधनों को जिस अनुपात में बढ़ाया जाता है उससे कम अनुपात में उत्पादन में वृद्धि होती है। दूसरे शब्दों में, उत्पादन में एकसमान वृद्धि प्राप्त करने के लिए साधनों की क्रमशः अधिकाधिक मात्राओं की आवश्यकता होगी। पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल उत्पन्न होने का मुख्य कारण यह है कि पैमाने का आकार बहुत बड़ा हो जाने के कारण उत्पादन कार्य में कठिनाई अनुभव करता है और आन्तरिक एवं बाह्य बचतें इस दशा में आन्तरिक एवं बाह्य हानियों (Internal and External Dis-economies) में परिवर्तित हो जाती हैं जिसके कारण पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल उत्पन्न होते हैं।

चित्र 3 में स्पष्ट किया गया है कि उत्पादन में समान वृद्धि (अर्थात् 100 इकाई) के लिए बढ़ते अनुपात में उत्पत्ति के साधनों की आवश्यकता पड़ेगी। चित्र में,

$$PQ < QR < RT$$

जो पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल को स्पष्ट करता है।

पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल में,

उत्पादन में आनुपातिक परिवर्तन < साधनों की मात्रा में आनुपातिक वृद्धि

तीनों पैमाने के प्रतिफलों को समउत्पाद वक्रों की सहायता से एक ही चित्र में प्रदर्शित किया जा सकता है (देखें चित्र 4)। चित्र में OS पैमाना रेखा है। इस रेखा को तीन भागों में बांटा जा सकता है—

(i) बिन्दु P से बिन्दु S तक →

$PQ > QR > RS$ अर्थात् पैमाने के वर्द्धमान प्रतिफल

(ii) बिन्दु S से बिन्दु K तक →

$ST = TK$ अर्थात पैमाने के स्थिर प्रतिफल

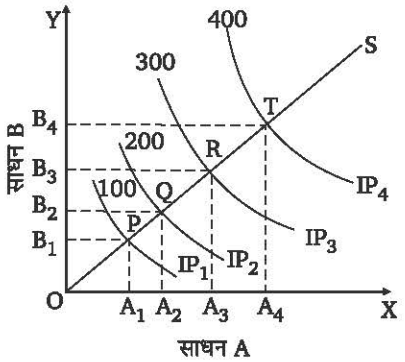

चित्र 3. पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल

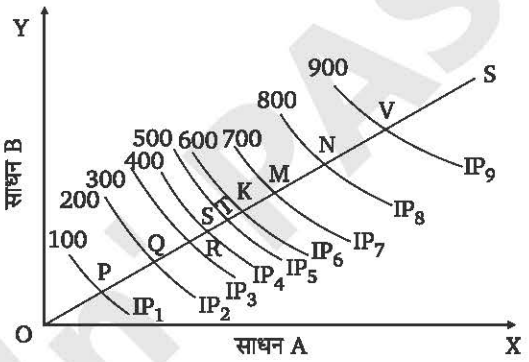

चित्र 4

(iii) बिन्दु K से बिन्दु V तक →

$KM < MN < NV$ अर्थात् पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल

प्र.4. समोत्पाद वक्र की परिभाषा देते हुए उनकी विशेषताओं का विवेचन कीजिए। तटस्थता एवं समोत्पाद वक्रों में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

Giving definitions of Iso-product Curve, discuss its characteristics. Make clear the difference between Indifference Curves and Iso-product Curves.

उत्तर अर्थशास्त्रियों ने तटस्थता वक्र की तरह ही समोत्पाद वक्रों का भी निर्माण किया है। ये दो साधनों के ऐसे विभिन्न संयोगों को व्यक्त करते हैं, जिनमें एक कम्पनी (फर्म) उत्पादन की समान मात्रा को उत्पादित करती है। समोत्पाद वक्रों (Iso-product/Isoquant curves) को विभिन्न नामों से सम्बोधित किया जाता है; जैसे—समोत्पत्ति वक्र (Equal-Product/Quant Curves), उत्पादन उदासीनता वक्र (Production Indifference Curves) इत्यादि।

समोत्पाद रेखाओं को परिभाषित करते हुए **प्रो० केयरस्टीड** ने लिखा है—"समोत्पाद रेखा दो साधनों के उन सब सम्भावित संयोगों को बताती है जोकि एकसमान मात्रा में उत्पादन प्रदान करते हैं।"

कोहन एवं सीयर्ट के अनुसार, "एक समोत्पाद वक्र वह वक्र होता है जिस पर उत्पादन की अधिकतम प्राप्त योग्य दर स्थिर होती है।"

समोत्पाद वक्रों की विशेषताएँ
(Characteristics of Iso-product Curves)

1. **एक समोत्पाद वक्र बाएँ से दाएँ को नीचे की ओर गिरता हुआ होता है** अर्थात् समोत्पाद वक्र का ढाल ऋणात्मक होता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि यदि एक फर्म एक साधन L की इकाइयाँ बढ़ाती है तो उसे दूसरे साधन C की इकाइयाँ घटानी पड़ेंगी। तभी उसे इन दोनों साधनों के विभिन्न संयोगों से समान उत्पादन मिल पाएगा। (देखिए चित्र-1)।
2. **समोत्पाद वक्र मूलबिन्दु के प्रति उन्नतोदर** (Convex to the Origin) **होता है**। इससे आशय यह है कि जब उत्पादक एक समोत्पाद वक्र पर बाईं ओर से दाईं ओर नीचे की ओर चलता है तो वह साधन L की प्रत्येक इकाई को साधन C की घटती हुई मात्रा से प्रतिस्थापित करता है (देखिए उपर्युक्त चित्र-2)।

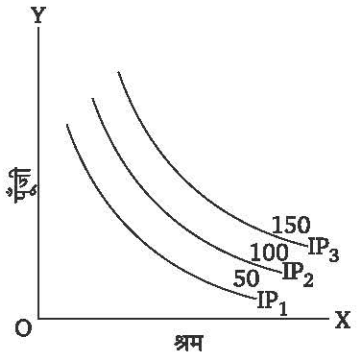

चित्र 1

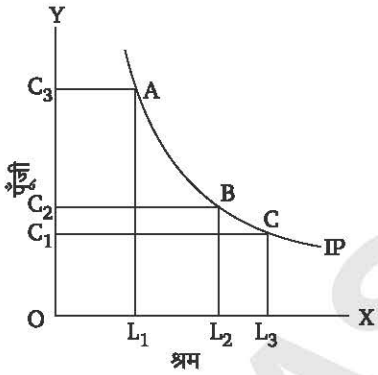

चित्र 2

3. **समोत्पाद वक्र एक-दूसरे को कभी काटते नहीं हैं** अर्थात् वे एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं, वे एक-दूसरे की स्पर्श रेखाएँ नहीं होती हैं (देखिए चित्र-3)।

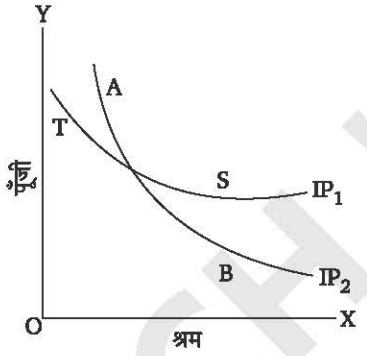

चित्र 3

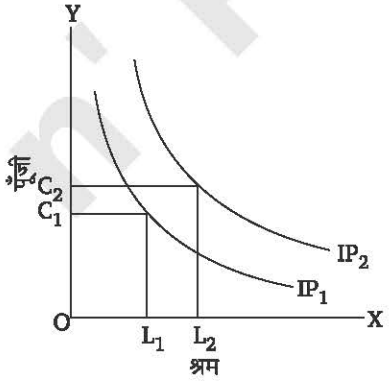

चित्र 4

4. दायीं ओर स्थित समोत्पाद वक्र अधिक उत्पादन को प्रदर्शित करते हैं (देखिए चित्र-4)।
5. समोत्पाद वक्र की वक्रता दो साधनों की परस्पर प्रतिस्थापन दर सूचित करती है।
6. समोत्पाद वक्र किसी भी अक्ष को स्पर्श नहीं कर सकते (देखिए चित्र-5)।

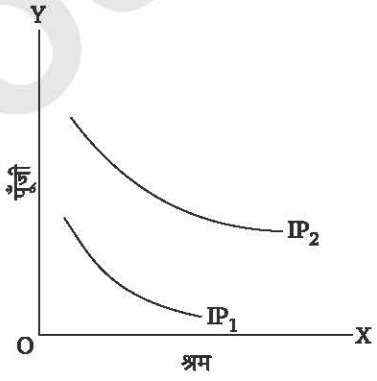

चित्र 5

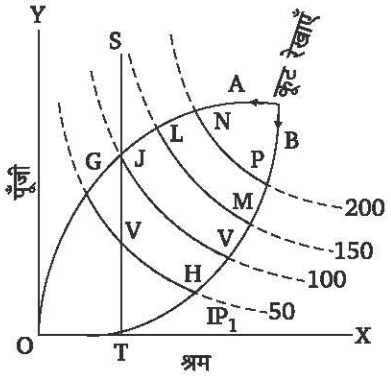

चित्र 6

TOUCH 'n PASS

7. ऋजु रेखाएँ (Ridge Lines) उत्पादन क्षेत्र की आर्थिक सीमाएँ निर्माण करती हैं। ये रेखाएँ अपने पीछे की ओर झुकती हैं। ये रेखाएँ ही उत्पादन के आर्थिक क्षेत्र की सीमाएँ हैं। इन रेखाओं के केवल वे भाग जो कि ऋजु रेखाओं के बीच में हैं, उत्पादन के लिए उपयुक्त हैं (देखिए चित्र-6)।

तटस्थता वक्रों तथा समोत्पाद वक्रों में अन्तर
(Difference between Indifferent Curves and Iso-quant Curves)

तटस्थता वक्र तथा समोत्पाद वक्र व्यापक रूप से आपस में समान होते हैं। उदाहरणार्थ—दोनों वक्र बाएँ से दाएँ नीचे की ओर गिरते हुए होते हैं। दोनों ही वक्र मूलबिन्दु के प्रति उन्नतोदर होते हैं तथा ये वक्र एक-दूसरे को परस्पर काट नहीं सकते लेकिन इस व्यापक समानता के उपरान्त भी तटस्थता वक्र तथा समोत्पाद रेखाओं में महत्त्वपूर्ण अन्तर पाया जाता है—

1. जहाँ तटस्थता वक्रों को परिमाणात्मक मूल्य प्रदान नहीं किया जा सकता (क्योंकि उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक और आत्मपरक विचार है), वहाँ समोत्पाद वक्र रेखाओं को परिमाणात्मक मूल्य प्रदान किया जा सकता है क्योंकि उत्पादित वस्तुओं का भौतिक मापन (physical measurement) सम्भव है।
2. एक निश्चित समयावधि में उपभोक्ता का व्यय लगभग निश्चित होता है (अर्थात् उपभोक्ता की द्राव्यिक आय द्वारा सीमित होता है)लेकिन एक उत्पादक अपने साधनों में एक सीमा तक सरलता से परिवर्तन करने में समर्थ होता है।

प्र.5. औसत लागत तथा इसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन करते हुए अल्पकालीन औसत लागत वक्र के बारे में लिखिए।
Explaining Average Cost and its different types, write about Short-Run Average Cost Curve.

उत्तर

औसत लागत
(Average Cost)

औसत लागत वह लागत होती है जोकि किसी वस्तु के उत्पादन में लगाई गई कुल लागत को उत्पादित वस्तुओं की इकाइयों की संख्या से विभाजित करने पर आती है। इसका सूत्र है—

$$\text{कुल लागत } (AC) = \frac{\text{कुल लागत } (TC)}{\text{उत्पादित की गई इकाइयाँ } (Q)}$$

औसत लागतें तीन प्रकार की होती हैं—1. औसत स्थिर लागत, 2. औसत परिवर्तनशील लागत तथा, 3. औसत कुल लागत (औसत लागत)।

1. **औसत स्थिर लागत**—औसत स्थिर लागत कुल स्थिर लागत में उत्पादित इकाइयों से भाग देने पर प्राप्त होती है। इसका सूत्र है—

$$\text{कुल स्थिर लागत } (AFC) = \frac{\text{कुल लागत } (TFC)}{\text{उत्पादित की गई इकाइयाँ } (Q)}$$

कुल स्थिर लागत तो अल्पकाल में स्थिर रहती है, लेकिन उत्पादन की मात्रा में जैसे-जैसे वृद्धि होती जाती है, वैसे-वैसे ही औसत स्थिर लागत, उत्पादन में वृद्धि के अनुपात में कम होती चली जाती है। इसका कारण यह है कि जैसे-जैसे उत्पादन की मात्रा बढ़ती जाती है, कुल स्थिर लागत अधिकाधिक इकाइयों पर फैलती जाती है, जिससे औसत स्थिर लागत में कमी होती जाती है। निम्नांकित चित्र-1 में, (i) जैसे-जैसे उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होती जाती है, वैसे-वैसे ही औसत स्थिर लागत रेखा की गिरावट भी उत्तरोत्तर अधिक होती जाती है। (ii) औसत स्थिर लागत रेखा अपनी पूरी लम्बाई तक नीचे दाईं ओर गिरती रहती है लेकिन इसके घटने की दर पूरी लम्बाई में घटती ही जाती है। जब उत्पादन शून्य होने लगता है तो औसत स्थिर लागत अनन्त की ओर बढ़ने लगती है। दूसरी ओर, जब उत्पादन बहुत ऊँचे स्तर पर पहुँच जाता है तो औसत स्थिर लागत शून्य के निकट हो जाती है लेकिन यह सदैव धनात्मक (positive) ही रहती है।

2. **औसत परिवर्तनशील लागत**—औसत परिवर्तनशील लागत कुल परिवर्तनशील लागत में कुल उत्पादित वस्तुओं की इकाइयों से भाग देने पर प्राप्त होती है। इसका सूत्र है—

$$\text{औसत परिवर्तनशील लागत } (AVC) = \frac{\text{कुल परिवर्तनशील लागत } (TVC)}{\text{कुल उत्पादित वस्तु की इकाइयाँ } (Q)}$$

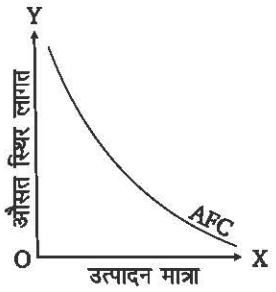

चित्र 1

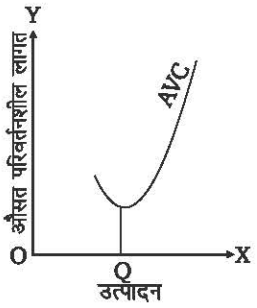

चित्र 2

उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ यद्यपि कुल परिवर्तनशील लागत में भी वृद्धि होती जाती है लेकिन औसत परिवर्तनशील लागत आरम्भ में एक निश्चित बिन्दु तक तो गिरती है तत्पश्चात् उस बिन्दु के बाद तेजी से बढ़नी शुरू हो जाती है। वास्तव में, फर्म की पूर्ण उत्पादन क्षमता की सीमा तक जैसे-जैसे उत्पादन की मात्रा बढ़ती है, वैसे-वैसे ही श्रम और उत्पादन के अन्य साधनों की पूर्ण उत्पादन क्षमता का प्रयोग होने लगता है एवं बड़े पैमाने के उत्पादन के लाभ भी उपलब्ध होने लगते हैं। परिणामस्वरूप औसत परिवर्तनशील लागतें धीरे-धीरे गिरती जाती हैं।

औसत परिवर्तनशील लागत पर परिवर्तनशील अनुपातों का नियम (law of variable proportions) लागू होता है। उपरोक्त चित्र-2 में औसत परिवर्तनशील लागत वक्र की आकृति दर्शाई गई है। पहले यह वक्र नीचे की ओर गिरता है परन्तु Q बिन्दु के पश्चात् तेजी से ऊपर की ओर उठने लगता है। इस प्रकार यह U आकार का हो जाता है।

3. **औसत कुल लागत**—औसत कुल लागत को औसत इकाई लागत या औसत लागत भी कहा जाता है। यह कुल लागत को कुल उत्पादित इकाइयों से भाग देने पर प्राप्त होती है। इसका सूत्र है—

$$\text{औसत कुल लागत } (ATC) = \frac{\text{कुल लागत } (TC)}{\text{कुल उत्पादित वस्तु की इकाइयाँ } (Q)}$$

औसत कुल लागत रेखा भी U आकार की होती है।

U-आकृति का अल्पकालीन औसत लागत वक्र
(U-shaped Short-run Average Cost Curve)

ध्यातव्य है, औसत लागत वक्र U-आकार का होता है। आरम्भ में उत्पादन के नीचे स्तरों पर औसत लागत ऊँची होती है क्योंकि स्थिर लागत और औसत परिवर्तनशील लागत दोनों ही अधिक होती हैं किन्तु जब उत्पादन बढ़ता है तो घटती हुई औसत स्थिर और औसत परिवर्तनशील लागतों के संयुक्त प्रभाव से औसत लागत अधिक तेजी से गिरती है। औसत लागत तब तक गिरती जाती है जब तक कि यह न्यूनतम स्तर तक नहीं पहुँच जाती। यह उत्पादन क्षमता स्तर है। जब उत्पादन क्षमता स्तर आ जाता है तो उसके बाद अधिक उत्पादन के साथ औसत लागत बढ़ने लगती है। इससे फर्म का अल्पकालीन औसत लागत वक्र U-आकार का बन जाता है।

इसकी व्याख्या परिवर्तनशील अनुपातों के नियम द्वारा भी की जा सकती है। जब एक परिवर्तनशील साधन (माना श्रमिक) को समान इकाइयों में बढ़ाया जाता है तो एक सीमा तक उत्पादन बढ़ता है जब तक कि स्थिर साधनों का उनकी पूरी क्षमता तक प्रयोग नहीं होता। इस स्थिति में उत्पादन बढ़ने के साथ-ही-साथ फर्म की औसत लागतें भी कम होती जाती हैं क्योंकि उसे अनेक प्रकार की आन्तरिक मितव्ययिताओं के कारण बढ़ते प्रतिफल प्राप्त होते हैं। उत्पादन क्षमता की उच्चतम सीमा पर औसत लागत न्यूनतम होगी। इसके उपरान्त भी यदि परिवर्तनशील साधन की मात्राओं को बढ़ाया जाता है तो घटते प्रतिफल प्राप्त होंगे और औसत लागतें तीव्र गति से बढ़ती चली जाएँगी; अत: अल्पकालीन औसत लागत वक्र U-आकार का होता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है—

1. $\text{औसत लागत } (AC) = \frac{\text{कुल लागत } (TC)}{\text{उत्पादित इकाइयाँ } (Q)}$

   या औसत लागत = औसत स्थिर लागत + औसत परिवर्तनशील लागत

2. औसत लागत प्रारम्भ में घटती है और फिर इसमें बढ़ने की प्रवृत्ति होती है।
3. औसत लागत रेखा U-आकार की होती है।
4. जहाँ औसत लागत न्यूनतम होती है, उसे 'आदर्श उत्पादन' कहते हैं।

प्र.6. फर्म के सन्तुलन में लाभ अधिकतमीकरण सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए तथा इसकी मान्यताएँ एवं आलोचनाएँ भी लिखिए।

Explain Profit Maximisation Theory regarding the firms equilibrium and give its assumption and criticism also.

उत्तर

आय तथा लाभ अधिकतमीकरण सिद्धान्त
(Revenue and Profit Maximisation Theory)

किसी भी व्यावसायिक संस्थान का प्रमुख उद्देश्य लाभ अर्जित करना होता है और हम किसी भी फर्म के सन्तुलन में यह देख सकते हैं कि वह फर्म वस्तु की कितनी मात्रा का उत्पादन करेगी अर्थात् अर्थशास्त्र में फर्म सन्तुलन में तब कही जाती है जब वह अपने उत्पादन स्तर में किसी प्रकार का परिवर्तन करने को तैयार नहीं होती है। ऐसी स्थिति तब होगी जब फर्म अधिकतम लाभ कमा रही होती है क्योंकि कोई भी विवेकशील उत्पादक यदि अधिकतम लाभ कमा रहा है तो वह उत्पादन निर्धारण की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं करेगा अन्यथा वह अपनी उत्पादन मात्रा को बदलने का प्रयास करेगा।

लाभ अधिकतमीकरण की मान्यताएँ (Assumptions of Profit Maximisation)

लाभ अधिकतमीकरण का सिद्धान्त निम्न मान्यताओं पर आधारित है—

1. फर्म एक अकेली, पूर्णतया विभाज्य और स्टैण्डर्ड वस्तु का उत्पादन करती है।
2. प्रत्येक कीमत पर वस्तु की कितनी मात्रा बेची जा सकती है इसका फर्म को पूर्ण ज्ञान होता है।
3. फर्म को अपनी माँग और लागतों के बारे में निश्चितता से मालूम है।
4. नई फर्में केवल दीर्घकाल में ही उद्योग में प्रवेश कर सकती हैं। अल्पकाल में फर्मों का प्रवेश सम्भव नहीं है।
5. फर्म अपने लाभों का अधिकतमीकरण कुछ काल-क्षितिज में करती है।
6. फर्म का उद्देश्य लाभों को अधिकतम करना है जहाँ फर्म के आगम और लागतों का अन्तर लाभ है।
7. उद्यमी स्वयं ही फर्म का मालिक है।
8. उपभोक्ताओं की रुचियाँ और आदतें दी हुई और स्थिर हैं।
9. उत्पादन की तकनीक दी हुई है।
10. अल्पकाल और दीर्घकाल दोनों में फर्म अपने लाभों का अधिकतमीकरण करती है।

लाभ अधिकतमीकरण सिद्धान्त की आलोचनाएँ
(Criticism of Profit Maximisation Theory)

प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों ने लाभ अधिकतमीकरण सिद्धान्त की निम्न आधार पर गम्भीर आलोचनाएँ प्रस्तुत की हैं—

1. **लाभ अनिश्चित**—अधिकतम लाभ के सिद्धान्त में यह माना गया है कि फर्में अपने अधिकतम लाभ के स्तर के बारे में निश्चित हैं। किन्तु लाभ सबसे अधिक अनिश्चित हैं क्योंकि ये आय-प्राप्ति और भविष्य में होने वाली लागतों के अन्तर से प्राप्त होते हैं। अत: फर्मों के लिए अनिश्चितता की परिस्थितियों के अन्तर्गत अपने लाभों को अधिकतम कर पाना असम्भव है।
2. **आन्तरिक संगठन से कोई सम्बद्धता नहीं**—फर्म के इस उद्देश्य की फर्म के आन्तरिक संगठन से सीधे रूप में कोई सम्बद्धता नहीं होती है। उदाहरणार्थ, कुछ प्रबन्धक सामान्य रूप में इतना अधिक व्यय करते हैं कि यदि उस व्यय को बचाया जाए तो फर्म के स्वामी का धन एवं लाभ अधिकतम किया जा सकता है। निगमों के प्रबन्धकों को प्रबन्धकीय कार्यवाहियों के उद्देश्यों के रूप में फर्म की कुल परिसम्पत्तियों की वृद्धि तथा बिक्री पर बल देते हुए देखा गया है। इसके अतिरिक्त फर्मों के प्रबन्धक माँग कम होने पर लागत कम करने और कार्यकुशलता बढ़ाने के अभियान आरम्भ करते हैं। स्टॉकधारियों के बहुत अधिक धन के प्रतिकूल प्रबन्धकीय कार्यवाहियाँ एक स्थापित तथ्य मानी जाती हैं।
3. **पूर्ण ज्ञान नहीं**—अधिकतम लाभ की अवधारणा इस मान्यता पर आधारित है कि सभी फर्मों को न केवल उनकी अपनी बल्कि अन्य फर्मों की लागतों और आगमों का भी पूर्ण बोध होता है। किन्तु वास्तव में फर्मों को उन परिस्थितियों का पर्याप्त

बोध नहीं होता जिसके अन्तर्गत वे कार्य करती हैं। अधिक-से-अधिक उन्हें अपनी उत्पादन लागत का पता हो सकता है किन्तु वे बाजार माँग वक्र के बारे में निश्चित नहीं हो सकते। वे हमेशा अनिश्चितता की परिस्थितियों में कार्य करती हैं और इस तरह अधिकतम लाभ का सिद्धान्त कमजोर है क्योंकि इस सिद्धान्त में यह माना गया है कि फर्म हर चीज के बारे में निश्चित है।

4. **आनुभाविक प्रमाण अस्पष्ट**—लाभ अधिकतमीकरण पर आनुभाविक प्रमाण स्पष्ट नहीं है। बहुत-सी फर्में लाभों को एक प्रमुख उद्देश्य नहीं मानती हैं। आधुनिक फर्मों का कार्य इतना कठोर होता है कि वे केवल लाभ अधिकतमीकरण के बारे में नहीं सोचती हैं। उनकी प्रमुख समस्याएँ नियन्त्रण और प्रबन्धन की होती हैं। इन फर्मों के प्रबन्धन का कार्य उद्यमियों द्वारा नहीं अपितु प्रबन्धकों और शेयरहोल्डरों द्वारा किया जाता है। वे क्रमश: अपने वेतन और लाभांशों में अधिक रुचि रखते हैं क्योंकि आधुनिक फर्मों में स्वामित्व का नियन्त्रण से पर्याप्त पृथक्करण होता है, इसलिए उनका कार्यकरण लाभों को अधिकतम करने के लिए नहीं किया जाता है।
5. **फर्में *MC* और *MR* के बारे में नहीं जानती**—वास्तविक व्यावसायिक जगत में फर्में सीमान्त लागत एवं सीमान्त आगम के आगणन की चिन्ता नहीं करती हैं। बहुत-सी तो इन शब्दों से परिचित भी नहीं होती हैं। अन्य अपने माँग और आगम वक्रों के बारे में नहीं जानती हैं और कुछ अन्य को अपने लागत ढाँचे के बारे में पर्याप्त सूचना नहीं होती है। **हाल और हिच** (Hall and Hitch) का प्रयोगसिद्ध प्रमाण यह दर्शाता है कि फर्मों के प्रबन्धकों को सीमान्त लागत और सीमान्त आगम का ज्ञान नहीं है। आखिर वे अनुमान लगाने वाली लालची मशीनें नहीं हैं। जैसाकि **सी०जे० हॉकिन्स** ने ठीक ही कहा है, "यह तर्क देना कि सभी फर्मों का उद्देश्य अधिकतम लाभ के अलावा और कुछ नहीं है, तर्कशास्त्र अथवा अन्तर्दृष्टि में उसी तरह कोई बेहतर आधार नहीं रखता जिस तरह यह तर्क देना कि सभी विद्यार्थियों का उद्देश्य सही और गलत तरीके से परीक्षा में अधिकतम अंक प्राप्त करना होता है।"
6. **औसत लागत का नियम लाभों को अधिकतम करता है**—हाल और हिच ने यह जाना कि फर्में अपने अल्पकालीन लाभों को अधिकतम करने के लिए *MC* और *MR* की समानता का नियम लागू नहीं करती हैं। लेकिन वे दीर्घकाल में लाभों को अधिकतम करने का उद्देश्य अवश्य रखती हैं। इसके लिए वे सीमान्त नियम को लागू न करके अपनी कीमतें औसत लागत नियम पर निश्चित करती हैं। इस नियम के अनुसार, कीमत = $AVC + AFC$ + profit margin (जो सामान्य तौर से 10% होता है)। इस प्रकार, लाभ अधिकतमीकरण फर्म का प्रमुख उद्देश्य औसत लागत नियम के आधार पर कीमत निश्चित करना एवं उसी कीमत पर अपना उत्पादन बेचना है।
7. **स्थैतिक सिद्धान्त**—फर्म का नव-क्लासिकी सिद्धान्त स्थैतिक प्रकृति का है। यह अल्प अवधि या दीर्घ अवधि की मियाद (duration) के विषय में नहीं बताता है। नव-क्लासिकी फर्म का समय-अवधि समान और स्वतन्त्र समय अवधियों का होता है। निर्णयों को कालगत तौर से स्वतन्त्र लिया जाता है। यह लाभ अधिकतमीकरण सिद्धान्त की बड़ी कमी है। वास्तव में निर्णय "कालगत तौर से परस्पर निर्भर" होते हैं। इससे आशय है कि किसी एक अवधि में निर्णय पिछली अवधियों के निर्णयों द्वारा प्रभावित होते हैं, जो आगे फर्म के भविष्य में निर्णयों को प्रभावित करेंगे। इस परस्पर निर्भरता की नव-क्लासिकी सिद्धान्त द्वारा उपेक्षा की गई है।
8. **अल्प-एकाधिकार फर्म पर लागू नहीं**—वास्तव में आर्थिक सिद्धान्त में अधिकतम लाभ का उद्देश्य पूर्णरूप से प्रतियोगी अथवा एकाधिकारी अथवा एकाधिकारी प्रतियोगात्मक फर्मों के लिए है। लेकिन अल्प-एकाधिकार फर्म के विषय में इसकी आलोचना के कारण इसे छोड़ दिया गया है। इस प्रकार इस सिद्धान्त में अर्थशास्त्रियों द्वारा जो विभिन्न उद्देश्य लाए गए हैं वे अल्प-एकाधिकार अथवा द्वि-एकाधिकार से ही सम्बन्ध रखते हैं।
9. **विभिन्न उद्देश्य**—नव-क्लासिकी फर्मों तथा वर्तमान निगमों के उद्देश्यों के बीच अन्तर का आधार इस तथ्य से उत्पन्न होता है कि अधिकतम लाभ का उद्देश्य उद्यमी के व्यवहार से सम्बन्धित है जबकि वर्तमान निगम शेयरधारकों और प्रबन्धकों की अलग-अलग भूमिका के कारण भिन्न उद्देश्यों से प्रेरित होते हैं। इसमें शेयरधारक व्यावहारिक रूप से प्रबन्धकों की कार्यवाही पर कोई प्रभाव नहीं डालते। सन् 1932 के प्रारम्भ में '**बर्ले और मीन्स**' ने बताया कि प्रबन्धकों के उद्देश्य शेयरधारकों से भिन्न होते हैं। प्रबन्धकों की अधिकतम लाभ प्राप्त करने में कोई रुचि नहीं होती। वे फर्म को शेयरधारकों के स्थान पर अपने हित में चलाते हैं। शेयरधारक प्रबन्धकों पर अधिक प्रभाव नहीं डाल सकते क्योंकि उन्हें फर्मों के विषय में पर्याप्त जानकारी नहीं होती। अधिकतर शेयरधारक फर्म की वार्षिक आम बैठक में उपस्थित नहीं हो सकते। इस प्रकार, वर्तमान कम्पनियाँ अपने आन्तरिक संगठन से सम्बन्धित उद्देश्यों से प्रेरित होती हैं।

प्र.7. पैमाने की बचतों से आप क्या समझते हैं? इसके प्रकार लिखिए।
What do you understand by Economies of Scale? Write its types.

उत्तर

पैमाने की बचतें
(Economies of Scale)

जब बड़े पैमाने पर उत्पादन होता है, तो एक ओर तो वस्तुओं का उत्पादन शीघ्रता से होता है तथा दूसरी ओर वस्तु की गुणवत्ता श्रेष्ठ रखते हुए लागत में कमी करना सम्भव हो जाता है। श्रेष्ठ वस्तु का कम लागत पर उत्पादन होने से उत्पादकों, श्रमिकों, उपभोक्ताओं एवं पूरे समाज को लाभ होता है। इसका कारण बड़े पैमाने की बचतों का प्राप्त होना है। ये बचतें कम्पनी की उत्पादन लागतों को घटाने एवं उत्पादन क्षमता को बढ़ाने में सहायक होती हैं।

पैमाने की बचतों के प्रकार
(Types of Economies of Scale)

प्रो० मार्शल द्वारा पैमाने की बचतों को दो वर्गों में रखा गया है, जो निम्न प्रकार हैं—
I. आन्तरिक बचतें, II. बाह्य बचतें।

I. आन्तरिक बचतें (Internal Economies)

आन्तरिक बचतें वे बचतें होती हैं जो किसी कम्पनी को उस समय प्राप्त होती हैं जब उत्पादन लागतें कम हो जाती हैं एवं उत्पादन बढ़ जाता है। ये बचतें किसी एक कम्पनी को उसकी आन्तरिक व्यवस्था तथा संगठनात्मक कुशलता के कारण प्राप्त होती हैं। आकार में वृद्धि के साथ-साथ ये बचतें भी बढ़ती जाती हैं।

आन्तरिक बचतों के कारण—आन्तरिक बचतें निम्नलिखित दो कारणों से प्राप्त होती हैं—

1. **अविभाज्यताएँ**—उत्पादन के अनेक साधन अविभाज्य होते हैं फिर भी कुछ साधन-प्रबन्धक, मशीन, विपणन, वित्त शोध तथा अनुसन्धान (अविभाज्य साधन) पर्याप्त रूप से बड़े उत्पादन में ही अधिकतम कुशलता के साथ प्रयोग में लाए जा सकते हैं। इसलिए जब उत्पादन बढ़ता है तो अपेक्षाकृत कम क्षमता पर कार्यशील इन अविभाज्य साधनों को उनकी पूर्ण क्षमता के साथ प्रयुक्त किया जा सकता है। जब इनका पूरा-पूरा उपयोग होने लगता है तो इनके ऊपर लगी लागत अधिक इकाइयों पर विस्तारित हो जाती है जिसके फलस्वरूप प्रति इकाई लागत कम हो जाती है।
2. **विशिष्टीकरण**—जब किसी फर्म का आकार बढ़ता है तो उसका केवल उत्पादन ही नहीं बढ़ता बल्कि कच्चे माल की मात्रा एवं श्रमिकों की संख्या भी बढ़ती है, फलस्वरूप श्रम विभाजन आवश्यक हो जाता है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक श्रमिक को एक विशिष्ट कार्य सौंपा जाता है तथा अधिक कुशलता के लिए प्रक्रियाओं को उपक्रियाओं में विभक्त कर दिया जाता है। अधिक कुशल हो जाने पर श्रमिक उस कार्य को अल्प समय में करके अधिक उत्पादन कर लेता है जिससे वस्तु की लागत न्यून हो जाती है। साथ ही, आकार में वृद्धि के साथ साधारण यन्त्रों के स्थान पर विशिष्ट यन्त्रों का प्रयोग होने लगता है, जिससे उत्पादन की कुशलता बढ़ जाती है एवं लागत कम हो जाती है।

आन्तरिक बचतों के प्रकार—किसी कम्पनी के विस्तार के परिणामस्वरूप उपलब्ध होने वाली आन्तरिक बचतें निम्न प्रकार की होती हैं—

1. **तकनीकी बचतें**—(i) महँगे एवं उत्कृष्ट प्लाण्ट तथा उपकरणों के प्रयोग से उत्पादन की प्रति इकाई लागत कम हो जाती है। (ii) बड़ी मशीनों की प्रचालन लागत अपेक्षाकृत कम आती है। (iii) उत्पादन की भिन्न-भिन्न प्रक्रियाओं को सम्बद्ध करके बड़ी कम्पनी अपनी उत्पादन लागत घटा सकती है। (iv) कम्पनी अपने अवशेष पदार्थों को उपोत्पाद के रूप में उपयोग कर सकती है। (v) उत्पादन प्रक्रियाओं को उपक्रियाओं में विभाजित करके कम्पनी अपनी उत्पादन क्षमता बढ़ा सकती है एवं प्रति इकाई उत्पादन लागत कम कर सकती है।
2. **विपणन की बचतें**—एक बड़ी कम्पनी अपनी आदाओं की अच्छी किस्म को शीघ्र एवं सस्ती दर पर थोक में खरीदती है। उत्पादन की अच्छी किस्म, पैकिंग तथा विज्ञापन पर प्रति इकाई लागत में कमी आती है।
3. **प्रबन्धकीय बचतें**—प्रकार्यात्मक विशिष्टीकरण के कारण प्रबन्धन की प्रति इकाई लागत कम हो जाती है।
4. **वित्तीय बचतें**—अधिक साख एवं परिसम्पत्ति होने के कारण बड़ी कम्पनी कम ब्याज की दर पर अधिक धन प्राप्त कर सकती है।

TOUCH 'n PASS

5. **जोखिम उठाने की बचतें**—एक बड़ी कम्पनी विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन करके उन्हें भिन्न-भिन्न बाजारों में बेचकर अपनी जोखिमों को घटा सकती है।
6. **अनुसन्धान की बचतें**—अधिक साधन सम्पन्न होने के कारण एक बड़ी कम्पनी अपनी अनुसन्धानशाला स्वयं स्थापित कर सकती है एवं प्रशिक्षित शोधकर्ता भी रख सकती है।
7. **कल्याण की बचतें**—एक बड़ी कम्पनी अनेक कल्याणकारी तथा सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ चलाकर अपने श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि करके उत्पादन बढ़ा सकती है एवं प्रति इकाई लागत कम कर सकती है।

II. बाह्य बचतें (External Economies)

बाह्य बचतें उन्हें कहते हैं जो अनेक कम्पनियों अथवा उद्योग के समूह के उत्पादन के पैमाने में वृद्धि के फलस्वरूप अनेक कम्पनियों अथवा उद्योगों को प्राप्त होती है। कभी-कभी एक कम्पनी की आन्तरिक बचतें दूसरी कम्पनियों के लिए बाह्य बचतें बन जाती हैं जैसे किसी बैंक की शाखा के एक स्थान पर खुलने से उसके लाभ सभी कम्पनियों को प्राप्त होते हैं।

महत्त्वपूर्ण बाह्य बचतें निम्नलिखित हैं—

1. **संकेन्द्रण की बचतें**—एक उद्योग के संकेन्द्रण की बचतें हैं—(i) सभी फर्मों का कुशल प्रबन्धन, (ii) परिवहन की विशेष सुविधाएँ, (iii) वित्तीय संस्थाओं की सुविधाएँ, (iv) पर्याप्त मात्रा में ऊर्जा की उपलब्धि, (v) सहायक उद्योगों का विकास।
2. **सूचना की बचतें**—(i) अनुसन्धानशालाओं की स्थापना, (ii) ऊँचे वेतन पर अनुभवी शोधकर्ताओं की नियुक्ति, (iii) पत्रिकाओं का प्रकाशन, (iv) सूचना केन्द्रों की स्थापना। इनका लाभ सभी फर्मों को प्राप्त होता है।
3. **कल्याणकारी बचतें**—(i) श्रमिकों के लिए आवास भवनों का निर्माण, (ii) जनस्वास्थ्य, मनोरंजन तथा स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धि। ये सुविधाएँ सभी फर्मों को कुशल तथा प्रशिक्षित श्रमिक उपलब्ध कराने में सहायक होती हैं, जिससे उत्पादन क्षमता बढ़ती है।
4. **विशिष्टीकरण की बचतें**—उद्योग का आकार बढ़ने पर उत्पादन एवं वितरण की सभी प्रक्रियाओं में विशेषीकरण हो जाता है, जिसका लाभ सम्पूर्ण उद्योग को मिलता है।

प्र.8. पूँजी प्रधान तकनीक की परिभाषा देते हुए श्रम प्रधान व पूँजी प्रधान तकनीक के पक्ष में तर्क दीजिए।
Defining Capital Intensive Technique, give arguements in favour of Labour Intensive Technique and Capital Intensive Technique.

उत्तर

पूँजी प्रधान तकनीक
(Capital Intensive Technique)

पूँजी-प्रधान तकनीक का अर्थ—पूँजी-प्रधान तकनीक वह तकनीक है जिसमें सापेक्षिक रूप से पूँजी का अधिक और श्रम का कम प्रयोग किया जाता है अर्थात् जिसमें अधिक पूँजी को कम श्रम-मात्रा के साथ मिलाया जाता है। **प्रो० मिन्ट** के अनुसार, "उत्पादन की दृष्टि से पूँजी-प्रधान तरीके उपभोगीय वस्तुओं को पैदा करने के आधुनिक फैक्टरी के तरीकों व आर्थिक संरचना के निर्माण के यान्त्रिक तरीकों को बताते हैं। इन तरीकों में श्रम की कम लागत, किन्तु आर्थिक उत्पादकता होने के कारण, पूँजी की प्रति इकाई के पीछे शुद्ध उपज सापेक्षिक रूप से अधिक हुआ करती है।" स्पष्ट है कि पूँजी-प्रधान तकनीक श्रम की अपेक्षा पूँजी पर अधिक निर्भर करती है इसलिए इसे पूँजी सघन या 'श्रम बचाव उपाय' (labour saving devices) भी कहा जाता है। इस तकनीक के उत्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव को रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट किया गया है।

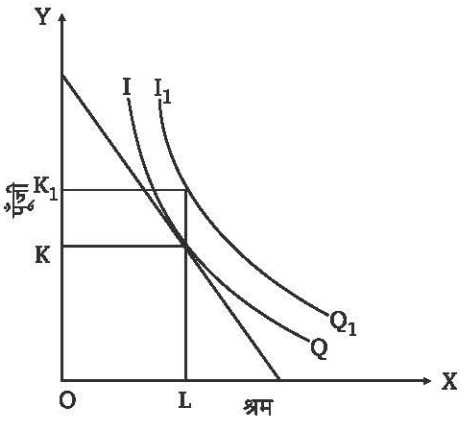

चित्र : पूँजी प्रधान तकनीक

संलग्न रेखाचित्र में IQ वक्र उत्पादन के प्रारम्भिक स्तर को बताता है जो अर्थव्यवस्था में पूँजी की OK मात्रा और श्रम की OL मात्रा के संयोग द्वारा उत्पन्न किया जा रहा है। अब उत्पादन की नई तकनीक अपनाने पर, श्रम की उतनी ही मात्रा अर्थात् OL और पूँजी की अधिक मात्रा अर्थात् OK_1 का प्रयोग करके उत्पादन का ऊँचा स्तर प्राप्त किया जा सकता है। जिसे I_1Q_1 वक्र द्वारा दिखाया गया है।

श्रम-प्रधान तकनीक के पक्ष में तर्क
(Arguments in Favour of Labour Intensive Technique)

श्रम-प्रधान तकनीक के अपनाए जाने के पक्ष में दिए जाने वाले तर्क निम्नलिखित हैं—

1. **रोजगार तर्क**—अल्प-विकसित देशों में मानव शक्ति का आधिक्य होने के कारण बेरोजगारी की समस्या बहुतायत से पाई जाती है। छिपी हुई बेरोजगारी तो इस प्रकार के देशों की मुख्य विशेषता मानी जाती है। ऐसी हालत में श्रम-प्रधान तकनीक को अपनाया जाना अति आवश्यक हो जाता है ताकि प्रचुर मात्रा में पाई जाने वाली श्रम-शक्ति का सदुपयोग करके बेरोजगारी की समस्या को हल किया जा सके।
2. **पूँजी का सर्वोत्तम उपयोग**—अल्प-विकसित देशों में पूँजी तथा साहसिक क्षमता का सर्वथा अभाव होता है। अत: इन देशों में श्रम-प्रधान तकनीक के अपनाने का लाभ यह होगा कि पूँजी की सीमित मात्रा का अधिक आवश्यक कार्यों में सदुपयोग किया जा सकेगा।
3. **उत्पादन की सस्ती तकनीक**—निर्धन देशों में पूँजी महंगी और श्रम सस्ता होता है। यहाँ तक कि श्रम की कीमत शून्य होने की प्रवृत्ति रखती है। इसलिए इन देशों को चाहिए कि ये उच्च श्रम-पूँजी अनुपात को प्राथमिकता दें ताकि अर्थव्यवस्था पर आर्थिक दबाव कम-से-कम पड़ सकें।
4. **विदेशी विनिमय की बचत**—श्रम-प्रधान तकनीक में प्रयुक्त होने वाले औजार व मशीनें साधारण किस्म की होती हैं जिन्हें देश में ही उत्पादित किया जा सकता है, जबकि पूँजी-प्रधान तकनीक में प्रयोग की जाने वाली भारी मशीनों को विदेशों से ही आयात करना पड़ता है। अत: श्रम-प्रधान तकनीक के प्रयोग में विदेशी विनिमय की बचत की जा सकती है जिससे भुगतान सन्तुलन की स्थिति प्रतिकूल नहीं हो पाती।
5. **मुद्रा प्रसार पर रोक**—विकासशील अर्थव्यवस्था में श्रम-प्रधान तकनीक आवश्यक रूप से मुद्रा-प्रसारित दबावों को कम करती है। इसका कारण यह है कि श्रम-प्रधान तकनीक अपनाने पर उपभोक्ता वस्तुओं की पूर्ति शीघ्र तथा बड़ी मात्रा में होने लगती है जिससे मुद्रा-प्रसार की सम्भावना कम हो जाती है।
6. **उपभोग का उच्च-स्तर**—श्रम-प्रधान तकनीक का एक अनुकूल प्रभाव उपभोग के वर्तमान स्तर से ऊँचा उठाने का होता है। यह तकनीक मजदूरी के स्तर को ऊँचा उठाने की प्रवृत्ति रखती है जिसमें उपभोग पर व्यय बढ़ने लगता है।
7. **आर्थिक समानता**—उत्पादन की यह तकनीक अधिक रोजगार उत्पन्न करने के साथ-साथ उपलब्ध राष्ट्रीय आय को अधिक हाथों में वितरित करने की प्रवृत्ति रखती है। फलस्वरूप समाज में आय का वितरण समान होता है और आर्थिक विषमताएं पनपने नहीं पाती।
8. **मितव्ययिता**—श्रम-प्रधान तकनीक का एक लाभ यह बताया गया है कि इस तकनीक के अपनाए जाने पर अर्थव्यवस्था की सामाजिक व आर्थिक लागत (social and economic cost) कम हो जाती है।
9. **विकेन्द्रित समाज की स्थापना**—श्रम-प्रधान तकनीक का सम्बन्ध अधिकतर छोटे उद्योगों से होता है जिसके परिणामस्वरूप देश में आर्थिक दृष्टि से विकेन्द्रित समाज की स्थापना हो पाती है।
10. **औद्योगीकरण के दोषों से छुटकारा**—श्रम-प्रधान तकनीक कुटीर व लघु उद्योगों के विकास पर आधारित होने के कारण औद्योगीकरण के दोषों से अर्थव्यवस्था को दूर रखती है।

पूँजी-प्रधान तकनीक के पक्ष में तर्क
(Arguments in Favour of Capital Intensive Technique)

पूँजी-प्रधान तकनीक के पक्ष में दिए जाने वाले तर्क निम्नलिखित हैं—

1. **तीव्र आर्थिक विकास**—पूँजी-प्रधान तकनीक के अपनाए जाने पर आर्थिक विकास अधिक तेजी के साथ होता है।

2. **जीवन-स्तर में वृद्धि**—पूँजी-प्रधान तकनीक में बड़े पैमाने पर उत्पादन होने से प्रति इकाई उत्पादन लागत कम आती है। फलस्वरूप नीची कीमत पर अधिक वस्तुओं का उपभोग सम्भव होने के कारण लोगों का रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठने लगता है।
3. **उत्पादकता में वृद्धि**—आर्थिक विकास की मुख्य कसौटी प्रति-श्रमिक उत्पादकता में वृद्धि होती है। इतना ही नहीं, पूँजी का निर्माण प्रति-श्रमिक उत्पादकता में वृद्धि होने पर ही सम्भव हो सकता है और यह कहना व्यर्थ न होगा कि पूँजी-प्रधान तकनीक के अन्तर्गत प्रति-श्रमिक उत्पादकता अधिक तेजी से साथ बढ़ती है।
4. **श्रम-शक्ति का उचित उपयोग**—पूँजी-प्रधान तकनीक के पक्ष में एक तर्क यह भी दिया गया है कि अल्प-विकसित देशों में श्रम का आधिक्य एक अस्थायी स्थिति है और लम्बे समय तक विकास कार्य करने पर, एक ऐसी स्थिति आ सकती है कि जब श्रम सुलभ साधन न रहकर सापेक्षिक रूप में एक दुर्लभ साधन हो जाए। अत: इन देशों के लिए एक विवेकपूर्ण नीति यह मानी जाएगी कि वे शुरू से ही 'श्रम-बचाव वाले उपायों' (labour-saving devices) अर्थात् पूँजी-प्रधान तकनीकों का ही अधिक प्रयोग करें।
5. **रोजगार में वृद्धि**—कुछ लोगों का मत है कि पूँजी-प्रधान तकनीक में रोजगार वृद्धि की सम्भावना अधिक पाई जाती है। चूंकि इस तकनीक में श्रम-प्रधान तकनीक की अपेक्षा विकास की दर अधिक तेजी के साथ बढ़ती है जिससे परिणामस्वरूप 'दीर्घकाल' में श्रम-शक्ति को रोजगार के अधिक सुअवसर प्राप्त होने लगते हैं।
6. **तकनीकी प्रगति के लाभ**—पूँजी प्रधान तकनीकों के प्रयोग का प्रभाव ऐसी कुशल उत्पादन इकाइयों को उत्पन्न करने का होता है जो सबसे आधुनिक तकनीक का उपयोग कर रही होती है। फलस्वरूप देश को नवीनतम व आधुनिक तकनीक के सम्पूर्ण लाभ प्राप्त होने लगते हैं।
7. **श्रम-प्रधान अन्ततः पूँजी-प्रधान तकनीक ही है—प्रो० बरान** की दृष्टि में श्रम-प्रधान तकनीक सही अर्थों में पूँजी-प्रधान तकनीक ही है। बरान महोदय का कहना है कि श्रम-प्रधान तकनीक के अपनाए जाने पर ग्रामीण जनसंख्या, रोजगार प्राप्त करने की दृष्टि से, शहरी क्षेत्र की ओर प्रवास (migrate) करने लगती है। चूंकि शहरों में प्रवासित इस श्रम-शक्ति के लिए विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ जैसे—मकान, चिकित्सा, शिक्षा व अन्य समाज कल्याण सम्बन्धी सुविधाओं, आदि की व्यवस्था करनी पड़ती है जिस पर भारी मात्रा में व्यय करना होगा। यदि गहराई से विचार किया जाए तो ऐसी स्थिति में उत्पादन की प्रति-इकाई के पीछे उससे कहीं अधिक पूँजी का व्यय करना पड़ेगा जितना कि वैकल्पिक पूँजी-प्रधान तकनीक में व्यय करना पड़ता। अत: पूँजीगत विनियोग व लागत की दृष्टि से **प्रो० बरान** का कहना है कि 'श्रम-प्रधान और पूँजी-प्रधान में कोई विशेष अन्तर नहीं है।' इसलिए यह अधिक उचित होगा कि तीव्र आर्थिक विकास हेतु, प्रारम्भ से ही पूँजी-प्रधान तकनीक को स्वीकार कर लिया जाए।
8. **अध:संरचना का विकास**—अध:संरचना का विकास किसी भी देश की आर्थिक प्रगति की एक पूर्व-शर्त है। चूंकि अध:संरचना का विकास अथवा 'सामाजिक उपरिपूँजी' के विकास कार्यक्रम स्वभावत: ही पूँजी-गहन होते हैं इसलिए इन देशों के लिए पूँजी-प्रधान तकनीकों का अपनाया जाना एक अनिवार्य आवश्यकता है।
9. **विकासमय वातावरण**—अधिकांश अल्प-विकसित देशों में जनसंख्या की वृद्धि-दर बहुत ऊँची होती है। जब तक पूँजी श्रम अनुपात में वृद्धि नहीं की जाएगी, तब तक प्रति इकाई उपज में बढ़ोतरी नहीं हो सकती और इसमें पूँजी-निर्माण की दर भी साधारणतया नीची बनी रहेगी। अत: सही अर्थों में, विकासमय वातावरण बनाए रखने के लिए पूँजी-प्रधान तकनीक का अपनाया जाना अत्यन्त आवश्यक है।
10. **मितव्ययिता**—उत्पादकता की दृष्टि से पूँजी-प्रधान तकनीक श्रम-प्रधान तकनीक की अपेक्षा अधिक लाभप्रद मानी जाती है। इसका कारण, पूँजी-प्रधान तकनीक में बड़े पैमाने के उत्पादन के अन्तर्गत प्राप्त होने वाली मितव्ययिताओं के फलस्वरूप, लागत की अपेक्षा उत्पादकता में अधिक तेजी से वृद्धि होती है।
11. **विकास प्रक्रिया पर अधिक व्यापक प्रभाव**—प्रो० हर्षमैन का मत है कि पूँजी-प्रधान तकनीक का आर्थिक विकास की प्रक्रिया पर एक व्यापक तथा शक्तिशाली प्रभाव पड़ता है। अनेक श्रम-प्रधान परियोजनाओं की अपेक्षा कुछ गिनी-चुनी पूँजी प्रधान परियोजनाओं का अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाला 'कुल प्रभाव' (total impact) अधिक होता है और इसलिए

उन्हें असफल नहीं होने दिया जाता, बल्कि उनकी सफलता के लिए सम्पूर्ण प्रयास किए जाते हैं। उदाहरणार्थ, जब सरकार किसी बड़े इस्पात के कारखाने का निर्माण करती है तो वह करोड़ों रुपए की लागत वाले उस उपक्रम की असफलता को सहन नहीं कर सकती, बल्कि उसको सफल बनाने के लिए वह उससे कहीं अधिक बाध्य हो जाती है जितनी कि अनेक छोटी-छोटी परियोजनाओं में लगाई गई राशि के लिए वह चिन्तित होती।

12. **कार्यकुशलता-वृद्धि में सहायक**—पूँजी-प्रधान तकनीकें अनिवार्य रूप से कुशलता में वृद्धि लाती हैं और अप्रचलित एवं अरुचिकर कार्यों के प्रशिक्षण व प्रबन्धन में सहायक सिद्ध होती हैं। इस प्रकार पूँजी-प्रधान तकनीकें कार्यक्षमता-वृद्धि (enhanced efficiency) तथा समन्वय प्रवर्तन (co-ordination promoting) के दो गुणों पर आधारित हैं।

प्र.9. उत्पत्ति ह्रास नियम की व्याख्या करते हुए इसकी विभिन्न अवस्थाओं पर प्रकाश डालिए।
Explaining Law of Diminishing Returns, throw light on its different returns.

उत्तर

उत्पत्ति ह्रास नियम की व्याख्या
(Explanation of Law of Diminishing Returns)

प्रो० स्टिगलर के अनुसार, "जब कुछ उत्पत्ति साधनों को स्थिर रखकर एक उत्पत्ति साधन की इकाइयों में समान वृद्धि की जाए तब एक निश्चित बिन्दु के बाद उत्पादन की उत्पन्न होने वाली वृद्धियां कम हो जाएंगी अर्थात् सीमान्त उत्पादन घट जाएगा।"

श्रीमती जॉन रॉबिन्सन के अनुसार, "उत्पत्ति ह्रास नियम यह बताता है कि यदि किसी एक उत्पत्ति के साधन की मात्रा को स्थिर रखा जाए तथा अन्य साधनों की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि की जाए तो एक निश्चित बिन्दु के बाद उत्पादन में घटती दर से वृद्धि होती है।"

उपर्युक्त सिद्धान्त तीन शर्तों पर आधारित हैं—

1. एक साधन के अतिरिक्त सभी अन्य साधनों की मात्राओं को स्थिर मान लिया जाए।
2. तकनीकी ज्ञान भी स्थिर हो।
3. साधनों के संयोग का अनुपात परिवर्तनशील हो।

परिवर्तनशील अनुपात का नियम इस तथ्य पर आधारित है कि उत्पत्ति के साधन परस्पर स्थानापन्न नहीं हैं। परिवर्तनशील अनुपात के नियम की स्पष्ट व्याख्या निम्नलिखित बिन्दुओं की सहायता से की जा सकती है—

1. **कुल उत्पादकता**—किसी परिवर्तनशील साधन की निश्चित इकाइयों के अन्य स्थिर साधन इकाइयों के साथ प्रयोग से जो उत्पादन प्राप्त होता है, उसे कुल उत्पादकता कहते हैं। कुल उत्पादकता मुख्यत: परिवर्तनशील साधन की मात्रा पर निर्भर करती है,

   अर्थात् $TP = f(TVF)$

   जहाँ TVF = कुल परिवर्तनशील साधन

2. **औसत उत्पादकता**—औसत उत्पादकता विभिन्न उत्पादन स्तरों पर उत्पादन-साधन अनुपात (Output-Input ratio) है।

   दूसरे शब्दों में, $$\text{औसत उत्पादकता } (AP) = \frac{\text{कुल उत्पादकता } (TP)}{\text{कुल परिवर्तनशील साधन } (TVF)}$$

3. **सीमान्त उत्पादकता**—परिवर्तनशील साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग से, जबकि अन्य साधन स्थिर हैं कुल उत्पादन में जो वृद्धि होती है उसे उस साधन की सीमान्त उत्पादकता कहते हैं।

   $$MP_n = TP_n - TP_{(n-1)}$$

   जहाँ $MP_n = n$वें साधन की सीमान्त उत्पादकता

   $TP_n = n$ साधनों की कुल उत्पादकता

   $TP_{n-1} = (n-1)$ साधनों की कुल उत्पादकता

परिवर्तनशील अनुपात नियम को कुल उत्पादकता (*TP*), औसत उत्पादकता (*AP*) तथा सीमान्त उत्पादकता (*MP*) की सहायता से अग्र तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

तालिका

स्थिर साधन	परिवर्तनशील साधन *TVF*	कुल उत्पादकता *TP*	औसत उत्पादकता $AP = \frac{TP}{TVF}$	सीमान्त उत्पादकता *MP*	अवस्थाएँ (Stages)
1	1	6	6	6	I Stage (उत्पादन की पहली अवस्था)
1	2	16	8	10	
1	3	30	10	14	→ मोड़ का बिन्दु
1	4	40	10	10	II Stage (उत्पादन की दूसरी अवस्था)
1	5	45	9	5	
1	6	48	8	3	
1	7	48	6.8	0	III Stage (उत्पादन की तीसरी अवस्था)
1	8	44	5.5	−4	
1	9	38	4.2	−6	

तालिका उत्पादन की तीन अवस्थाओं का स्पष्टीकरण देती है—

प्रथम अवस्था में स्थिर साधन के साथ जैसे-जैसे परिवर्तनशील साधन की ईकाइयाँ प्रयोग में बढ़ाई जाती हैं हमें बढ़ता हुआ उत्पादन प्राप्त होता है जिसका प्रमुख कारण है कि परिवर्तनशील साधन बढ़ने पर स्थिर साधनों का पूर्ण विंदोहन (Perfect Utilisation) सम्भव हो पाता है। इसी कारण आरम्भ में कुल उत्पादकता, औसत उत्पादकता तथा सीमान्त उत्पादकता तीनों बढ़ते हैं।

प्रथम अवस्था में दो भाग हैं। प्रथम भाग में सीमान्त उत्पादकता तथा औसत उत्पादकता बढ़ती है। परिवर्तनशील साधन की तीसरी इकाई पर सीमान्त उत्पादकता (*MP*) अधिकतम है। चौथी इकाई के लिए सीमान्त उत्पादकता घट जाती है किन्तु औसत उत्पादकता (*AP*) बढ़ती ही रहती है। प्रथम अवस्था में आरम्भिक भाग में सीमान्त उत्पादकता तथा औसत उत्पादकता दोनों बढ़ती हैं, किन्तु द्वितीय चरण में सीमान्त उत्पादकता (*MP*) घटते हुए होने पर भी औसत उत्पादकता (*AP*) बढ़ती है। प्रथम चरण और द्वितीय चरण के बीच के बिन्दु को मोड़ का बिन्दु (Point of Inflexion) कहते हैं। प्रथम अवस्था का समापन उस बिन्दु पर होता है जहाँ औसत उत्पादकता (*AP*) अधिकतम हो जाए। प्रथम अवस्था में आरम्भ से अन्त तक औसत उत्पादकता (*AP*) निरन्तर बढ़ती हुई है इसलिए इस अवस्था को बढ़ते औसत उत्पादन की अवस्था (Stage of Increasing Average Return) अथवा उत्पत्ति के बढ़ते प्रतिफल (Increasing Return Stage) कहा जाता है।

द्वितीय अवस्था में उत्पादन (*AP*) तथा सीमान्त उत्पादन (*MP*) दोनों घट रहे हैं। इस अवस्था का समापन उस बिन्दु पर होता है जहाँ सीमान्त उत्पादकता (*MP*) शून्य हो जाती है। इस अवस्था में कुल उत्पादन (*TP*) भी बढ़ता है किन्तु घटती दर से बढ़ता है क्योंकि इस अवस्था में सीमान्त उत्पादन (*MP*) घट रहा है, किन्तु धनात्मक है (देखें तालिका 1)।

इस अवस्था में औसत उत्पादन (*AP*) घटता हुआ होने के कारण इस अवस्था को घटते औसत उत्पादन की अवस्था (Stage of Decreasing Average Product) भी कहा जाता है।

तृतीय अवस्था में सीमान्त उत्पादकता शून्य से कम अर्थात् ऋणात्मक हो जाती है (देखें तालिका 1)।

इसमें सीमान्त उत्पादकता (*MP*) के ऋणात्मक (Negative) हो जाने के कारण कुल उत्पादकता (*TP*) घटने लगती है। तालिका में यह अवस्था प्रदर्शित की गई है। घटती कुल उत्पादकता तथा ऋणात्मक सीमान्त उत्पादकता के कारण इस अवस्था को 'ऋणात्मक प्रतिफल की अवस्था' (Stage of Negative Returns) कहा जाता है।

प्र.10. हानि न्यूनीकरण पर टिप्पणी लिखिए।

Write a note on Minimising Losses.

उत्तर

हानि न्यूनीकरण
(Minimising Losses)

फर्म का उद्देश्य लाभ अधिकतम करना होता है परन्तु यदि किन्हीं परिस्थितियों में हानि की स्थिति उत्पन्न होती है तो वह उसे न्यूनतम करने का प्रयास करती है। पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म की सन्तुलन की शर्त, $MR = MC$ तथा सन्तुलन बिन्दु पर MC वक्र, MR वक्र को नीचे से आकर काटे। लाभ की अधिकतमकरण की शर्त है तो यह हानि के न्यूनीकरण की भी शर्त है। इसकी व्याख्या निम्नवत की जा सकती है—

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्म के अल्पकालीन सन्तुलन विश्लेषण में जब सन्तुलन की उक्त शर्तें पूरी हो रही होती हैं तो यह आवश्यक नहीं है कि फर्म को लाभ ही होगा। फर्म को हानि भी उठानी पड़ सकती है। परन्तु इतना अवश्य है कि यदि लाभ होगा तो अधिकतम होगा तथा यदि हानि होती है तो वह न्यूनतम होगी। इस तरह, जहाँ सन्तुलन की ये शर्तें—(i) $MR = MC$ तथा (ii) MC वक्र का MR वक्र को नीचे से आकर काटना फर्म के अधिकतम लाभ की शर्तें हैं वहीं ये शर्तें न्यूनतम हानि की भी शर्तें हैं। इस स्थिति को चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

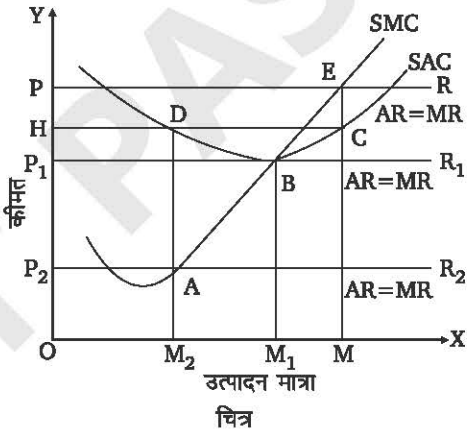

चित्र

चित्र में अल्पकालीन AR, MR तथा MC वक्रों के साथ-साथ औसत लागत वक्र SAC को भी प्रदर्शित किया गया है। बाजार कीमत OP पर फर्म OM मात्रा का उत्पादन करती है तथा E बिन्दु पर सन्तुलन में रहती है, क्योंकि बिन्दु E पर फर्म के सन्तुलन की दोनों शर्तें पूरी हो रही हैं। इस स्थिति में फर्म की प्रति इकाई औसत लागत CM तथा प्रति इकाई अधिसामान्य लाभ EC है। इस तरह इस स्थिति में फर्म को $CEPH$ आयत के बराबर कुल अधिसामान्य लाभ प्राप्त हो रहा है। चूंकि उद्योग की सभी फर्मों की लागतें बिल्कुल एक जैसी हैं (पूर्व धारणा के अनुसार)। अत: अल्पकाल में कीमत OP पर सभी फर्में अधिसामान्य लाभ ही प्राप्त करेंगी। उद्योग की फर्मों को अधिसामान्य लाभ प्राप्त करते देख बाहर की फर्में उद्योग में आने को तत्पर होंगी। परन्तु जैसा कि हम जानते हैं अल्पकाल में इतना समय नहीं होता कि उद्योग में नई फर्में प्रवेश कर सकें। अत: उद्योग में मौजूदा सभी फर्में अल्पकाल में अधिसामान्य लाभ प्राप्त करती रहेंगी।

यदि बाजार कीमत गिरकर OP_1 हो जाए तो फर्म OM_1 मात्रा का उत्पादन कर बिन्दु B सन्तुलन में होगी। क्षैतिज रेखा P_1R_1 कीमत P_1 पर फर्म के AR तथा MR वक्रों को प्रदर्शित करती है। संयोगवश बिन्दु B फर्म के SAC का न्यूनतम बिन्दु है तथा इसी बिन्दु पर AR वक्र SAC वक्र की स्पर्श रेखा है। इसका अर्थ यह हुआ कि सन्तुलन की इस स्थिति में फर्म की औसत लागत = औसत आय। इस स्थिति में OM_1 उत्पादन मात्रा पर फर्म केवल अपनी लागत ही निकाल पाती है। परन्तु जैसा कि हम जानते हैं औसत लागत में सामान्य लाभ भी सम्मिलित रहता है। इस प्रकार, इस स्थिति में फर्म केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त कर रही है। पूर्व धारणा के अनुसार चूंकि सभी फर्मों की लागतें एक समान हैं अत: उद्योग की सभी फर्में केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त करेंगी।

इस स्थिति में न केवल फर्म बल्कि समूचा उद्योग सन्तुलन की स्थिति में होगा। अत: उद्योग में न तो कोई नयी फर्म आने का प्रयास करेगी और न ही कोई फर्म उद्योग छोड़कर जाना चाहेगी। यह उद्योग के पूर्ण सन्तुलन (full equilibrium) की दशा होती है, परन्तु यह दशा अल्पकाल में संयोगवश ही उत्पन्न हो सकती है।

अब पुन: यदि कीमत गिरकर OP_2 हो जाती है तो फर्म वस्तु की OM_2 मात्रा का उत्पादन कर A बिन्दु पर सन्तुलन में होगी। इस स्थिति में फर्म की औसत लागत DM_2 होगी जो कि औसत आय से AD अधिक होगी। इस तरह फर्म को $ADHP_2$ आयत के बराबर हानि होगी। यह अवश्य है कि यदि किसी अन्य बिन्दु पर उत्पादन होता है तो फर्म को जो हानि होगी, वह A बिन्दु पर होने वाली हानि से अधिक होगी। इस तरह सन्तुलन बिन्दु A न्यूनतम हानि का बिन्दु है।

❑

UNIT-IV

बाजार संरचना : पूर्ण एवं अपूर्ण प्रतियोगिता

Market Structure : Perfect and Imperfect Competition

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. दीर्घकाल में एक फर्म के साम्य हेतु कौन-सी दशाओं का पूरा होना आवश्यक है?

Which conditions are required to be fulfilled for a firm's equilibrium in the long-run?

उत्तर दीर्घकाल में एक फर्म के साम्य हेतु आवश्यक दशाएँ हैं—

1. $MR = MC$ 2. $AR = AC$.

प्र.2. उद्योग से आपका क्या आशय है?

What do you mean by industry?

उत्तर उद्योग ऐसी फर्मों का समूह होता है जो एकरूप वस्तुएँ उत्पादित करता है।

प्र.3. पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म का उद्देश्य बताइए।

Tell of a firm's objective in perfect competition.

उत्तर पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म का उद्देश्य—अधिकतम लाभ अर्जित करना होता है।

प्र.4. फर्म के साम्य की सामान्य दशा क्या है?

What is the normal condition for a firm's equilibrium?

उत्तर फर्म के साम्य की सामान्य दशा है—$MC = MR$.

प्र.5. एक उद्योग के साम्य से आप क्या समझते हैं?

What do you understand by an industry's equilibrium?

उत्तर बोल्डिंग के अनुसार, "एक उद्योग साम्य की स्थिति में तब कहा जाता है जबकि उसमें विस्तार या संकुचन की कोई प्रवृत्ति नहीं होती।" अर्थात् एक उद्योग साम्य की दशा में तब होगा जबकि सीमान्त फर्म को केवल 'सामान्य लाभ' प्राप्त होता हो।

एक दी हुई कीमत पर एक उद्योग साम्य की स्थिति में तब होगा जबकि उद्योग द्वारा उत्पादित वस्तु की कुल पूर्ति (S) उसकी कुल माँग (D) के समान होती है अर्थात् $S = D$ (पूर्ति = माँग)।

प्र.6. एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में लागत वक्रों की स्थिति किस प्रकार की होती है?

How is the condition of cost curves in monopolistic competition?

उत्तर एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में एक समूह की सभी फर्मों के लागत वक्र एक समान होंगे तथा समूह की संख्या परिवर्तित होने पर भी वक्र अपने स्तर पर बने रहेंगे।

प्र.7. वास्तविक जीवन में वस्तुओं के बाजारों का सर्वाधिक रूप कौन-सा पाया जाता है?

Which form of the goods markets in mostly found in actual life?

उत्तर वास्तविक जीवन में वस्तुओं के बाजारों का एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता का रूप सर्वाधिक पाया जाता है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.8. एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के प्रकृति विषयक कोई तीन प्रमुख बिन्दु लिखिए।

Write any three main thematic nature points of a monopolistic competition.

उत्तर एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के प्रकृति विषयक बिन्दु हैं—

1. एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत कुछ विक्रेता एक सीमा तक दूसरे प्रतियोगियों की तुलना में वस्तु की कीमत में थोड़ा-बहुत एकाधिकारी तत्त्व जोड़ देने की स्थिति में होते हैं।
2. एकाधिकारात्मक फर्मों के अपने-अपने माँग वक्र होते हैं एवं सन्निकट प्रतिस्थापकों के कारण वे लोचदार होते हैं।
3. एकाधिकारात्मक फर्मों के लागत वक्रों में बहुत समानता होती है।

प्र.9. प्रतिस्पर्धात्मक बाजार के कोई दो प्रमुख लक्षण बताइए।

Write any two main characteristics of competitive market.

उत्तर एक पूर्ण प्रतिस्पर्धात्मक बाजार में निम्नलिखित दो प्रमुख पारिभाषिक लक्षण होते हैं—

1. बाजार खरीददारों एवं विक्रेताओं (अर्थात् फर्मों) से मिलकर बनता है। बाजार में सभी फर्में एक विशिष्ट एकरूपात्मक (अर्थात् विभेदात्मक) वस्तु का उत्पादन करती हैं।
2. बाजार में प्रत्येक खरीददार और विक्रेता कीमत-स्वीकारक है क्योंकि एक पूर्ण प्रतिस्पर्धात्मक बाजार का प्रथम लक्षण समझने में आसान है।

प्र.10. कोई भी उद्योग साम्य की अवस्था में कब होता है?

When is any industry in a state of equilibrium?

उत्तर जब माँग एवं पूर्ति दोनों समान मात्रा में हो जाते हैं, तब एक उद्योग साम्य की अवस्था में होता है।

प्र.11. उद्योग के साम्य की अवस्था में सीमान्त फर्म को क्या लाभ प्राप्त होता है?

What is the profit of a marginal firm in a state of equilibrium in the industry?

उत्तर उद्योग के साम्य की अवस्था में सीमान्त फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होता है।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. फर्म के साम्य का अर्थ समझाइए।

Explain the meaning of a firm's equilibrium.

उत्तर जिस अवस्था में फर्म का लाभ अधिकतम होता है, उस अवस्था को फर्म का साम्य कहते हैं और जिस मात्रा का उत्पादन करने से लाभ अधिकतम होता है, उत्पादन की उस मात्रा को साम्य उत्पादन कहते हैं।

साम्य का अर्थ है, परिवर्तन की अनुपस्थिति। अत: फर्म साम्य की स्थिति में उस समय होती है, जबकि कुल उत्पादन में कोई परिवर्तन नहीं होता तथा यदि परिवर्तन किया जाता है तो कुल लाभ में कमी आ जाती है। इसलिए एक फर्म साम्य की अवस्था में तब कही जाएगी जब उसके उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन की कोई प्रवृत्ति न हो, अर्थात् साम्यावस्था में फर्म उत्पादन की वह मात्रा निश्चित करेगी, जिस पर उसको अधिकतम लाभ अथवा अधिकतम शुद्ध आय प्राप्त हो।

प्र.2. एक उद्योग के दीर्घकालीन साम्य की दशाएँ कौन-कौन सी हैं?

Which are the conditions for an industry's long-run equilibrium?

उत्तर एक उद्योग के दीर्घकालीन साम्य की निम्नलिखित दशाएँ हैं—

1. दीर्घकाल में एक उद्योग साम्य की अवस्था में तब होता है, जब उद्योग का कुल उत्पादन स्थिर रहता है। इसमें वृद्धि अथवा कमी की कोई प्रवृत्ति नहीं होती।
2. एक उद्योग के दीर्घकालीन साम्य हेतु यह आवश्यक है कि उसके अन्तर्गत सभी फर्में दीर्घकालीन साम्य की अवस्था में हों। एक फर्म के दीर्घकालीन साम्य हेतु दोहरी दशा पूरी होनी चाहिए—
   (i) $MR = MC$ अथवा $AR = MC$, (ii) $AR = AC$।

3. एक उद्योग के दीर्घकालीन साम्य हेतु यह आवश्यक है कि अल्पकालीन साम्य का भी साथ-साथ अस्तित्त्व हो।
4. पूर्ति = माँग की दशा पूरी होनी चाहिए।

प्र.3. एक उद्योग के अल्पकालीन साम्य की दशाएँ कौन-कौन सी हैं?

Which are the conditions for an industry's short-run equilibrium?

उत्तर एक उद्योग के अल्पकालीन साम्य की दशाएँ निम्नलिखित हैं—

1. अल्पकाल में एक उद्योग साम्य की अवस्था में तब होता है, जब उद्योग का उत्पादन स्थिर रहता है, उसमें वृद्धि अथवा कमी की कोई प्रवृत्ति नहीं होती।
2. एक फर्म के साम्य हेतु यह दशा पूरी होनी चाहिए $MC = MR$। एक उद्योग के अल्पकालीन साम्य हेतु यह आवश्यक है कि उसके अन्तर्गत सभी फर्में अल्पकालीन साम्य की अवस्था में हों।
3. एक उद्योग के अल्पकालीन साम्य के साथ बहुत अधिक लाभ या बहुत अधिक हानि का सहअस्तित्त्व हो सकता है।
4. एक उद्योग के अल्पकालीन साम्य के लिए $S = D$ की दशा पूरी होनी चाहिए, परन्तु अल्पकालीन साम्य हेतु केवल परिवर्तनशील साधनों को परिवर्तित करके पूर्ति (S) को माँग (D) के बराबर किया जाता है।

प्र.4. एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत सामूहिक सन्तुलन कैसा होता है? संक्षेप में लिखिए।

How is the group balance under monopolistic competition? Write in brief.

उत्तर वे समूह जिनमें बिकने वाली वस्तुएँ सन्निकट प्रतिस्थापक होती हैं तथा जिन समूहों की सुविधानुसार सदस्यता परिवर्तित होती रहती है। ऐसे सामूहिक बाजार में प्रत्येक सन्निकट प्रतिस्थापक अलग-अलग कीमत पर बिकता है। ऐसे बाजार में एक कीमत के स्थान पर एक कीमत समूह होता है। इसीलिए इसे 'समूह सन्तुलन बाजार' कहते हैं।

सामूहिक सन्तुलन का विचार जटिल नहीं है। इसके अन्तर्गत दो मात्राओं के बीच समानता की जाती है। सभी फर्मों द्वारा बेची जाने वाली विभिन्न वस्तुओं की कुल मात्रा तथा वर्तमान कीमत पर ग्राहकों द्वारा माँगी गई मात्रा के मध्य समानता स्थापित की जाती है। **प्रो० चैम्बरलिन** ने 'समूह' एवं 'उद्योग' में अन्तर बताया है। उनके अनुसार 'समूह' से आशय ऐसी अनेक फर्मों से है, जिनके बाजार आपस में परस्पर जुड़े हुए होते हैं। इसके विपरीत 'उद्योग' में दो या दो से अधिक निकट उपयोगी फर्मों के समूह पाए जाते हैं। इस प्रकार 'उद्योग' शब्द 'समूह' शब्द से अधिक व्यापक है। इसे एक उदाहरण से समझ सकते हैं जैसे पुस्तक उद्योग में बहुत समूह होते हैं जिनमें एक समूहों पाठ्यपुस्तकों में विशेषज्ञता प्राप्त है, दूसरा समूह सामान्य पुस्तकें प्रकाशित करता है। जबकि तीसरा समूह जासूसी उपन्यासों का प्रकाशन करता है। इन समूह में पायी जाने वाली फर्मों में कड़ी प्रतियोगिता होती है।

सामूहिक सन्तुलन में समूह की विभिन्न फर्मों में व्यापक अन्तर पाये जाते हैं। इस प्रकार की भिन्नताएँ आगम वक्रों तथा लागत वक्रों दोनों में ही पायी जाती हैं। दूसरे शब्दों में, एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में सामूहिक आगम वक्र तथा सामूहिक लागत वक्र का विचार नहीं होता है। इन विभिन्नताओं के कारण ही फर्मों की कीमतें, उत्पादन मात्राएँ एवं लाभ अलग-अलग होते हैं।

सामूहिक सन्तुलन की विवेचना अल्पकाल एवं दीर्घकाल के आधार पर की जा सकती है। यदि फर्में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता बाजार में अल्पकाल में असामान्य लाभ अर्जित करती हैं तब समूह में प्रवेश स्वतन्त्र होने के कारण फर्में निकट स्थापन्नों के उत्पादन के उद्देश्य से समूह में सम्मिलित होंगी। प्रतिद्वन्द्वी फर्मों के प्रवेश से समूह का माँग वक्र और अधिक लोचदार हो जाएगा क्योंकि समूह में निकट स्थानापन्न बनाने वाली फर्मों की संख्या बढ़ जाने के कारण व्यक्तिगत फर्म का बाजार में हिस्सा घट जाता है जिसके कारण व्यक्तिगत फर्म का असामान्य लाभ केवल सामान्य लाभ में बदल जाता है।

प्र.5. वस्तु-विभेद से आपका क्या आशय है? संक्षेप में विवेचना कीजिए।

What do you mean by commodity differentiation? Discuss briefly.

***अथवा* वस्तु-विभेद की व्याख्या कीजिए।** **(2021)**

***Or* Discuss commodity differentiation.**

उत्तर वस्तु-विभेद से आशय है कि समूह की फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुएँ बिल्कुल एक समान नहीं होतीं बल्कि उनमें कुछ-न-कुछ अन्तर अवश्य पाया जाता है। यह अन्तर वस्तु के गुण, रूप, आकार, पैकिंग आदि सम्बन्धी भिन्नता द्वारा उपस्थित किया जाता है। अत: यह कहा जाता है कि एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की फर्मों का उत्पादन समरूप न होकर निकट स्थानापन्न होता है। विभेदीकृत उत्पादन का अर्थ पदार्थों का पूर्णत: भिन्न होना नहीं होता वरन् उनमें सूक्ष्म अन्तर होता है। विभेदीकृत उत्पादन में वस्तु में भिन्नता वास्तविक या काल्पनिक हो सकती है। वस्तु-विभेद क्रेता को एक वस्तु का दूसरी वस्तु पर अधिमान देता है।

वस्तु-विभेद दो प्रकार से होता है—

1. **वस्तु में गुणात्मक भिन्नता**—वस्तु के आकार, रंग-रूप, डिजाइन, पैकिंग आदि में भिन्नता के कारण विभेदीकरण उपस्थित होता है।
2. **बिक्री प्रोत्साहन तकनीकों का प्रयोग**—विज्ञापन, प्रचार एवं विक्रय कला द्वारा क्रेताओं को मनोवैज्ञानिक रूप से प्रभावित करके वस्तुओं के बीच काल्पनिक अन्तर पैदा किया जाता है।

प्राय: उत्पाद भिन्नता ऊपरी भेद करके किया जाता है, जैसे पैकिंग सामग्री, पैकिंग के रंग और वस्तु के नाम में परिवर्तन करके। उत्पाद भिन्नता में प्रकाशन तथा विज्ञापन महत्त्वपूर्ण भाग हैं। प्रचार तथा विज्ञापन का उद्देश्य उपभोक्ता को यह विश्वास दिलाता है कि कोई विशेष वस्तु अन्य वस्तुओं से सर्वश्रेष्ठ है। ऐसा करने में फर्में अतिरिक्त लागतें वहन करती हैं जिन्हें विक्रय लागतें कहते हैं। इस कारण से प्रत्येक उत्पादक की औसत लागत आंशिक रूप से अन्य स्थानापन्न फर्मों की औसत लागतों पर आश्रित रहती है। इसे एक अन्य उदाहरण से स्पष्ट कर सकते हैं—जैसे बाजार में अनेक फर्में अलग-अलग ब्राण्ड के टूथपेस्ट बेचती हैं एवं विज्ञापन के माध्यम से अपने-अपने ब्राण्ड को दूसरे ब्राण्ड से श्रेष्ठतम बताकर बेचने का प्रयास करती हैं।

प्र.6. अल्पाधिकार से क्या अभिप्राय है? अल्पाधिकार तथा एकाधिकार में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

What do mean by oligopoly? Make clear the difference between oligopoly and monopoly.

उत्तर अल्पाधिकार—'Oligopoly' शब्द दो यूनानी शब्दों से मिलकर बना है—'Oligoi' एवं 'pollein'। 'Oligoi' का अर्थ है 'कुछ' और 'pollein' का अर्थ 'बेचने से' है। अल्पाधिकार अपूर्ण प्रतियोगिता का वह रूप है जिसके अन्तर्गत बाजार में कुछ थोड़ी-सी फर्में होती हैं। ये फर्में या तो सजातीय वस्तुओं का उत्पादन करती हैं या ऐसी वस्तुओं का उत्पादन करती हैं जो पूर्ण तो नहीं लेकिन निकट-स्थानापन्न अवश्य होती हैं।

अल्पाधिकार एवं एकाधिकार में अन्तर—'अल्पाधिकार' तथा 'एकाधिकार' में अन्तर यह है कि अल्पाधिकार के अन्तर्गत कुछ थोड़ी-सी फर्में बाजार में होती हैं जबकि एकाधिकार के अधीन केवल एक ही फर्म होती है।

प्र.7. अल्पाधिकार के कोई दो प्रमुख वर्गीकरण बताइए।

Mention any two main classification of oligopoly.

उत्तर अल्पाधिकार के दो प्रमुख वर्गीकरण निम्नलिखित हैं—

1. **वस्तु-विभेदीकरण के आधार पर**—इसमें भी अल्पाधिकार को दो वर्गों में विभक्त किया गया है—(i) पूर्ण या विशुद्ध अल्पाधिकार, (ii) अपूर्ण या विभेदीकृत अल्पाधिकार। जब प्रतियोगी फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुएँ, सजातीय होती हैं तब ऐसी स्थिति को 'पूर्ण या विशुद्ध अल्पाधिकारी' कहते हैं। इसके विपरीत, जब प्रतियोगी फर्में ऐसी वस्तुओं का उत्पादन करती हैं जो एक-दूसरे की पूर्ण तो नहीं लेकिन निकट-स्थानापन्न होती हैं तब ऐसी स्थिति को 'अपूर्ण या विभेदीकृत अल्पाधिकार' कहते हैं।
2. **उद्योग में प्रविष्ट होने की स्वतन्त्रता के आधार पर**—इसमें भी अल्पाधिकार को दो वर्गों में विभक्त किया गया है—(i) खुला अल्पाधिकार, (ii) बन्द अल्पाधिकार। 'खुले अल्पाधिकार' से अभिप्राय उस बाजार स्थिति से है जिसके अन्तर्गत नयी फर्में उद्योग में प्रविष्ट हो सकती हैं। इसके विपरीत, 'बन्द अल्पाधिकार' उस बाजार स्थिति की ओर संकेत करता है जिसके अन्तर्गत नयी फर्मों को बाजार में प्रविष्टि होने की स्वतन्त्रता नहीं होती।

प्र.8. क्या अल्पाधिकार के अन्तर्गत एकाधिकार का तत्त्व पाया जाता है? अल्पाधिकारी समस्या पर कौन-से सिद्धान्त लागू होते हैं?

Is the element of monopoly found under oligopoly? Which concepts are applied under oligopolistic problem?

उत्तर हाँ, अल्पाधिकार के अन्तर्गत एकाधिकार का तत्त्व भी पाया जाता है। विभेदीकृत अल्पाधिकार के अन्तर्गत बाजार में केवल थोड़ी-सी फर्में ही होती हैं। प्रत्येक फर्म एक विभेदीकृत वस्तु का ही उत्पादन करती है। चूँकि प्रत्येक फर्म बाजार में एक बड़े भाग

पर काबिज होती है एवं एक विभेदीकृत वस्तु का उत्पादन करती है इसलिए जहाँ तक कीमत तथा उत्पादन-निर्धारण का सम्बन्ध है, यह अपने सीमित क्षेत्र में एक छोटे-से एकाधिकारी के समान व्यवहार करती है। अल्पाधिकार के अन्तर्गत एकाधिकार का तत्त्व उस समय और भी स्पष्ट तथा उल्लेखनीय हो जाता है जब सम्बन्धित फर्म के माल के प्रति ग्राहकों के लगाव में वृद्धि हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में वांछित स्तर पर कीमत तथा उत्पादन-मात्रा को निर्धारित करने की अल्पाधिकारात्मक फर्म की स्वतन्त्रता बढ़ जाती है।

प्र.9. खेल सिद्धान्त से आपका क्या अभिप्राय है? संक्षेप में लिखिए।

What do you mean by the Theory of Games? Write in brief.

उत्तर इस सिद्धान्त को अर्थशास्त्र में अल्पाधिकारी समस्या पर लागू किया गया है। **प्रो० वॉन न्यूमन** (Von Neumann) तथा **मॉरंगनस्टर्न** (Moregenstern) ने अपनी पुस्तक "*The Theory of Games and Economic Behaviour*" जो कि सन् 1944 में प्रकाशित हुई, में परस्पर विरोधी स्थितियों वाली विभिन्न समस्याओं के प्रति एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। खेल सिद्धान्त का प्रयोग केवल अल्पाधिकारी समस्याओं पर ही नहीं किया गया है अपितु अन्य आर्थिक समस्याओं जैसे अनिश्चितता की दशा में माँग पर भी लागू किया गया है। मौखिक रूप से, खेल सिद्धान्त यह बताने का प्रयत्न करता है कि उस व्यक्ति के लिए कार्य करने की युक्तियुक्त या विवेकशील विधि कौन-सी है, जिसके सामने ऐसी स्थिति हो जिसका निराकरण केवल उसकी अपनी क्रियाओं पर नहीं अपितु दूसरों की क्रियाओं पर भी निर्भर है एवं दूसरों के सामने भी कार्य करने की ऐसी विवेकशील विधि चुनने की समस्या है।

प्र.10. कूर्नो मॉडल की मान्यताएँ संक्षेप में समझाइए।

Explain the assumptions of Cournot model in brief.

उत्तर कूर्नो मॉडल की निम्नलिखित मान्यताएँ हैं—

1. प्रत्येक विक्रेता यह मान लेता है कि उसके प्रतियोगी विक्रेता की पूर्ति स्थिर है।
2. प्रत्येक विक्रेता अपने प्रतियोगी की पूर्ति को स्थिर मान लेता है।
3. प्रत्येक विक्रेता बाजार माँग के मूल्य को स्वीकार कर लेता है।
4. प्रत्येक विक्रेता का उद्देश्य अधिकतम शुद्ध आगम प्राप्त करना होता है।
5. बाजार में क्रेताओं की संख्या अधिक है।
6. वस्तु के दो उत्पादक हैं। दोनों उत्पादक एक-दूसरे से स्वतन्त्र हैं एवं एकरूप वस्तु का उत्पादन करते हैं।
7. प्रत्येक उत्पादक अपनी वस्तु के माँग वक्र से परिचित है।
8. उत्पादन की लागत शून्य है।
9. प्रत्येक विक्रेता इस बात का निर्णय करता है कि वह प्रत्येक अवधि में कितनी मात्रा का उत्पादन एवं विक्रय करना चाहता है।
10. कोई भी उत्पादक अपने प्रतियोगी के उत्पादन से सम्बन्धित योजना के बारे में कुछ नहीं जानता।

प्र.11. पूर्ण प्रतियोगी बाजार की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

Write the main characteristics of a Perfectly Competitive Market.

उत्तर

पूर्ण प्रतियोगी बाजार की विशेषताएँ
(Characteristics of Perfectly Competitive Market)

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में निम्नलिखित विशेषताएँ पायी जाती हैं—

1. **क्रेताओं तथा विक्रेताओं की अधिक संख्या**—पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की पहली आवश्यक शर्त यह है कि बाजार में क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होनी चाहिए। क्रेता-विक्रेता की अधिक संख्या होने के कारण कोई भी विक्रेता अथवा क्रेता इस स्थिति में नहीं होता कि वह बाजार कीमत को प्रभावित कर सके। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता में एक क्रेता अथवा एक विक्रेता बाजार में माँग अथवा पूर्ति की दशाओं को प्रभावित नहीं कर सकता।
2. **वस्तु की समान इकाइयाँ**—सभी विक्रेता बाजार में जो वस्तु बेच रहे हैं उसकी सभी इकाइयाँ, रूप, रंग, आकार, गुण, आदि में समानता होती हैं। दूसरे शब्दों में, कह सकते हैं कि वस्तु की इकाइयों के बीच प्रतिस्थापन लोच अनन्त होती है और वस्तु को किसी भी विक्रेता से एकसमान कीमत पर खरीदा जा सकता है।

3. **बाजार दशाओं का पूर्ण ज्ञान**—पूर्ण बाजार में क्रेताओं एवं विक्रेताओं के बारे में और विक्रेताओं को क्रेताओं के बारे में पूर्ण ज्ञान होता है। इस प्रकार कोई भी क्रेता वस्तु की प्रचलित कीमत से अधिक कीमत देकर वस्तु नहीं खरीदेगा क्योंकि उसे वस्तु के गुण, आकार, रंग आदि सभी के बारे में पूर्ण ज्ञान है। यही कारण है कि बाजार में वस्तु की एक सामान्य कीमत पायी जाती है।
4. **फर्मों के प्रवेश एवं निष्कासन की स्वतन्त्रता**—पूर्ण प्रतियोगी बाजार में कोई भी नई फर्म उद्योग में प्रवेश कर सकती है एवं कोई भी पुरानी फर्म उद्योग से बाहर जा सकती है। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता में फर्मों के उद्योग में आने-जाने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता।
5. **वस्तु की केवल एक कीमत**—पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में वस्तु की केवल एक ही कीमत प्रचलित होती है, इससे अधिक कीमत लेने पर माँग शून्य हो जाती है।
6. **यातायात लागत की अनुपस्थिति**—पूर्ण प्रतियोगी बाजार में यातायात लागत शून्य होती है। उद्योग में कार्यरत फर्में आपस में इतनी निकट होती हैं कि किसी प्रकार का यातायात व्यय उत्पन्न नहीं होता।

उपर्युक्त दशाएँ किसी बाजार को शुद्ध प्रतियोगी के साथ-साथ पूर्ण प्रतियोगी भी बनाती हैं।

पूर्ण प्रतियोगिता में क्रेता एवं विक्रेता स्वतन्त्र रूप से कार्य करते हैं। पूर्ण प्रतियोगिता में कोई भी फर्म कीमत निर्धारित नहीं करती। बाजार में उद्योग में माँग-पूर्ति दशाओं द्वारा जो कीमत नियन्त्रित होती है उसे उस उद्योग में कार्यरत प्रत्येक फर्म दिया हुआ मान लेती है। पूर्ण प्रतियोगिता में फर्मों की संख्या अधिक होने के कारण प्रत्येक फर्म उद्योग में एक बहुत छोटा स्थान रखती है जिसके कारण वह बाजार या उद्योग द्वारा निर्धारित कीमत को परिवर्तित अथवा प्रभावित करने में असमर्थ रहती हैं। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता में प्रत्येक फर्म (या विक्रेता) सदैव कीमत प्राप्तकर्त्ता (Price Taker) तथा मात्रा नियोजक (Quantity Adjuster) होती है।

प्र.12. पूर्ण प्रतियोगिता में माँग तथा आय वक्र का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

Give a brief description of Demand and Income Curves in Perfect Competition.

उत्तर पूर्ण प्रतियोगिता की प्रथम मान्यता यह है कि इसमें फर्मों की संख्या अधिक होती है। प्रत्येक फर्म वस्तु की कुल पूर्ति का एक छोटे-से भाग का ही उत्पादन करती है। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता में कोई भी फर्म उत्पादन के विस्तार या संकुचन के द्वारा बाजार कीमत को प्रभावित नहीं कर सकती है। अत: पूर्ण प्रतियोगिता में फर्मों के लिए कीमत पहले से निश्चित होती है। इस निश्चित कीमत पर प्रत्येक फर्म जितनी चाहे उतनी मात्रा बेच सकती है। इसलिए फर्म को अपनी बिक्री बढ़ाने के लिए कीमत में कटौती नहीं करनी पड़ती है क्योंकि प्रत्येक फर्म उद्योग की पूर्ति का छोटा-सा भाग उत्पन्न करती है। अत: पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत किसी व्यक्तिगत फर्म की माँग पूर्णतया लोचदार होती है।

पूर्ण प्रतियोगिता की द्वितीय मान्यता यह है कि वस्तु समरूप होती है जिसका अर्थ यह है कि इस बाजार में प्रत्येक फर्म द्वारा उत्पादित वस्तु रूप, रंग, गुण एवं आकार में समान होती है। इसका परिणाम यह होता है कि क्रेता एक फर्म को छोड़कर दूसरी फर्म के उत्पाद को प्राथमिकता नहीं दे सकते हैं एवं कीमत को प्रभावित करने में असफल रहते हैं। यदि कोई फर्म अपनी वस्तु की कीमत को बढ़ाने का प्रयास करती है तो उसकी बिक्री शून्य हो जाएगी। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत का निर्धारण उद्योग द्वारा होता है जिसे प्रत्येक फर्म ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लेती है। इस प्रकार बाजार के अन्तर्गत केवल एक ही कीमत प्रचलित होती है।

प्र.13. एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में आगम एवं लागत वक्र पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

Write a brief note on Revenue and Cost Curves in Monopolistic Competition.

उत्तर सभी प्रकार के फर्मों के अपने-अपने माँग-वक्र होते हैं एवं सन्निकट प्रतिस्थापकों के कारण वे लोचदार होते है। प्रत्येक फर्म को यह छूट होती है कि वह दूसरे प्रतियोगियों की कीमतों को देखते हुए अपनी कीमत निर्धारित करें। कोई भी फर्म यदि अधिक मात्रा में वस्तु बेचना चाहती है तो उसे कीमत कम करनी पड़ेगी इसीलिए एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता वाले बाजार में औसत आय का वक्र पूर्ण प्रतियोगिता वक्र की तरह क्षैतिज रेखीय नहीं होता अपितु बायीं ओर ऊपर से, दायीं ओर नीचे गिरता हुआ होता है। एकाधिकार में भी यह वक्र ऐसा ही होता है परन्तु समूह-सन्तुलन वाले बाजार का वक्र एकाधिकार वाले वक्र की अपेक्षा में धीरे-धीरे गिरता है एवं चपटा होता है। देखिए चित्र-1 (A) और (B) एवं (C)।

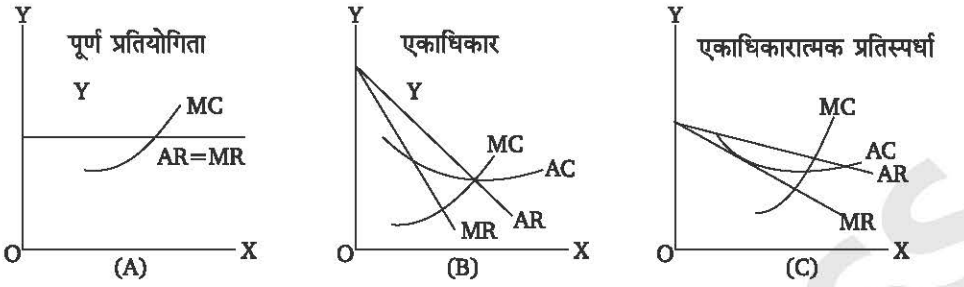

चित्र 1

जब बाजार में किसी एकाधिकारी प्रतियोगियों के समूह का कोई एक सदस्य कोई ऐसी वस्तु बना रहा है जिसको लोग बहुत अधिक पसन्द करते हैं तो उसको दूसरों की अपेक्षा कुछ अधिक लाभ प्राप्त हो रहे होंगे परिणामस्वरूप शनैःशनैः उस समूह के दूसरे सदस्य भी अपने ब्राण्ड में कुछ आकर्षण पैदा करने का प्रयत्न करेंगे और उस फर्म को प्राप्त होने वाले लाभ दूसरों में बँट जाएँगे। इस प्रकार अल्पकाल में एक अथवा कुछ फर्मों को अधिक लाभ हो सकते हैं किन्तु दीर्घकाल में सभी फर्मों के लाभ या तो बिलकुल समाप्त हो जाएँगे या बहुत कम होते रहेंगे।

प्र.14. एजवर्थ समाधान मॉडल पर संक्षिप्त लेख लिखिए।

Write a brief note on Edgeworth Solution Model.

उत्तर एजवर्थ समाधान मॉडल—एजवर्थ समाधान भी कूर्नो मॉडल की सभी मान्यताओं का अनुसरण करता है। अन्तर केवल इतना है कि कूर्नो मॉडल में प्रत्येक विक्रेता अपने प्रतियोगी की पूर्ति को स्थिर मान लेता है जबकि एजवर्थ मॉडल में प्रत्येक विक्रेता अपने प्रतियोगी की कीमत को स्थिर मान लेता है। बाजार में A तथा B दो प्रतियोगी उत्पादक हैं जो एकरूप वस्तु का उत्पादन करते हैं। सारा बाजार इन दोनों के मध्य समान रूप से बँटा हुआ है। संलग्न चित्र में DD_A और DD_B उनके माँग वक्र हैं; OA तथा OB क्रमशः दोनों की अधिकतम पूर्ति मात्राएँ हैं। मूल्य का निर्धारण उस समय होता है जब दोनों A तथा B आपस में मिल जाते हैं। इस स्थिति में मूल्य OQ एवं सम्पूर्ण उत्पादन मात्रा $OA + AB = OB$ होगी तथा OQ मूल्य पर सम्पूर्ण मात्रा बिक जाती है।

मान लीजिए दोनों में कोई समझौता नहीं होता है। A अपना लाभ अधिकतम करने के लिए OP मूल्य पर अपनी OA_1 मात्रा बेचता है। B का विश्वास है कि A मूल्य में परिवर्तन नहीं करेगा अतः वह OP से थोड़े कम मूल्य पर A के अनेक ग्राहकों को तोड़ लेता है। विक्रेता A भी अब अपने मूल्य कम कर देगा। इससे दोनों में मूल्य युद्ध छिड़ जाएगा जब तक कि मूल्य OQ पर नहीं पहुँच जाता। OQ मूल्य पर वे अपने समस्त उत्पादन को बेच देते हैं लेकिन एजवर्थ के अनुसार OQ मूल्य स्थिर मूल्य नहीं है। उनकी राय में मूल्य OP एवं OQ के बीच परिवर्तनशील रहता है तथा एक क्षण के लिए भी नहीं रुकता। इसका कारण यह है कि यदि OQ मूल्य पर B अपनी सम्पूर्ण प्रदा बेच देता है तो A एकाधिकारी स्थिति में हो जाएगा एवं वह मूल्य बढ़ा देगा अतः वह अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए OP मूल्य निर्धारित रखेगा। इसी प्रकार B भी A की भाँति दूसरे समय अन्तराल में अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए OP मूल्य निर्धारित करेगा। इस प्रकार यह क्रिया-प्रक्रिया चलती रहेगी और मूल्य OP एवं OQ के मध्य अनिश्चित समय के लिए दोलन करता रहेगा।

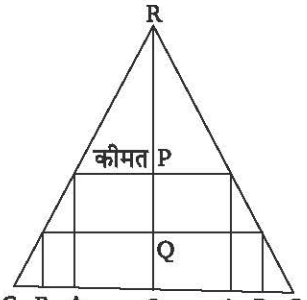

चित्र

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. पूर्ण प्रतियोगिता से आपका क्या अभिप्राय है? पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म-उद्योग सम्बन्ध स्पष्ट करते हुए वास्तविक जीवन में पूर्ण प्रतियोगिता का स्थान निर्धारित कीजिए।

What do you understand by Perfect Competition? By making clear the firm-industry relationship in perfect competition, determine the place of perfect competition in real life.

उत्तर

पूर्ण प्रतियोगिता : अभिप्राय
(Perfect Competition : Meaning)

प्रो. लैफ्टविच के अनुसार, "पूर्ण प्रतियोगिता वह बाजार स्थिति है जिसमें बहुत-सी फर्में एक समान वस्तुएँ बेचती हैं और इनमें से किसी भी एक फर्म की यह स्थिति नहीं होती कि वह बाजार कीमत को प्रभावित कर सके।"

श्रीमती रॉबिन्सन के अनुसार, "पूर्ण प्रतियोगिता उस दशा में होती है जबकि प्रत्येक उत्पादक के उत्पादन की माँग पूर्णतया लोचदार होती है। इसका अर्थ है : प्रथम, विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है जिससे किसी एक विक्रेता का उत्पादन वस्तु के कुल उत्पादन का एक बहुत ही थोड़ा भाग होता है; तथा दूसरे, सभी ग्राहक, प्रतियोगी विक्रेताओं के बीच चुनाव की दृष्टि से समान होते हैं जिससे बाजार पूर्ण हो जाता है।"

पूर्ण प्रतियोगिता तथा शुद्ध प्रतियोगिता (Perfect Competition and Pure Competition)

पूर्ण प्रतियोगिता (Perfect Competition) तथा शुद्ध प्रतियोगिता (Pure Competition) वस्तुतः पर्यायवाची नहीं हैं। दोनों में अन्तर है। पूर्ण प्रतियोगिता के विस्तृत अध्ययन से पूर्व इन दोनों के अन्तर को समझना आवश्यक है।

एक बाजार शुद्ध प्रतियोगी (Pure Competitive) तब होगा जब निम्नलिखित दशाएँ पूरी हों—

1. **क्रेता एवं विक्रता का एक बड़ी संख्या में होना** अर्थात् प्रत्येक क्रेता अथवा विक्रेता बाजार में इतना सूक्ष्म स्थान रखता है कि वह अपनी क्रियाओं से कीमत को प्रभावित नहीं कर पाता। दोनों क्रेता तथा विक्रेता कीमत ग्रहणकर्त्ता (Price Taker) तथा मात्रा नियोजक (Quantity Adjuster) होते हैं।
2. **एक उद्योग में कार्यरत सभी फर्म एकसमान वस्तु** (Homogeneous Product) का उत्पादन करती हैं।
3. **दीर्घकाल में उद्योग में अतिरिक्त फर्मों के प्रवेश अथवा फर्मों के उद्योग से अलग होने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता।**

उपर्युक्त तीनों दशाएँ किसी बाजार को शुद्ध प्रतियोगी (Purely Competitive) बनाती है। किन्तु अर्थशास्त्री शुद्ध प्रतियोगी बाजार (Purely Competitive Market) तथा पूर्ण प्रतियोगी बाजार (Perfectly Competitive Market) में अन्तर करते हैं। उनके अनुसार पूर्ण प्रतियोगिता में शुद्ध प्रतियोगिता की तीनों शर्तों के साथ-साथ कुछ अतिरिक्त शर्तों का भी होना आवश्यक है।

पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म-उद्योग सम्बन्ध
(Firm-Industry relation under Perfect Competition)

चूँकि पूर्ण प्रतियोगिता में क्रेता तथा विक्रेता एक बड़ी संख्या में होते हैं जिसके कारण कोई व्यक्तिगत फर्म बाजार में वस्तु की कीमत पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकती। उद्योग में एक समान वस्तुएँ उत्पादित करने वाली अनेक फर्में होती हैं जिसके कारण एक व्यक्तिगत फर्म का उद्योग के उत्पादन में इतना सूक्ष्म योगदान होता है कि उस फर्म विशेष की वस्तु पूर्ति में परिवर्तन का उस उद्योग की कुल पूर्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यही कारण है कि पूर्ण प्रतियोगिता में कोई फर्म उद्योग की कीमत को प्रभावित नहीं कर

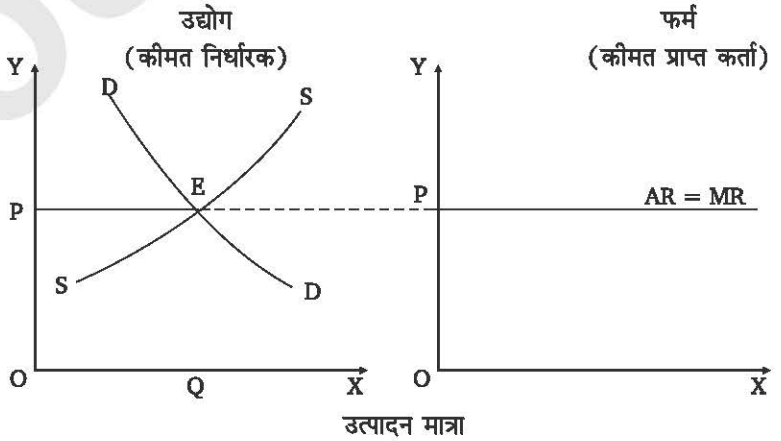

चित्र 1. पूर्ण प्रतियोगिता–फर्म-उद्योग सम्बन्ध

पाती। पूर्ण प्रतियोगिता में एक उद्योग के अन्तर्गत कार्य करने वाली प्रत्येक फर्म कीमत प्राप्तकर्त्ता (Price Taker) तथा मात्रा नियोजक (Quantity Adjuster) होती है। चित्र 1 में उद्योग में वस्तु की कीमत वस्तु की माँग तथा वस्तु की पूर्ति द्वारा निर्धारित हो रही है। उद्योग में सन्तुलन बिन्दु E पर उपलब्ध होता है जिसके कारण वस्तु का OP मूल्य तय होता है। इस मूल्य OP को उद्योग के अन्तर्गत कार्य कर रही प्रत्येक फर्म दिया हुआ मान लेती है तथा वह इस कीमत पर वस्तु की कितनी ही मात्रा का विक्रय कर सकती है। यही कारण है कि फर्म के लिए कीमत रेखा (अथवा माँग रेखा) X-अक्ष के समानान्तर एक क्षैतिज रेखा (Horizontal Line Parallel to X-axis) होती है जिस पर माँग की लोच अनन्त होती है।

साथ-ही-साथ हम यह भी अध्ययन कर चुके हैं कि क्रेता तथा विक्रेता दोनों ही बाजार में प्रचलित कीमत से पूर्णत: अवगत हैं। एकसमान वस्तु होने के कारण तथा क्रेता को बाजार की पूर्ण जानकारी के कारण कोई विक्रेता प्रचलित कीमत से अधिक कीमत क्रेता से वसूल नहीं कर सकता। एकसमान वस्तु होने के कारण प्रत्येक अतिरिक्त इकाई के लिए क्रेता को एकसमान कीमत पूर्ण प्रतियोगिता में देनी पड़ेगी।

यही कारण है कि पूर्ण प्रतियोगिता में,

$$\text{औसत आगम} = \text{सीमान्त आगम}$$

$$AR = MR$$

इसका अभिप्राय है कि पूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु विशेष की कीमत सदैव स्थिर होगी तथा एक व्यक्तिगत फर्म का माँग वक्र बाजार में प्रचलित कीमत पर पूर्णतया कीमत सापेक्ष (Perfectly Elastic Price) (अर्थात् पूर्णतया लोचदार $e = \infty$) होगा (देखें चित्र 1) पूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु कीमत में कोई परिवर्तन नहीं होगा जब तक उद्योग बाजार की माँग तथा पूर्ति दशाओं में परिवर्तन न हो जाए।

वास्तविक जीवन में पूर्ण प्रतियोगिता का स्थान
(Place of Perfect Competition in Real Life)

पूर्ण प्रतियोगिता का वास्तविक जगत में कोई स्थान नहीं है। यह बाजार संरचना व्यावहारिकता से बहुत दूर है। पूर्ण प्रतियोगिता की शर्तें इसे अव्यावहारिक और अवास्तविक बनाती हैं—

1. पूर्ण प्रतियोगिता की शर्तों के अनुसार, वस्तुएँ एकसमान (Homogeneous Product) होती हैं। वस्तुत: फर्में वास्तविक जगत में एक समान वस्तुएँ नहीं बल्कि निकट स्थानापन्न वस्तुएँ (Closely Substitute Goods) बनाती हैं। इस प्रकार वास्तविक जीवन के वस्तु विभेद (Product Discrimination) की दशा उत्पन्न होती है।
2. क्रेता एवं विक्रेताओं को सदैव बाजार का पूर्ण ज्ञान होगा यह आवश्यक नहीं। यह मान्यता भी अव्यावहारिक है।
3. 'उत्पत्ति के साधनों का पूर्ण गतिशील होना' यह मान्यता भी पूर्ण प्रतियोगिता को काल्पनिक बनाती है।
4. वास्तविक जगत में एक वस्तु के बड़ी मात्रा में उत्पादक नहीं होते वरन् थोड़े उत्पादक होते हैं। पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यतानुसार कोई उत्पादक कीमत को प्रभावित नहीं कर सकता जबकि वास्तविकता में प्रत्येक उत्पादक कीमत को प्रभावित कर सकता है।

उपर्युक्त बिन्दुओं के आधार पर पूर्ण प्रतियोगिता को काल्पनिक कहा जा सकता है। दैनिक एवं आधुनिक जगत में यह दुर्लभ (Rare) है। इसे काल्पनिक की संज्ञा देने पर भी हम निम्नलिखित तीन कारणों से इसका अध्ययन करते हैं—

1. पूर्ण प्रतियोगिता हमें आर्थिक विश्लेषण की आरम्भिक कड़ी देती है। बाजार के अन्य रूप जैसे अपूर्ण प्रतियोगिता (Imperfect Competition) अथवा एकाधिकृत प्रतियोगिता (Monopolistic Competition) को समझने के लिए पूर्ण प्रतियोगिता का ज्ञान आवश्यक है।
2. पूर्ण प्रतियोगिता का सिद्धान्त हमें एक ऐसा मापदण्ड (Norm) देता है जिसकी सहायता से हम किसी अर्थव्यवस्था की प्रगति का मूल्यांकन कर सकते हैं। पूर्ण प्रतियोगिता सबसे सफल एवं निपुण स्थिति के रूप में एक मापदण्ड का कार्य करती है।
3. अभी भी संसार के अनेक देश पूर्ण स्पर्धा (Perfect Competition) को अपने उत्पादन क्षेत्रों में अपनाए हुए हैं।

प्र.2. दीर्घकालीन पूर्ण प्रतियोगी फर्म के सन्तुलन की विस्तृत विवेचना कीजिए।
Give a detailed discussion of equilibrium of perfectly competitive firm in long-run.

उत्तर

दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगी फर्म का सन्तुलन
(Equilibrium of Perfectly Competitive Firm in Long-run)

दीर्घकाल वह समयावधि है जिसमें उत्पत्ति के सभी साधन, उत्पादन तकनीक, प्लाण्ट का आकार आदि पूर्णत: आवश्यकतानुसार परिवर्तित किए जा सकते हैं। पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म दीर्घकाल में उत्पादन को माँग के अनुसार, पूर्णरूपेण समायोजित कर सकती है। दीर्घकाल इतनी लम्बी समयावधि है कि कोई भी फर्म उद्योग में प्रवेश कर सकती है अथवा उद्योग को छोड़कर अलग हो सकती है। अत: दीर्घकाल में उद्योग में काम कर रही प्रत्येक फर्म को सामान्य लाभ (Normal Profit) ही प्राप्त होता है। दीर्घकाल में यदि फर्में लाभ अर्जित कर रही हैं तो अन्य फर्में उस उद्योग में सम्मिलित होंगी जिसके कारण उद्योग की पूर्ति में वृद्धि होगी फलत: फर्मों का लाभ, सामान्य लाभ में बदल जाएगा।

इसके विपरीत, यदि फर्मों को हानि हो रही है तो अनेक फर्में उद्योग को छोड़ देंगी जिसके कारण पूर्ति में कमी होगी जिसके फलस्वरूप वस्तु कीमत बढ़ेगी, फलत: हानि सामान्य लाभ में बदल जाएगी।

दीर्घकाल में सन्तुलन की दोहरी शर्त पूरी होनी चाहिए—

(1) $MR = MC$

(2) $AR = AC$

अर्थात् $MR = MC = AR = AC$

I. एकसमान लागत दशाओं में दीर्घकालीन सन्तुलन
(Long-run Equilibrium under Homogeneous Cost Conditions)

एकसमान लागत दशाओं में उद्योग के अन्तर्गत काम कर रही सभी फर्में दीर्घकाल में केवल सामान्य लाभ (Normal Profit) ही कमायेंगी।

जैसा हम ऊपर बता चुके हैं कि दीर्घकाल में फर्में उद्योग में आने तथा उद्योग छोड़ने के लिए स्वतन्त्र हैं। दीर्घकाल में फर्मों का लाभ अन्य फर्मों को उद्योग में आकर्षित करेगा जिसके कारण लाभ सामान्य लाभ में परिवर्तित हो जाएगा। इसके विपरीत, हानि की दशा में उद्योग में कार्यरत कुछ फर्में उद्योग को छोड़कर चली जायेंगी जिसके कारण हानि सामान्य लाभ में बदल जाएगी।

चित्र 1 में एकसमान लागत दशाओं में दीर्घकालीन सन्तुलन दिखाया गया है। चित्र में फर्म का सन्तुलन बिन्दु E पर दिखाया गया है क्योंकि बिन्दु E पर सन्तुलन की दीर्घकालीन शर्तें पूरी हो रही हैं—

$$MR = MC + AC = AR$$

बिन्दु E पर, वस्तु मूल्य $= OP$ अथवा EQ

उत्पादन $= OQ$

औसत लागत $= EQ$

औसत लागत (AC) = वस्तु मूल्य (AR)

अर्थात् फर्म केवल सामान्य लाभ प्राप्त कर रही है।

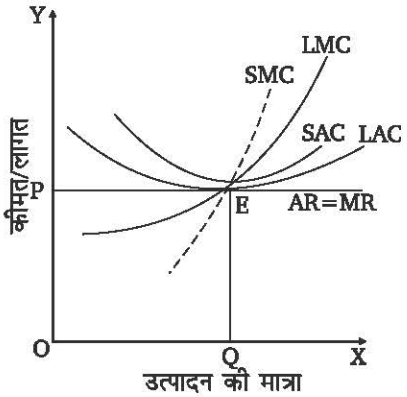

चित्र 1. पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म का दीर्घकालीन सन्तुलन : सामान्य लाभ

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि दीर्घकाल में वस्तु मूल्य OP से कम या अधिक नहीं हो सकता क्योंकि इस मूल्य पर फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त हो रहा है। यदि वस्तु मूल्य OP से अधिक होगा तो फर्म को लाभ प्राप्त होगा जिसके कारण अन्य फर्में उद्योग में आकर लाभ को सामान्य लाभ में बदल देंगी। इसके विपरीत, यदि वस्तु मूल्य OP से कम है तो फर्म को हानि होगी जिसके कारण कुछ फर्में उद्योग को छोड़ देंगी, फलत: हानि पुन: सामान्य लाभ में बदल जाएगी।

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि दीर्घकाल में पूर्ण प्रतियोगी फर्म सदैव सामान्य लाभ ही प्राप्त करेगी। दूसरे शब्दों में, दीर्घकालीन सन्तुलन औसत लागत वक्र (AC Curve) के न्यूनतम बिन्दु पर होगा अर्थात् फर्म अनुकूलतम प्लाण्ट के आकार (Optimum Plant Size) पर दीर्घकाल में कार्य करेगी।

प्रो. फर्गुसन के शब्दों में, "पूर्ण प्रतियोगिता में किसी फर्म का दीर्घकालीन सन्तुलन उस बिन्दु पर होता है जहां मूल्य दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) के न्यूनतम बिन्दु के बराबर हो जाए। इस बिन्दु पर अल्पकालीन लागत वक्र (SAC) दीर्घकालीन औसत लागत के न्यूनतम के बराबर होता है तथा अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन सीमान्त लागतें बराबर होती हैं। दीर्घकालीन सन्तुलन की दशा को 'सामान्य लाभ' की दशा कहा जाता है जहां फर्म न शुद्ध लाभ और न ही शुद्ध हानि प्राप्त कर रही है।"

II. विभिन्न लागत दशाओं में फर्मों का दीर्घकालीन सन्तुलन (Long run Equilibrium of Firms Under Various Cost Conditions)

विभिन्न लागत दशाओं में फर्मों का दीर्घकालीन सन्तुलन सीमान्त फर्म (Marginal Firm) के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है। उद्योग की वह फर्म, सीमान्त फर्म होती है जो कीमत के गिरने पर सबसे पहले उद्योग को छोड़ती है। दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि उद्योग की उच्चतम लागत वाली फर्म ही सीमान्त फर्म होती है जो सदैव केवल सामान्य लाभ (Normal Profit) ही अर्जित करती है। यही कारण है कि कीमत के कम होने पर सीमान्त फर्म उद्योग को छोड़ देगी क्योंकि ऐसी दशा में उसका सामान्य लाभ हानि में परिवर्तित हो जाता है।

चित्र 2 में तीन प्रकार की लागत दशाओं वाली फर्मों का दीर्घकालीन सन्तुलन दिखाया गया है। चित्र में फर्म C सीमान्त फर्म है जो बिन्दु E_3 पर OQ_3 मात्रा का, उत्पादन करते हुए केवल सामान्य लाभ की स्थिति में है। सीमान्त फर्म OP_3 कीमत पर सामान्य लाभ कमा रही है तथा यदि कीमत OP_3 से कम हो जाती है तो फर्म C हानि होने के कारण उद्योग से बाहर चली जाएगी। सभी फर्मों के सन्तुलन के लिए निम्नलिखित दशाओं का होना आवश्यक है—

(1) कीमत = सभी फर्मों की सीमान्त लागत

(2) कीमत = सीमान्त फर्म की औसत लागत

यदि फर्मों की सीमान्त लागते परस्पर समान नहीं हैं तो वे अपने उत्पादन स्तर बदलने का प्रयास करेंगी। हम जानते हैं कि दीर्घकालीन कीमत, औसत लागत से अधिक नहीं हो सकती। यदि कीमत AC से अधिक है तो लाभ की स्थिति उत्पन्न होगी जिससे आकर्षित होकर अन्य बाहरी फर्में उद्योग में प्रवेश करके पूर्ति को बढ़ायेंगी जिससे वस्तु की कीमत गिर जाती है तथा लाभ सामान्य लाभ में परिवर्तित हो जाता है। इसके विपरीत, यदि कीमत AC से कम है तो फर्में उद्योग को छोड़ेंगी तथा हानि पुन: सामान्य लाभ में बदल जाएगी।

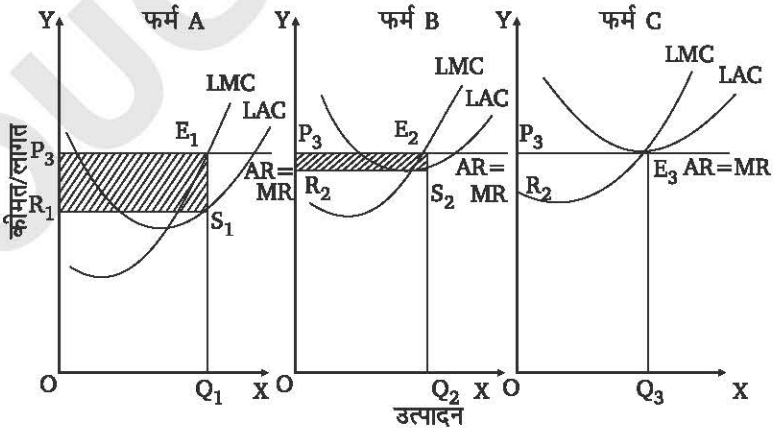

चित्र 2. फर्मों का दीर्घकालीन सन्तुलन : विभिन्न लागत दशाओं में

चित्र 2 में दर्शाया गया है कि यदि वस्तु की कीमत OP_3 प्रचलित है तथा फर्म A, B तथा C क्रमश: OQ_1, OQ_2 तथा OQ_3 का उत्पादन करेंगी। फर्म A की सीमान्त लागत E_1Q_1 है जबकि फर्म B तथा C की सीमान्त लागतें क्रमश: E_2Q_2 तथा E_3Q_3 के बराबर हैं।

अर्थात् कीमत = सभी फर्मों की सीमान्त लागतें

यहाँ फर्म A तथा फर्म B सीमान्त-पूर्व फर्में (Intra-Marginal Firms) हैं जो असामान्य लाभ (Abnormal Profits) अर्जित कर रही हैं। फर्म C सीमान्त फर्म होने के कारण केवल सामान्य लाभ अर्जित कर रही है जिसके कारण बाहरी कोई भी फर्म उद्योग में नहीं आना चाहेगी तथा फर्म C उद्योग को छोड़ना नहीं चाहेगी। इस प्रकार पूर्ण सन्तुलन की दशा प्राप्त हो रही है।
ध्यातव्य है कि पूर्ण सन्तुलन में केवल सीमान्त फर्म ही अनुकूलतम आकार की होगी क्योंकि सीमान्त फर्म का सन्तुलन ही AC के न्यूनतम बिन्दु पर होगा। शेष सभी सीमान्त-पूर्व फर्में अनुकूलतम से अधिक आकार की होंगी।

प्र.3. उद्योग किसे कहते हैं? किसी उद्योग के दीर्घकालीन साम्य का विस्तृत वर्णन कीजिए।

What is an industry? Provide a detailed discussion of long-run equilibrium of an industry.

उत्तर

एक उद्योग का अर्थ
(Meaning of an Industry)

ऐसी फर्मों का समूह, जो एकरूप वस्तु उत्पादित करता है, उसे एक उद्योग कहा जाता है। श्रीमती जॉन रॉबिन्सन के अनुसार, "एक उद्योग ऐसी फर्मों का समूह है जोकि केवल एक वस्तु का उत्पादन करता है।" उद्योग की फर्में इतने छोटे आकार की होती हैं कि कोई भी फर्म अकेली अपने उत्पादन स्तर में परिवर्तन करके कीमत पर कोई महत्त्वपूर्ण प्रभाव नहीं डाल सकती। अत: फर्म के लिए माँग रेखा (कीमत रेखा) एक पड़ी हुई रेखा होती है।

एक उद्योग का दीर्घकालीन साम्य
(Long-run Equilibrium of a Firm)

एक उद्योग के दीर्घकालीन साम्य से अभिप्राय—

1. जब उद्योग का कुल उत्पादन स्थिर रहता है तब दीर्घकाल में एक उद्योग साम्य की स्थिति में तब रहता है। इसमें वृद्धि अथवा कमी की कोई प्रवृत्ति नहीं होती।
2. एक उद्योग के दीर्घकाल के साम्य के लिए यह आवश्यक है कि उसके अन्तर्गत सभी फर्में दीर्घकालीन साम्य की स्थिति में हों। एक फर्म के दीर्घकालीन साम्य के लिए दोहरी दशा पूरी होनी चाहिए—
   (i) $MR = MC$ अथवा $AR = MC$ (ii) $AR = AC$
3. एक उद्योग के दीर्घकालीन साम्य हेतु यह आवश्यक है कि अल्पकालीन साम्य का भी साथ-साथ अस्तित्त्व हो।
4. $S = D$ की दशा पूरी होनी चाहिए।

दीर्घकालीन उद्योग में फर्मों के प्रवेश अथवा बहिर्गमन के कारण उत्पादन लागत में परिवर्तन होंगे। इसलिए लागत की स्थिति के अनुसार ही उद्योग की दीर्घकालीन पूर्ति रेखा निर्धारित होगी। इसका विस्तृत विवरण निम्न प्रकार है—

1. **उत्पत्ति ह्रास नियम या बढ़ती हुई लागतें तथा उद्योग का दीर्घकालीन साम्य**—दीर्घकाल में उत्पत्ति ह्रास नियम वाले उद्योग की पूर्ति रेखा बाईं ओर से दाईं ओर ऊपर की ओर उठती हुई होती है। इसके अन्तर्गत उत्पादन बढ़ाने पर लागतें बढ़ती हैं एवं उत्पादन कम होने पर लागतें कम हो जाती हैं। चित्र-1 में उद्योग की माँग रेखा D_1D_1 उसकी अल्पकालीन पूर्ति रेखा S_1S_1 को K बिन्दु पर काटती है। इस बिन्दु पर वस्तु की कीमत OP_1 है एवं साम्य उत्पादन P_1K है। यदि माँग में वृद्धि होती है तो नई माँग रेखा बढ़कर D_2D_2 हो जाती है। नई माँग रेखा D_2D_2 पहले की पूर्ति रेखा S_1S_1 को L बिन्दु पर काटती है। इसलिए उद्योग का अल्पकालीन साम्य L बिन्दु पर होगा तथा उद्योग का उत्पादन बढ़कर P_3L हो जाएगा। उद्योग की फर्में पहले सामान्य लाभ पाती थीं परन्तु कीमतें बढ़ने से अब उन्हें अतिरिक्त लाभ होने लगेगा। यह अतिरिक्त लाभ दीर्घकाल में समाप्त हो जाएगा; क्योंकि—

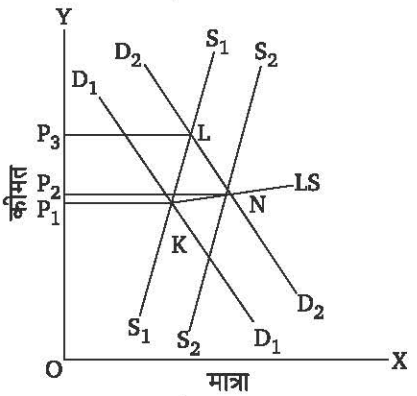

चित्र 1

(i) जब नई फर्मों का प्रवेश होगा, तो वस्तु की पूर्ति बढ़ेगी, जिससे कीमत नीची रह जाएगी। इस कारण कीमत एवं लागत का अन्तर कम होता जाएगा।

(ii) उद्योग दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन साम्य की स्थिति में बिन्दु N पर आ जाता है। बिन्दु N नई माँग रेखा D_2D_2 एवं नई पूर्ति रेखा S_2S_2 का कटान बिन्दु है। अब उद्योग की नई दीर्घकालीन साम्य कीमत OP_2 होगी, जोकि प्रारम्भिक साम्य कीमत OP_1 से अधिक है। नया दीर्घकालीन उत्पादन P_2N होगा जोकि P_1K से अधिक है। दीर्घकालीन साम्य बिन्दुओं K तथा N को मिलाने पर उद्योग की दीर्घकालीन पूर्ति रेखा LS प्राप्त हो जाती है।

2. **उत्पत्ति समता नियम अथवा समान लागत नियम तथा उद्योग का साम्य**—उत्पत्ति समता नियम वाले उद्योग की दीर्घकालीन पूर्ति रेखा दीर्घकालीन न्यूनतम औसत लागत के स्तर पर समस्तरीय सीधी रेखा होती है। चित्र-2 में, उद्योग में D_1D_1 वस्तु की माँग रेखा एवं S_1S_1 पूर्ति रेखा है, जो एक-दूसरे को बिन्दु K पर काटती हैं अर्थात् कीमत OP है। बिन्दु K उद्योग के दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन साम्य को दर्शाता है। अब मान लीजिए माँग में वृद्धि हो जाती है। नई माँग रेखा D_2D_2 है जो पुरानी पूर्ति रेखा S_1S_1 को L बिन्दु पर काटती है। नया साम्य बिन्दु L है। इस प्रकार माँग में वृद्धि होने के कारण अल्पकाल में कीमत बढ़कर OP_1 हो जाती है तथा उत्पादन PK (OM_1) से बढ़कर P_1L (OM) हो जाता है। उद्योग में फर्में पहले केवल सामान्य लाभ प्राप्त करती थीं, लेकिन अब उन्हें अतिरिक्त लाभ प्राप्त होने लगता है। किन्तु यह अतिरिक्त लाभ केवल अल्पकाल में प्राप्त होगा एवं दीर्घकाल में समाप्त हो जाएगा क्योंकि उद्योग में नई फर्में प्रवेश करने लगेंगी। चित्र-2 में S_2S_2 नया पूर्ति वक्र है तथा उद्योग का नया दीर्घकालीन साम्य बिन्दु N है। वस्तु की कीमत पुन: OP_1 से घटकर OP हो जाती है एवं उद्योग की पूर्ति बढ़कर (OM_2)। यदि हम उद्योग के दीर्घकालीन साम्य बिन्दुओं P तथा N को मिला दें तो हमें उद्योग की दीर्घकालीन पूर्ति रेखा LS प्राप्त हो जाएगी जो एक पड़ी रेखा होती है।

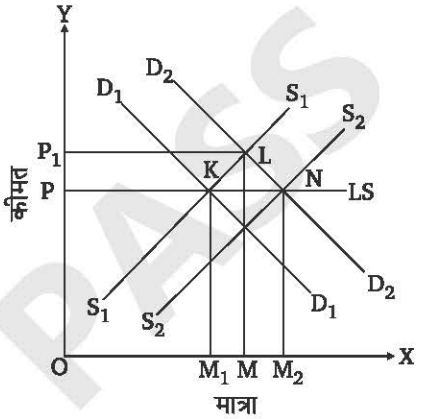

चित्र 2

3. **उत्पत्ति वृद्धि नियम या घटती हुई लागतें तथा उद्योग का दीर्घकालीन साम्य**—चित्र-3 में बिन्दु K आरम्भिक स्थिति को प्रकट करता है। बिन्दु K उद्योग के अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन साम्य को व्यक्त करता है। उद्योग का दीर्घकालीन सन्तुलन मूल्य P_2 है एवं इसी कीमत पर हर फर्म मात्र सामान्य लाभ प्राप्त करती है। सन्तुलन उत्पादन P_2K है।

अब मान लीजिए कि माँग में वृद्धि हो जाने के कारण माँग D_2D_2 हो जाती है। अल्पकाल में उद्योग के नए साम्य को बिन्दु L दर्शाएगा, कीमत बढ़कर OP_3 हो जाएगी तथा उत्पादन बढ़कर P_3L हो जाएगा। कीमत बढ़ने से फर्मों को अतिरिक्त लाभ मिलने लगेगा। इस लाभ के प्रलोभन से दीर्घकाल में अन्य फर्में उद्योग में प्रवेश करने लगेंगी। उत्पत्ति के साधनों का और अधिक प्रयोग होगा, लेकिन प्रत्येक फर्म हेतु उत्पत्ति के कुल साधनों की लागत कम होगी एवं वस्तु की पूर्ति में वृद्धि होगी अर्थात् पूर्ति रेखा S_1S_1 नीचे गिरकर S_2S_2 हो जाएगी।

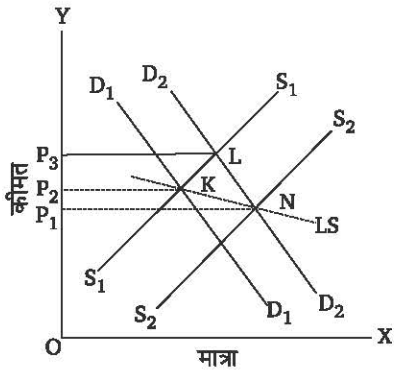

चित्र 3

अब फिर से बिन्दु N पर दीर्घकालीन साम्य स्थापित हो जाएगा। दीर्घकालीन साम्य कीमत OP_1 होगी जोकि पहले (OP_2) से कम है एवं साम्य कीमत OP_3 पर उद्योग में पुन: समस्त फर्मों को सामान्य लाभ मिलेगा। दीर्घकालीन सन्तुलन बिन्दुओं K एवं N को मिलाने पर उद्योग की दीर्घकालीन पूर्ति रेखा LS मिलती है।

प्र.4. फर्म के साम्य को समझते हुए पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सामान्य, अल्पकाल एवं दीर्घकाल में फर्म के सन्तुलन के लिए आवश्यक शर्तों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

By making clear the meaning of equilibrium of a firm, provide a detailed discussion about the essential conditions for the equilibrium of the firm in normal, short-run and long-run.

उत्तर

फर्म के साम्य का अर्थ
(Meaning of Equilibrium of a Firm)

जिस अवस्था में फर्म का लाभ अधिकतम होता है उस अवस्था को फर्म का साम्य कहते हैं तथा जिस मात्रा का उत्पादन करने से लाभ अधिकतम होता है, उत्पादन की उस मात्रा को साम्य उत्पादन कहा जाता है।

साम्य से अभिप्राय है—परिवर्तन की अनुपस्थिति। अत: फर्म साम्य की स्थिति में तब होती है, जबकि कुल उत्पादन में कोई परिवर्तन नहीं होता तथा यदि परिवर्तन किया जाता है तो कुल लाभ में कमी आ जाती है। सरल शब्दों में, एक फर्म साम्य की अवस्था में तब कही जाएगी, जबकि उसके उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन की कोई प्रवृत्ति न हो, अर्थात् साम्यावस्था में फर्म उत्पादन की वह मात्रा निश्चित करेगी, जिस पर उसको अधिकतम लाभ अथवा अधिकतम शुद्ध आय प्राप्त हो।

उत्पादन की जिस मात्रा पर सीमान्त लागत (MC) एवं सीमान्त आगम (MR) बराबर होते हैं, उत्पादन की वह मात्रा अधिकतम लाभ प्रदान करती है।

फर्म के सन्तुलन हेतु आवश्यक शर्तें
(Essential Conditions for Equilibrium of a Firm)

पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म के सन्तुलन हेतु निम्नलिखित दो शर्तों का होना आवश्यक है—

(1) $MR = MC$, (2) MC वक्र MR वक्र को नीचे से ऊपर को काटता हुआ होगा।

1. **फर्म के साम्य की सामान्य दशा**—(i) एक फर्म साम्य की स्थिति में तब होगी, जब उसके कुल उत्पादन में कोई परिवर्तन न हो। फर्म अपने उत्पादन में कोई परिवर्तन तब नहीं करेगी, जब उसे अधिकतम लाभ प्राप्त होगा। फर्म को अधिकतम लाभ तब प्राप्त होगा जब $MR = MC$ के हो एवं MC वक्र MR वक्र को नीचे से ऊपर को काटता हो।

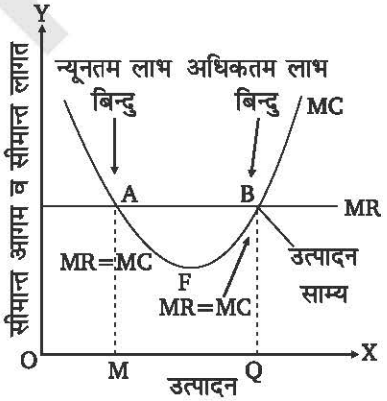

चित्र 1

चित्र में बिन्दु B अधिकतम लाभ का बिन्दु है, अर्थात् यह फर्म के साम्य की स्थिति को बताता है। OQ उत्पादन की साम्य मात्रा है। रेखाचित्र से स्पष्ट है कि अधिकतम लाभ का बिन्दु B है, जहाँ रेखा MC रेखा MR को नीचे से काटती है (A नहीं, जहाँ MC रेखा MR को ऊपर से काटती है।)

(ii) पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म हेतु अपनी वस्तु की माँग रेखा अर्थात् औसत आगम रेखा (AR Curve) एक पड़ी हुई रेखा होती है एवं $AR = MR$ के होती है। उद्योग में वस्तु की कुल पूर्ति एवं कुल माँग द्वारा वस्तु का जो मूल्य निर्धारित होता है, उसे प्रत्येक फर्म दिया हुआ मान लेती है और इस प्रकार एक फर्म के लिए AR रेखा पड़ी रेखा होती है।

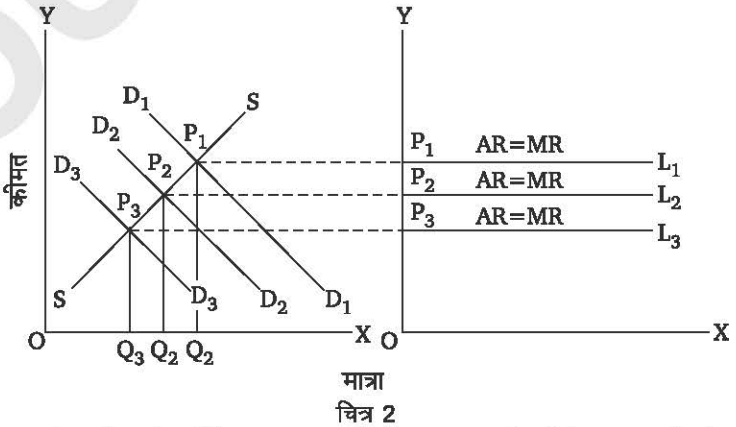

चित्र 2

उपरोक्त चित्र-2 में उद्योग की पूर्ति रेखा SS एवं माँग रेखा D_1D_1 है। दोनों एक-दूसरे को P_1 बिन्दु पर काटती हैं। अत: उद्योग की वस्तु का मूल्य P_1Q_1 निर्धारित होता है। फर्म इस मूल्य को दिया हुआ मान लेगी। फर्म के लिए माँग

रेखा P_1L_1 होगी। इस कीमत पर वह उत्पादन की कितनी भी मात्रा बेच सकेगी। यदि उद्योग की वस्तु की कुल माँग कम अर्थात् D_2D_2 हो जाती है तो उसका मूल्य भी गिरकर P_2Q_2 होगा। इस स्थिति में फर्म की माँग रेखा P_2L_2 हो जाएगी।

(iii) पूर्ण प्रतियोगिता में $AR = MR$ के होती है। फर्म के साम्य हेतु $MR = MC$ की दशा का होना अत्यावश्यक है। चूँकि $AR = MR$ एवं $MR = MC$; अत: $AR = MR = MC$ अथवा $AR = MC$.

2. **अल्पकाल में फर्म का साम्य**—अल्पकाल में समय इतना कम होता है कि पूर्ति को घटा-बढ़ाकर पूर्ण रूप से माँग के अनुरूप नहीं किया जा सकता। अत: अल्पकाल में एक फर्म को लाभ, शून्य लाभ अथवा हानि हो सकती है।

(i) **लाभ की स्थिति**—निम्नांकित चित्र-3 में, एक फर्म के लिए दी हुई कीमत रेखा TL है। बिन्दु P पर $MC = MR$। MC रेखा MR को इसी बिन्दु पर नीचे से काटती है। अत: बिन्दु P अधिकतम लाभ का बिन्दु होगा एवं यही बिन्दु फर्म के साम्य की दशा को प्रकट करेगा। संक्षेप में, इस बिन्दु पर

कीमत = PQ, उत्पादन = OQ, कुल लाभ = $STPR$.

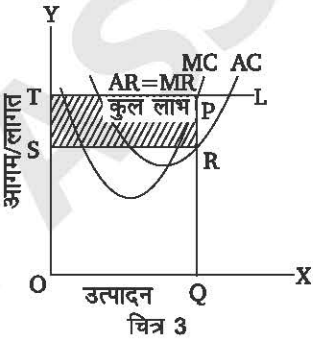

चित्र 3

(ii) **शून्य अथवा सामान्य लाभ की स्थिति**—चित्र-4 में दी हुई कीमत रेखा RT है। फर्म P बिन्दु पर साम्य की स्थिति में होगी, क्योंकि इस बिन्दु पर $MC = MR$ एवं MC रेखा MR रेखा को नीचे से काटती है। रेखाचित्र में $AR = AC$ अत: फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होगा। अत: बिन्दु P शून्य लाभ बिन्दु है। संक्षेप में, P बिन्दु पर

कीमत = PQ, उत्पादन = OQ, लाभ = शून्य (सामान्य)

(iii) **हानि की स्थिति**—माना चित्र-5 में फर्म के लिए कीमत रेखा TC है। फर्म बिन्दु P पर साम्य की स्थिति में होगी क्योंकि इस बिन्दु पर $MC = MR$ के है एवं MC रेखा MR रेखा को नीचे से काटती है। निम्नांकित चित्र में AC रेखा TC रेखा से ऊपर है; अत: फर्म को हानि होगी। संक्षेप में, यदि फर्म की कीमत रेखा TC है तो

कीमत = PQ, उत्पादन = OQ, कुल हानि = $LRPT$

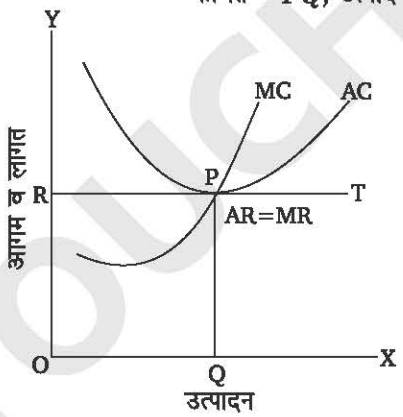

चित्र 4

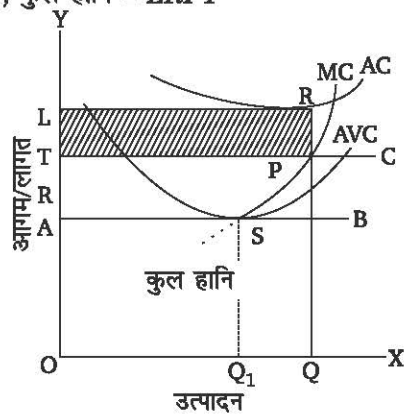

चित्र 5

परन्तु बिन्दु S के नीचे फर्म अल्पकाल में उत्पादन बन्द कर देगी क्योंकि इसके बाद उसकी परिवर्तनशील लागत भी नहीं निकलेगी। OQ_1 अल्पकाल में न्यूनतम उत्पादन मात्रा है।

3. **दीर्घकाल में फर्म का साम्य**—दीर्घकाल में फर्म के पर्याप्त समय होता है जिससे कि वस्तु की पूर्ति को घटा-बढ़ाकर पूर्ण रूप से माँग के अनुरूप किया जा सकता है। अत: दीर्घकाल में एक फर्म को न लाभ होगा और न हानि। यदि दीर्घकाल में फर्म को लाभ की प्राप्ति होती है (अर्थात् $AR > AC$) तो अनेक फर्में उद्योग में प्रवेश करने लगेंगी, फलस्वरूप वस्तु की पूर्ति बढ़ जाएगी और AR, AC के बराबर हो जाएगी। इसके विपरीत, यदि फर्म को हानि होने लगती है (अर्थात् $AR < AC$) तो कई फर्में उद्योग को छोड़ जाएँगी, फलस्वरूप पूर्ति घट और AR, AC के बराबर हो जाएगी। अत: दीर्घकाल में फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होगा।

TOUCH 'n' PASS

दीर्घकाल में एक फर्म के साम्य हेतु निम्नलिखित दोहरी दशा पूरी होनी अत्यावश्यक है—

(i) $MR = MC$ (ii) $AR = AC$

चूँकि पूर्ण प्रतियोगिता में $AR = MR$ के भी होती है, अत: फर्म के दीर्घकालीन साम्य को निम्नलिखित रूप से भी प्रदर्शित किया जा सकता है—

$$AR = (\text{Price}) = MR$$
$$= MC = AC$$

चित्र-6 में LAC दीर्घकालीन औसत लागत रेखा है एवं LMC दीर्घकालीन सीमान्त लागत रेखा। बिन्दु P पर $AR = AC$ एवं $MR = MC$ के है। अत: बिन्दु P पर साम्य की दोहरी दशा पूरी हो जाती है। संक्षेप में,

$$\text{मूल्य} = PQ$$
$$\text{उत्पादन साम्य} = OQ$$
$$\text{लाभ} = \text{शून्य (सामान्य)}$$

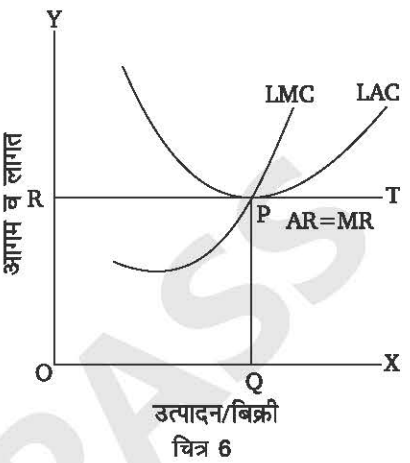

चित्र 6

प्र.5. पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकृत प्रतियोगिता का तुलनात्मक विवरण दीजिए।
Give a comparative discussion between Perfect Competition and Monopolistic Competition.

उत्तर

पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकृत प्रतियोगिता की तुलना
(Comparison between Perfect Competition and Monopolistic Competition)

इन दोनों बाजारों का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए हम इनकी निम्नलिखित समानताओं और असमानताओं का अध्ययन करते हैं—

समानताएँ (Similarities)

पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकृत प्रतियोगिता के मध्य निम्नलिखित समानताएँ पायी जाती हैं—

1. **फर्म का सन्तुलन**—दोनों ही बाजार स्थितियों में किसी फर्म का सन्तुलन उस बिन्दु पर स्थापित होता है जहाँ सीमान्त आगम (MR) एवं सीमान्त व्यय (MC) समान हों। यह दशा फर्म के सामान्य सन्तुलन की दशा है।
2. **क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या**—दोनों ही बाजार दशाओं में क्रेताओं एवं विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है।
3. **फर्मों के प्रवेश एवं निष्कासन की स्वतन्त्रता**—दोनों ही बाजार दशाओं में फर्मों के प्रवेश तथा निष्कासन की स्वतन्त्रता होती है। यदि दीर्घकाल में उद्योग में फर्मों को असामान्य लाभ मिल रहे हों तो अन्य दूसरी फर्में भी उद्योग में प्रवेश कर जाती हैं एवं यदि उद्योग में कुछ फर्मों को दीर्घकाल में हानि मिल रही हो तो वे उद्योग से बाहर चली जाती हैं।
4. **सामान्य लाभ**—दोनों ही बाजार दशाओं में दीर्घकाल में फर्मों को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होते हैं। पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में उद्योग की सभी फर्मों को केवल सामान्य लाभ मिलना निश्चित होता है जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में कुछ पुरानी एवं व्यापारिक प्रतिष्ठा वाली फर्में असामान्य लाभ भी प्राप्त कर सकती हैं।

असमानताएँ (Dissimilarities)

पूर्ण प्रतियोगी तथा एकाधिकृत प्रतियोगी बाजारों में निम्न प्रकार की असमानताएँ पायी जाती हैं—

1. **वस्तु की प्रकृति**—पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग की सभी फर्में बिल्कुल एक जैसी वस्तुओं का उत्पादन करती हैं जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में उद्योग की सभी फर्में मिलती-जुलती वस्तुओं का उत्पादन करती हैं। एकाधिकृत प्रतियोगिता में वस्तु विभेद पाया जाता है।
2. **बाजार स्थिति का ज्ञान**—पूर्ण प्रतियोगी बाजार में क्रेताओं एवं विक्रेताओं दोनों को ही बाजार स्थिति का पूर्ण ज्ञान होता है, लेकिन एकाधिकृत प्रतियोगिता में क्रेताओं एवं विक्रेताओं को बाजार स्थिति के पूर्ण ज्ञान का अभाव होता है।

TOUCH 'n PASS

3. **साधनों की गतिशीलता**—पूर्ण प्रतियोगिता में उत्पादन साधनों की गतिशीलता पूर्ण होती है, लेकिन एकाधिकृत प्रतियोगिता में साधनों की गतिशीलता अपूर्ण होती है। उदाहरणार्थ, श्रम की गतिशीलता पूर्ण प्रतियोगी बाजार में केवल मजदूरी दर पर आधारित मानी गई है जबकि सच्चाई यह है कि श्रम की गतिशीलता को मजदूरी के अतिरिक्त अन्य अनेक तत्त्व प्रभावित करते हैं।
4. **वस्तु कीमत**—जब कोई फर्म पूर्ण प्रतियोगिता में सम्मिलित होती है, तो उसे पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उद्योग द्वारा निर्धारित वस्तु की कीमत को स्वीकार करना पड़ता है। इसी कारण सम्पूर्ण बाजार में वस्तु की केवल एक कीमत प्रचलित होती है और फर्म को कीमत ग्रहण करने वाला (Price-taker) कहा जाता है। एकाधिकृत प्रतियोगिता में प्रत्येक फर्म को कुछ अंश तक एकाधिकार प्राप्त होता है। अत: एकाधिकृत प्रतियोगिता में फर्म कुछ अंश तक वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकती है। इसी कारण उसे कीमत निर्धारक (Price-maker) कहा जाता है।
5. **आय-वक्र**—पूर्ण प्रतियोगिता की यह विशेषता है कि इसमें सम्पूर्ण उद्योग में वस्तु की केवल एक ही कीमत प्रचलित होती है, अत: कीमत = औसत आगम = सीमान्त आम (Price = $AR = MR$) अर्थात् आय वक्र X-अक्ष के समानान्तर होते हैं अथवा माँग वक्र (AR) पूर्ण रूप से मूल्य सापेक्ष (लोचदार) होती है। एकाधिकृत प्रतियोगिता में वस्तु-विभेद अवश्य होता है, चाहे यह किसी भी अंश का हो। फर्म का औसत आय वक्र (AR) बाईं ओर से दाईं ओर नीचे गिरता है लेकिन इसकी मूल्य-सापेक्षता (लोच) बहुत अधिक होती है। औसत आगम (MR) क्योंकि बाईं ओर से दाईं ओर नीचे गिरता है, अत: सीमान्त आगम (MR) और भी अधिक नीचे गिरता है।
6. **कीमत तथा लागत**—दोनों ही बाजार दशाओं में सन्तुलन उस बिन्दु पर स्थापित होता है जहाँ सीमान्त आगम = सीमान्त लागत ($MR = MC$) है। पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत = औसत आगम = सीमान्त आगम (Price = $AR = MR$), अत: सन्तुलन की स्थिति में कीमत = औसत आगम = सीमन्त लागत (Price = $AR = MR = MC$) पूर्ण प्रतियोगिता में निर्धारित कीमत, सीमान्त लागत के समान होती है जबकि एकाधिकृत प्रतियोगिता में औसत आगम सीमान्त आगम से अधिक ($AR > MR$)। अत: सन्तुलन की अवस्था में औसत आगम, सीमान्त आगम से अधिक लेकिन सीमान्त आगम, सीमान्त लागत के बराबर [$AR > MR (= MC)$], होता है। सरल शब्दों में, हम कह सकते हैं कि एकाधिकृत प्रतियोगिता में निर्धारित कीमत, पूर्ण प्रतियोगिता में निर्धारित कीमत से सदैव अधिक होती है।
7. **विक्रय लागत**—पूर्ण प्रतियोगिता के क्रेताओं तथा विक्रेताओं को बाजार का सम्पूर्ण ज्ञान होने के कारण विक्रय लागतों की कोई आवश्यकता नहीं होती लेकिन एकाधिकृत प्रतियोगिता में फर्म अपनी बिक्री बढ़ाने के लिए गैर-कीमत प्रतियोगिता को अपनाती है, इसी कारण बाजार में विज्ञापन एवं प्रचार बहुत महत्त्व रखता है।
8. **प्लाण्ट का आकार**—पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म दीर्घकाल में जो उत्पादन करती है वह प्लाण्ट के अनुकूलतम आकार (Optimum Capacity) पर किया जाता है क्योंकि सन्तुलन बिन्दु पर कीमत = औसत आगम = सीमान्त आगम = सीमान्त लागत = न्यूनतम औसत लागत, अर्थात् दीर्घकालीन कीमत वस्तु की न्यूनतम लागत के समान होती है, परन्तु एकाधिकृत प्रतियोगिता में फर्म आदर्शतम आकार बिन्दु पर उत्पादन नहीं कर पाती क्योंकि फर्म का दीर्घकालीन सन्तुलन औसत लागत वक्र के न्यूनतम बिन्दु के बाईं ओर होता है।

प्र.6. खेल के सिद्धान्त का दृष्टिकोण समझाइए एवं इसकी आलोचनात्मक समीक्षा भी कीजिए।
Explain the outlook of the theory of games and also give its critical appraisal.

उत्तर

खेल सिद्धान्त का दृष्टिकोण
(Approach of the Theory of Games)

अर्थशास्त्र में खेल सिद्धान्त (Theory of Games) को अल्पाधिकारी समस्या पर लागू किया गया है। **प्रो० वॉन न्यूमन** (Von Neumann) एवं **मॉरगनस्टर्न** (Moregenstern) ने अपनी पुस्तक "The Theory of Games and Economic Behaviour" जो कि सन् 1944 ई० में प्रकाशित हुई, में परस्पर विपरीत (Conflicting) दशाओं वाली विभिन्न समस्याओं के प्रति एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया। खेल सिद्धान्त का प्रयोग केवल अल्पाधिकारी समस्याओं पर ही नहीं किया गया है बल्कि अन्य आर्थिक समस्याओं, जैसे अनिश्चितता की दशा में माँग पर भी लागू किया गया है। मूल रूप से, खेल सिद्धान्त यह बताने का प्रयास करता है कि उस व्यक्ति के लिए कार्य करने की युक्तियुक्त या विवेकशील विधि कौन-सी है, जिसके सामने ऐसी स्थिति हो

जिसका निराकरण केवल उसकी अपनी क्रियाओं पर नहीं अपितु दूसरों की क्रियाओं पर भी निर्भर है और दूसरों के सामने भी कार्य करने की ऐसी विवेकशील (rational) विधि चुनने की समस्या है। यहाँ स्पष्ट करेंगे कि खेल सिद्धान्त इस आधारभूत प्रश्न की व्याख्या किस प्रकार करता है। यहाँ हम अपने आपको अल्पाधिकार समस्या तक ही सीमित रखेंगे। **प्रो० न्यूमन** तथा **मारगनस्टर्न** के अनुसार एक अल्पाधिकार बाजार स्थिति में, व्यक्तिगत अल्पाधिकारी के समक्ष कार्य करने के युक्तियुक्त तरीके को चुनने की समस्या होती है। इसको चयन करते समय उसे इस बात का आवश्यक रूप से ध्यान रखना होता है कि उसके प्रतिद्वन्द्वियों की सम्भावित प्रतिक्रिया क्या होगी, जिसकी प्रतिक्रियाएँ, बदले में उसे कितना प्रभावित करेंगी। उसके समक्ष उसी प्रकार की समस्याएँ आती हैं जो किसी भी खेल के एक खिलाड़ी के समक्ष आती हैं।

दूसरे शब्दों में, खेल सिद्धान्त में खिलाड़ी को सम्भावित भिन्न-भिन्न कार्य करने के तरीकों में से, जिनको प्रविधियाँ या रणनीतियाँ (Strategies) कहा जाता है, एक को चुनना होता है। एक प्रविधि इस प्रकार कार्य करने की नीति है जिसको कोई एक खिलाड़ी खेल के दौरान अपनाता है। एक व्यक्ति के समक्ष बहुत-सी सम्भावित प्रविधियाँ होती हैं जिनमें से उसको एक समय में एक को ही चुनना होता है। अल्पाधिकार की स्थिति में, विभिन्न वैकल्पिक प्रविधियाँ (Alternative Strategies) जो कि प्रासंगिक हैं, निम्न प्रकार हैं—1. कीमत में परिवर्तन करना, 2. उत्पादन मात्रा में परिवर्तन करना, 3. विज्ञापन व्यय को बढ़ाना, 4. उत्पादन में विभिन्नता लाना। इसके अतिरिक्त विज्ञापन बढ़ाने को विभिन्न प्रविधियों में विभाजित किया जा सकता है जो कि विभिन्न प्रकार के विज्ञापन देने के तरीकों पर निर्भर होंगी। उदाहरणार्थ—विज्ञापन करने के लिए कई माध्यमों को अपनाया जा सकता है; जैसे—रेडियो द्वारा, टेलीविजन में विज्ञापन देकर, परचे बाँटकर, पोस्टर आदि। इसी प्रकार से उत्पादन में विभिन्नता लाने से सम्बन्धित कई प्रविधियाँ हो सकती हैं जो कि इस बात पर निर्भर करेंगी कि किस प्रकार से पदार्थ का चयन किया जाए जैसे कि पैकेट के रंग, पैकेट के प्रकार, पदार्थ की किस्म में से किसमें परिवर्तन किया जाए।

जब खेल में भाग लेने वाला प्रत्येक सहभागी, यहाँ हमारे उदाहरण में प्रत्येक अल्पाधिकारी, एक प्रविधि या रणनीति को चुन लेता है तो समस्त सहभागियों की प्रविधियों की पारस्परिक क्रिया पर ही खेल का निर्णय निर्भर करता है। अल्पाधिकार के सन्दर्भ में खेल के परिणाम से आशय है—बाजार एवं लाभ में विभिन्न अल्पाधिकारियों का भाग कितना-कितना होगा लेकिन खेल के परिणाम को निश्चिततापूर्वक नहीं कहा जा सकता किन्तु अपने विश्लेषण में हम यह मान लेंगे कि खेल के सिद्धान्त में खेल के परिणाम का पता चल जाता है।

खेल सिद्धान्त की आलोचनात्मक समीक्षा
(Critical Appraisal of the Game Theory)

जिस प्रकार से खेल सिद्धान्त की आलोचनात्मक समीक्षा निम्न प्रकार से की गई है—

सर्वप्रथम, खेल सिद्धान्त की इस आधारभूत मान्यता को गलत बताया गया है कि अल्पाधिकारी का यह विश्वास है कि उसका प्रतिद्वन्द्वी उसको अधिकतम हानि पहुँचाने का प्रयास करता है। यह बताया गया है कि उद्यमकर्त्ता (अल्पाधिकारी) के व्यवहार के सम्बन्ध में इस मान्यता का भावार्थ यह है कि वह अधिकतम हानि की सम्भावनाओं को न्यूनतम करना चाहता है अर्थात् उसकी नीति सुरक्षित खेल खेलने की है किन्तु अल्पाधिकारी का इस प्रकार का व्यवहार बहुत निराशाजनक एवं रूढ़िवादी है। वास्तविक जगत में उद्यमकर्त्ता इस प्रकार की निराशावादी और सावधानी की रणनीति को कभी नहीं अपनाता। वह बाजार में अपने हिस्से एवं लाभों को बढ़ाना चाहता है और इस कार्य के लिए वह कई बार जोखिम भी उठाता है। **प्रो० फर्गुसन** (Ferguson) तथा **क्रेप्स** (Kreps) के अनुसार—"खेल सिद्धान्त मुख्यत: उस उद्यमकर्त्ता का वर्णन ठीक प्रकार से करता है जो अपनी शोधक्षमता (Solvancy) को बनाए रखना चाहता है। यह उस प्रावैगिक उद्यमकर्त्ता के व्यवहार का उचित वर्णन नहीं है जो निरन्तर लाभ की प्राप्ति की खोज में रहता है।"

दूसरी तरफ यह भी कहा गया है कि वास्तविक जगत में उद्यमकर्त्ता को उतनी जानकारी वास्तव में नहीं होती जितनी जानकारी की कल्पना इस सिद्धान्त में की गई है। प्रतियोगियों की चालों का तो कहना क्या, उद्यमकर्त्ताओं को अपने लिए समस्त सम्भव प्रविधियों का भी पूर्ण ज्ञान नहीं होता जिनको वे स्वीकार कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त वास्तविक जीवन में अत्यन्त अनिश्चितता होती है जिसका न तो खेल सिद्धान्त में समावेश किया गया है और न ही इसका इसमें सरलतापूर्वक समावेश किया जा सकता है। तीसरे रूप में यह कहा गया है कि अल्पाधिकारी खेल पूर्णत: प्रतिपक्षी खेल (Adverse Game) नहीं होता और न ही यह स्थिर राशि खेल (Constant-sum Game) होता है जैसा कि खेलों के सिद्धान्त में माना गया है। इन मान्यताओं के विपरीत, एक अल्पाधिकारी द्वारा कीमत में कमी कर देने से कुल माँग-मात्रा में वृद्धि हो जाती है, उपभोक्ता केवल एक उत्पादक से दूसरे उत्पादक के पास ही नहीं चले जाते। इसके अतिरिक्त, अल्पाधिकारी केवल एक निश्चित लाभ राशि में अपने-अपने लिए अधिक प्राप्ति के लिए आपस में संघर्ष भी नहीं करते।

खेल सिद्धान्त में एक सबसे बड़ी कमी भी है। वह यह कि खेल सिद्धान्त द्वारा निश्चित समाधान प्रदान करने हेतु दोनों द्वि-अधिकारियों का विवेकशील होना अत्यावश्यक है अर्थात् दोनों अपनी अल्पमहिष्ठ एवं महाल्पिष्ठ प्रविधियों का चयन करें जबकि दोनों में से किसी एक द्वि-अधिकारी के पास पर्याप्त ज्ञान नहीं होता अथवा वह अधिक विवेकशील नहीं होता अथवा वह जोखिम लेने को तैयार होता है तो इन किन्हीं भी कारणों से वह अल्पमहिष्ठ प्रविधि को नहीं चुनेगा। यदि ऐसा है, तो अन्य उद्यमकर्त्ताओं द्वारा महाल्पिष्ठ प्रविधि का अपनाया जाना लाभदायक नहीं होता है। ऊपर दी गई परिभाषा में, किसी भी कारणवश B यदि B_2 प्रविधि का चयन करता है, तब A द्वारा A_3 महाल्पिष्ठ प्रविधि का चयन करने पर उसको लाभों में अधिकतम सम्भव भाग प्राप्त नहीं होगा। B द्वारा B_2 अल्पमहिष्ठ प्रविधि के अपनाने पर A को A_1 प्रविधि अपनाने पर लाभों में से अधिकतम सम्भव भाग प्रदान हो सकेगा।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जब दोनों में से कोई एक द्वि-अधिकारी विवेकशील नहीं है तो खेल सिद्धान्त द्वारा समस्या का ठीक समाधान प्राप्त नहीं हो सकता। **प्रो० बॉमोल** के अनुसार—"विवेकपूर्ण महाल्पिष्ठ प्रविधि के तभी ठीक होने की गारण्टी है जबकि दूसरे विवेकपूर्ण व्यक्ति के विरुद्ध अपनायी जाए।"

उपरोक्त आलोचना से यह स्पष्ट है कि खेल सिद्धान्त अल्पाधिकारी समस्या का सम्पूर्ण व सर्वमान्य समाधान प्रस्तुत नहीं करता। हम **प्रो० फर्गुसन** तथा **क्रेप्स** को पुन: उद्धृत करते हैं—"हम ठीक प्रकार से कह सकते हैं कि खेल सिद्धान्त प्रतियोगी स्थितियों के कुछ महत्त्वपूर्ण पहलुओं की ओर संकेत करता है परन्तु यह ऐसा मॉडल नहीं है जो कि अल्पाधिकारी समस्या का पूर्ण समाधान प्रस्तुत करे।" जब **जॉन वॉन न्यूमन** (John Von Neumann) तथा **ऑस्कर मॉरगनस्टर्न** (Oskar Morgenstern) ने सन् 1944 में अपनी पुस्तक *'The Theory of Games and Economic Behaviour'* को प्रकाशित किया तो विस्तृत रूप से यह आशा की गई थी कि यह नया सिद्धान्त अल्पाधिकारी समस्या के समाधान को एक नया दृष्टिकोण अवश्य प्रदान करेगा लेकिन इन आशाओं को प्राप्त नहीं किया जा सका है। इस प्रकार **प्रो० डोनल्ड वाट्सन** (Donald Watson) का कहना है—"यद्यपि सन् 1944 से खेल सिद्धान्त में इसके योगदान के सम्बन्ध में बहुत निराशा हुई है।" टेक्सास विश्वविद्यालय के **प्रो० एच०एच० लीभाफस्की** (H.H. Leibhafsky) ने भी इसी प्रकार से कहा है—"खेल सिद्धान्त को विश्लेषण के इस क्षेत्र में प्रयोग करने की जो बड़ी आशाएँ थीं उनकी प्राप्ति नहीं हई है। वस्तुत: इसकी मुख्य उपयोगिता इस बात में है कि यह एक ऐसा उर्वर क्षेत्र प्रदान करता है जिसमें अल्पाधिकारी समस्याओं का विश्लेषण करने में कल्पना विचरण करती रह सकती है।"

प्र.7. सरकार की आर्थिक क्रियाओं की वृद्धि के कारणों तथा सीमाओं पर प्रकाश डालिए।

Throw light on the factors and limitations of the increasing economic activities of the government.

उत्तर

सरकार की आर्थिक क्रियाओं की वृद्धि के कारण
(Factors Responsible for Increasing Government's Economic Activities)

वर्तमान समय में देश के आर्थिक क्रिया-कलापों में सरकार की भूमिका निरन्तर बढ़ती जा रही है जिसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

1. **आर्थिक विकास में प्रत्यक्ष सहभागिता**—आज प्रत्येक राष्ट्र तीव्रगति से आर्थिक विकास हेतु प्रतिबद्ध है जिसके लिए अतिरिक्त साधनों की व्यवस्था करना तथा उपलब्ध संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग करना आवश्यक होता है। विकासशील देशों के समक्ष पूँजी की कमी तथा साहसी वर्ग के अभाव की समस्या होती है। अत: ऐसे देशों में सरकारें पूँजी निर्माण कार्य, आधारभूत उद्योगों की स्थापना तथा सार्वजनिक उपयोग की वस्तुओं के निर्माण के कार्य को अपने हाथों में ले लेती हैं। ऐसे देशों में पूँजीगत परियोजनाओं में जहां निजी निवेश उत्साहित नहीं होता वहाँ सरकार स्वयं निवेश करना प्रारम्भ कर देती है। इसके अतिरिक्त कुछ उद्योग एवं योजनाएं ऐसी होती हैं जिनका संचालन सरकार के संरक्षण में ही उपयुक्त समझा जाता है यथा सामरिक महत्त्व के उद्योग एवं विदेशी विनिमय नियन्त्रण आदि।
2. **जनहित से सम्बन्धित कार्य**—आज समस्त राष्ट्रों में जनकल्याणकारी सरकारें कार्यरत हैं। जिनका प्रमुख उद्देश्य देश की जनता के सामान्य कल्याण में वृद्धि करना है। इसके लिए सरकारें जनहित की सामूहिक योजनाएँ चलाती हैं; जैसे—सामाजिक बीमा, शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात एवं संचार सेवाएँ आदि। इसके अतिरिक्त आर्थिक शोषण से मुक्ति हेतु भी सरकारें जागरूक रहती हैं तथा यह व्यवस्था करती है कि जनता को उसकी आवश्यकता की वस्तुएँ सहजता से सुलभ हो सकें।

3. **गरीबी एवं बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रम**—विश्व की समस्त सरकारें विशेषकर विकासशील देशों की सरकारें गरीबी उन्मूलन एवं बेरोजगारी की समाप्ति हेतु सतत प्रयासरत हैं जिसके लिए सरकारें तरह-तरह की योजनाएं चलाती हैं जिन पर भारी मात्रा में धन व्यय करने की आवश्यकता पड़ती है। बेरोजगारी की समस्या का समाधान करने में निजी क्षेत्र का योगदान निराशाजनक रहा है अत: सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के निर्माण कार्यों में वृद्धि करके लोगों को रोजगार उपलब्ध कराने का कार्य करती है।
इसके अतिरिक्त गरीबों के हित में अनेक विकास कार्यक्रम चलाती है तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से उन्हें सस्ती दर पर अथवा नि:शुल्क आवश्यक वस्तुओं को उपलब्ध कराती है।
4. **सन्तुलित आर्थिक विकास का कार्य**—संसार के अधिकांश देशों विशेषकर अल्पविकसित देशों में सन्तुलित आर्थिक विकास नहीं हो पाया है। इन देशों में कुछ क्षेत्रों में विकास हो चुका होता है जबकि कुछ क्षेत्र विकास से अछूते रहते हैं अत: इन देशों में सम्पूर्ण राष्ट्र के जीवन स्तर में समानता लाने के लिए देश के अविकसित भागों का विकास करना अत्यन्त आवश्यक होता है ताकि सामाजिक समानता तथा सन्तुलन बना रहे। निजी उद्यमी उन्हीं क्षेत्रों एवं उद्योगों में धन विनियोजित करते हैं जिनसे उन्हें लाभ प्राप्त होता है। इससे क्षेत्र विशेष में उपलब्ध मानवीय एवं प्राकृतिक संसाधनों का समुचित विदोहन नहीं हो पाता। अत: सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के माध्यम से सरकारें वहाँ विकास का बीड़ा उठाती हैं, जिसके लिए भारी मात्रा में सरकारी व्यय की आवश्यकता पड़ती है।
5. **आर्थिक विषमता को कम करना तथा पूँजी का संचय करना**—विकासशील देशों में आर्थिक विषमता व्याप्त रहती है तथा पूँजी निर्माण की दर नीची होती है। इन देशों में निर्धनता का दुश्चक्र देखने में आता है। प्रति व्यक्ति आय कम होने के कारण घरेलू बचतें कम होती हैं। आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक होता है। इसी तरह पूँजी की कमी को दूर करने के लिए भी सरकार तरह-तरह का प्रयास करती है। इससे आर्थिक क्रियाओं में सरकार की सहभागिता बराबर बढ़ती जा रही है।
6. **नियमन एवं नियन्त्रण**—सरकार देश के आर्थिक जीवन को नियमित एवं नियन्त्रित भी करती है। सरकार उपभोक्ताओं तथा उत्पादकों के हितों की रक्षा करने के लिए एकाधिकारियों की क्रियाओं, मूल्य स्तर में होने वाले उतार-चढ़ावों, मुद्रास्फीति, मुद्रा-संकुचन तथा व्यापार चक्र पर नियन्त्रण प्राप्त करने का प्रयास करती है। इसके साथ ही सरकार हानिकारक एवं नशीली वस्तुओं के उत्पादन एवं विक्रय पर नियन्त्रण लगाती है तथा वस्तुओं की पूर्ति एवं उनकी गुणवत्ता को बनाए रखने हेतु कानून बनाती है तथा उस कानून को तोड़ने वाले को दण्ड भी देती है। सरकार श्रमिकों के हितों की सुरक्षा के लिए श्रमिकों एवं मालिकों के सम्बन्धों को नियमित करती है। राष्ट्र हित में देश में उपलब्ध तथा आयातित संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग हो तथा तस्करी की प्रवृत्ति हतोत्साहित हो, सरकार इस बात की भी व्यवस्था करती है। इस तरह, देश की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए सरकार इस तरह का प्रयास करती है कि देश में आर्थिक व्यवस्था बनी रहे। इस व्यवस्था को असफल बनाने का प्रयास करने वाले व्यक्ति अथवा संस्था को दण्डित किया जाता है।
7. **राष्ट्र के आर्थिक ढांचे की रक्षा करना**—राज्य देश के आर्थिक जीवन के स्वरूप एवं स्वभाव को निर्धारित करता है। राज्य देश की परिस्थितियों को ध्यान में रखकर यह निश्चित करता है कि देश के आर्थिक जीवन का ढाँचा कैसा हो तथा उसको किस प्रकार स्थायी बनाए रखा जाय। राज्य आर्थिक ढांचे को सुरक्षित रखने के लिए कानून बनाता है तथा कार्यरूप में परिणत करता है।
8. **आर्थिक स्थिरता**—देश में आर्थिक स्थायित्व को बनाए रखना भी सरकार का दायित्व होता है। सरकार मूल्यों में स्थिरता तथा उत्पादन एवं रोजगार के स्तरों को ऊँचा तथा स्थायी बनाए रखने का कार्य भी करती है जिसके लिए वह सार्वजनिक व्यय, कराधान तथा सार्वजनिक ऋण आदि का सहारा लेती है।
9. **जनोपयोगी सेवाएँ**—मानवीय आवश्यकताओं में वृद्धि होने के साथ-साथ आज उत्पादन एवं वितरण की प्रणालियां भी बहुत जटिल हो गई हैं अत: यह आवश्यक हो गया है कि इन आवश्यकताओं की पूर्ति में राज्य पर्याप्त सहायता करे। इसे दृष्टिगत रखते हुए राज्य ने बहुत सी जनोपयोगी सेवाओं का नियन्त्रण अपने हाथ में ले लिया है, जैसे—यातायात एवं संचार, पानी एवं बिजली की व्यवस्था आदि।
10. **जोखिमों का अल्पीकरण**—सरकार विभिन्न प्रकार के जोखिमों के दुष्परिणामों से समाज को बचाने का प्रयास करती है। औद्योगीकरण के फलस्वरूप आज आर्थिक जीवन बहुत ही अनिश्चित हो गया है। औद्योगीकरण में वृद्धि के

परिणामस्वरूप दुर्घटना, बीमारी, बेरोजगारी, तथा व्यापार चक्रों के दुष्परिणाम सामने आने लगे हैं, समाज को इन समस्याओं से बचाने का कार्य भी सरकार का है।

11. **आर्थिक सहायता**—व्यक्तियों को उनकी आर्थिक क्रियाओं के संचालन हेतु सरकार आर्थिक सहायता प्रदान करती है। सरकार कृषकों को समय-समय पर ऋण उपलब्ध कराती है, उपदान (Subsidy) देती है, करों में छूट देती है तथा तकनीकी सहायता उपलब्ध कराती है। उद्योगों को संरक्षण प्रदान करती है। उचित मूल्य पर वस्तुओं की बिक्री हेतु बाजारों का नियमन करती है तथा भण्डारण की व्यवस्था करती है। सरकार व्यक्तियों को व्यवसाय, मूल्य तथा विपणन सम्बन्धी सूचनाएं उपलब्ध कराकर आर्थिक जीवन की अनिश्चितताओं एवं बाधाओं को दूर करती है।
12. **मानव संसाधन विकास कार्यक्रम**—देश में आर्थिक विकास को गतिशील बनाने के लिए सरकार द्वारा मानव संसाधन विकास पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता है। स्वस्थ एवं सुशिक्षित श्रम के बिना देश की वांछित प्रगति सम्भव नहीं होती। साधनों के अभाव में व्यक्ति स्वयं की शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास एवं पौष्टिक भोजन की समुचित व्यवस्था नहीं कर पाता। अत: यह कार्य सरकार को करना पड़ता है।
13. **युद्ध एवं अन्तर्राष्ट्रीय मामले**—देश की सुरक्षा करना तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को सौहार्दपूर्ण बनाए रखना भी सरकार का दायित्व होता है। देश की सुरक्षा के लिए वर्तमान सरकारों को अधिक साधन जुटाने होते हैं। आधुनिक युद्ध अत्यधिक महंगे होते हैं तथा सम्पूर्ण देश के आर्थिक जीवन एवं आर्थिक स्थिरता को छिन्न-भिन्न कर देते हैं। सरकार को युद्धक हथियारों के उत्पादन एवं युद्ध तकनीकों एवं उपकरणों के आयात तथा सैनिकों की व्यवस्था पर भारी मात्रा में धन की आवश्यकता पड़ती है। युद्ध होने पर उससे होने वाली हानि की भरपाई करनी होती है। अत: वर्तमान सरकारें मैत्री पूर्ण सम्बन्धों को बनाए रखने तथा आपसी आर्थिक सहयोग एवं व्यापार को बढ़ावा देने के लिए कूटनीतिक प्रयास करती हैं। इसके लिए एक देश, दूसरे देश में दूतावास खोलता है तथा उसमें कर्मचारियों की नियुक्ति करता है। एक देश से दूसरे देश में शिष्टमण्डल आते रहते हैं, नागरिकों की शिक्षा एवं संस्कृति का आदान-प्रदान होता रहता है। इससे सरकार के आर्थिक कार्यों में पर्याप्त वृद्धि हो गई है।
14. **आर्थिक नियोजन**—वर्तमान समय में आर्थिक नियोजन राष्ट्रों की आर्थिक नीति का प्रमुख अंग बन गया है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु सरकार को भारी मात्रा में धन व्यय करना पड़ता है। जिसकी पूर्ति हेतु सरकार कर लगाती है, ऋण लेती है तथा घाटे का बजट बनाती है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में आर्थिक नियोजन भले ही कुछ कम महत्त्वपूर्ण हो, परन्तु समाजवादी एवं अल्प विकसित देशों में आर्थिक नियोजन अत्यधिक आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण होता है।

इस तरह स्पष्ट है कि देश के आर्थिक जीवन में सरकार की सहभागिता तथा हस्तक्षेप दिन-प्रतिदिन निरन्तर बढ़ता जा रहा है। यदि यही प्रवृत्ति विद्यमान रही तो वह दिन दूर नहीं जब मनुष्य हर कार्य के लिए राज्य पर निर्भर हो जाएगा।

सरकार की आर्थिक क्रियाओं की सीमा
(Limitations of Government Economic Activities)

इसमें सन्देह नहीं है कि आर्थिक विकास को गति प्रदान करने तथा सामाजिक कल्याण में वृद्धि हेतु देश की आर्थिक क्रियाओं में सरकार की सहभागिता उचित एवं वांछनीय है, परन्तु राज्य को किस सीमा तक आर्थिक क्रियाकलापों में भाग लेना चाहिए इस सम्बन्ध में दो विचारधाराएं प्रचलित हैं—

1. **पूर्ण सरकारी हस्तक्षेप**—इस विचारधारा के समर्थकों का मत है कि विकास के सभी कार्यों को सरकार द्वारा अपने नियन्त्रण में रखना चाहिए। यदि इन कार्यों को निजी क्षेत्र पर छोड़ दिया जाएगा तो अधिकतम सामाजिक लाभ प्राप्त करना सम्भव नहीं हो सकेगा। समाजवादी विचारधारा से प्रभावित इन विचारकों का मत है कि समस्त संसाधनों पर प्रत्यक्ष नियन्त्रण स्थापित करते हुए सरकार को साहसी की भूमिका निभानी चाहिए और सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना करनी चाहिए। सरकार द्वारा आर्थिक नियोजन की प्रक्रिया अपनाते हुए देश का तेजी से विकास किया जाना चाहिए। विकास का कार्य निजी क्षेत्र पर छोड़कर प्रतीक्षा करने से आर्थिक विकास नहीं किया जा सकेगा।
2. **क्रमिक हस्तक्षेप की भूमिका**—इस विचारधारा के समर्थकों का कथन है कि सरकार को आर्थिक क्षेत्र में एकाएक प्रभावी ढंग से हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए बल्कि क्रमश: धीरे-धीरे तथा जहाँ आवश्यकता हो वहीं हस्तक्षेप करना चाहिए। कभी-कभी आवश्यकता से अधिक सरकारी हस्तक्षेप अर्थव्यवस्था के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। सरकार को देश की परिस्थितियों के अनुरूप ही आर्थिक क्रियाओं में हस्तक्षेप करना चाहिए।

परन्तु अल्पविकसित देशों में जहां गरीबी व्याप्त रहती है तथा पूँजी निर्माण की गति धीमी और पूँजीगत वस्तुओं की नितान्त कमी रहती है वहाँ आर्थिक विकास को प्रत्यक्ष सरकारी हस्तक्षेप के वगैर तेज नहीं किया जा सकता है। समाजवादी समाज की स्थापना के उद्देश्य से भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था की प्रणाली को अपनाया गया है जहाँ निजी क्षेत्र के साथ-साथ सार्वजनिक क्षेत्र में भी उद्योगों की स्थापना की गई है, सरकार की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से ही निजी क्षेत्र फलता-फूलता है। इसी तरह सरकार भी निजी उद्यमियों के सक्रिय सहयोग के बिना अधिक समय तक सफल नहीं हो सकती। निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र दोनों की अपनी-अपनी कमियां तथा सीमाएं हैं फिर भी देश के आर्थिक विकास में दोनों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। अत: सरकारी हस्तक्षेप को मध्यमार्गी होना चाहिए।

प्र.8. आर्थिक विकास हेतु किए जाने वाले सरकारी प्रयासों का उल्लेख कीजिए।

Mention the government's efforts to promote economic development.

उत्तर

आर्थिक विकास हेतु किए जाने वाले सरकारी प्रयास
(Govt. Efforts to promote Economic Development)

आर्थिक विकास हेतु किए जाने वाले सरकारी उपायों को निम्न दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—I. प्रत्यक्ष उपाय, II. परोक्ष उपाय।

I. प्रत्यक्ष उपाय (Direct Measures)

प्रत्यक्ष उपायों के अन्तर्गत निम्न बातों को सम्मिलित किया जाता है—

1. **औद्योगीकरण में प्रत्यक्ष भागीदारी**—देश में औद्योगिक एकाधिकार को नियन्त्रित करने हेतु सामाजिक न्याय की दृष्टि से, उपभोक्ताओं एवं श्रमिकों के हितों की रक्षा करने के लिए तथा निजी निवेश की कमी को पूरा करने के लिए सरकार स्वयं औद्योगीकरण की प्रक्रिया में प्रत्यक्ष भाग लेकर सार्वजनिक उद्योगों की स्थापना करती है।
2. **उत्पत्ति के साधनों को गतिशील बनाना**—अल्प विकसित देशों में उत्पादन के साधन गति हीन अवस्था में सुप्त पड़े रहते हैं, जिससे उनके विकास की गति बहुत धीमी रहती है। अत: सरकार साधनों की गतिशीलता तथा उनके उचित उपयोग हेतु प्रयास करती है। अल्पविकसित देशों में कृषि की प्रधानता, तकनीकी ज्ञान की कमी, पूँजी का अभाव तथा कुशल साहसियों की कमी रहती है जिससे इन देशों के विकास की प्रक्रिया स्वस्फूर्त नहीं होती है। सरकार साहसियों को प्रोत्साहित कर उन्हें आर्थिक संरक्षण प्रदान कर, नवीन प्राकृतिक साधनों की खोज कर तकनीकी शिक्षा तथा कुशल श्रमिकों की व्यवस्था कर पूँजी निर्माण की प्रक्रिया को बढ़ावा देकर आर्थिक विकास के कार्यों को आगे बढ़ा सकती है।
3. **संस्थागत तथा संगठनात्मक परिवर्तन लाना**—आर्थिक विकास की प्रक्रिया को गति प्रदान करने में संस्थागत एवं संगठनात्मक परिवर्तन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। राज्य द्वारा भूमि सुधार, उत्तराधिकार तथा भूस्वामित्व के नियमों में सुधार करके संस्थागत परिवर्तन किए जा सकते हैं। इन सुधारों के माध्यम से सरकार कृषकों की दशा में सुधार ला सकती है। इसके अतिरिक्त एकाधिकार पर नियन्त्रण करके उपभोक्ताओं तथा उत्पादकों के हितों की रक्षा की जा सकती है। सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को चलाकर सहकारी समितियों की स्थापना तथा इसी तरह के अन्य कार्यक्रमों द्वारा अल्पविकसित देशों में सुधार लाया जा सकता है। सरकार श्रम सम्बन्धी कानूनों को पारित करके औद्योगिक विवाद समाप्त करने का प्रयास करती है ताकि सेवायोजकों तथा श्रमिकों के बीच परस्पर सद्भावना बनी रहे। इस तरह, विभिन्न नियमों में सुधार करके पुरानी व परम्परागत प्रवृत्तियों को समाप्त कर सरकार द्वारा विकास की गति को तीव्र किया जा सकता है।
4. **आर्थिक एवं सामाजिक सेवाओं की व्यवस्था करना**—सरकार द्वारा विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक योजनाओं का संचालन कर आर्थिक विकास के मार्ग को प्रशस्त किया जाता है। इन सेवाओं के अन्तर्गत मुख्य रूप से शिक्षा, स्वास्थ्य एवं आवास तथा अन्य कल्याणकारी कार्यक्रमों को सम्मिलित किया जाता है जिनका आर्थिक विकास के कार्यक्रमों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। आर्थिक विकास को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने वाले आर्थिक कार्यक्रमों के अन्तर्गत आधारभूत उद्योगों की स्थापना आदि को सम्मिलित किया जाता है। सरकार आर्थिक विकास को गति प्रदान करने के लिए यातायात, परिवहन एवं संचार, शक्ति, सिंचाई, खाद, सीमेन्ट तथा स्टील आदि आधारभूत उद्योगों की स्थापना करती है। इस तरह सरकार बड़े पैमाने पर पूँजी निवेश करके सामाजिक एवं आर्थिक सेवाओं का विस्तार कर आर्थिक विकास में तेजी ला सकती है।

II. परोक्ष उपाय (Indirect Measures)

सरकार आर्थिक विकास की प्रक्रिया में निम्न परोक्ष उपायों को अपनाती है—

1. **राजकोषीय नीति**—आर्थिक विकास की प्रक्रिया में राजकोषीय नीति निम्नवत सहायक हो सकती है—
   (i) सरकार द्वारा इस तरह की कर प्रणाली लागू की जानी चाहिए ताकि सरकार की आय में तो वृद्धि हो, परन्तु उत्पादन पर विपरीत प्रभाव न पड़े।
   (ii) सरकार द्वारा सार्वजनिक व्यय को उत्पादक क्षेत्रों में लगाया जाना चाहिए तथा सार्वजनिक ऋण से प्राप्त धनराशि को ऐसे निर्माण कार्यों में व्यय किया जाना चाहिए जिसमें उत्पादन शीघ्रता से प्राप्त किया जा सकता हो तथा ऋणों का विनियोग उन वस्तुओं के उत्पादन में किया जाना चाहिए जो वस्तुएँ विदेशों से आयात की जाती हों अथवा जिनकी मांग विदेशों में हो।
   (iii) आर्थिक विकास हेतु धन जुटाने के लिए घाटे की वित्त व्यवस्था का सीमित एवं नियन्त्रित प्रयोग किया जाना चाहिए। इसके अनियन्त्रित प्रयोग से मुद्रास्फीति एवं अन्य आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ सकता है।
   (iv) करों में छूट एवं उपदान आदि के माध्यम से सरकार उद्यमियों को नए उद्योगों को स्थापित हेतु प्रोत्साहित कर सकती है।
   इस तरह राजकोषीय नीति के माध्यम से सरकार राष्ट्रीय आय, उत्पादन एवं रोजगार पर वांछित प्रभाव डालने तथा अवांछित प्रभावों को रोकने का प्रयास करती है।
2. **मौद्रिक नीति**—मौद्रिक नीति के अन्तर्गत किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति अर्थात् आर्थिक विकास हेतु मौद्रिक प्राधिकरण चलन में मुद्रा तथा साख की मात्रा का नियमन करती है। अन्य शब्दों में मौद्रिक नीति के अन्तर्गत मुद्रा संकुलन तथा मुद्रास्फीति के प्रभावों को कम करने, विदेशी विनिमय को देश के पक्ष में करने हेतु आवश्यकतानुसार साख का सृजन एवं नियमन किया जाता है। मन्दी के प्रभावों को कम करने तथा रोजगार एवं आर्थिक विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए लचीली मौद्रिक नीति अपनाई जाती है। साख नियमन के उपकरण दो प्रकार के होते हैं—
   (i) **परिमाणात्मक साख नियन्त्रण**—इसके अन्तर्गत बैंक दर, खुले बाजार की क्रियाएँ तथा निधि अनुपात में परिवर्तन सम्मिलित रहते हैं।
   (ii) **चयनात्मक साख नियन्त्रण**—इसके अन्तर्गत नैतिक दबाव, साख की राशनिंग, मार्जिन आवश्यकताओं में परिवर्तन, उपभोक्ता साख का नियमन तथा प्रत्यक्ष कार्यवाही, आदि आते हैं। ये उपकरण साख को वांछित दिशा में ले जाकर आर्थिक विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक होते हैं।
3. **मूल्य नीति**—विकासशील देशों में आर्थिक विकास की प्रक्रिया में विभिन्न परियोजनाओं पर भारी मात्रा में व्यय किया जाता है, जिससे रोजगार एवं आय में वृद्धि होने से लोगों की क्रयशक्ति एवं मांग में वृद्धि हो जाती है। इन देशों में तेजी से हो रही जनसंख्या वृद्धि से भी वस्तुओं एवं सेवाओं की मांग में वृद्धि हो जाती है। इससे इन वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतों में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है जिससे उपभोक्ताओं एवं उत्पादकों को भारी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। कुछ सीमा तक स्फीति आर्थिक विकास को गति प्रदान करने में सहायक हो सकती है, परन्तु नियमित रूप से तेजी से बढ़ती जाने वाली स्फीति आर्थिक विकास की प्रक्रिया को छिन्न-छिन्न कर देती है। अत: सरकार बढ़ते मूल्यों पर नियन्त्रण करने के लिए तरह-तरह के उपाय करती है तथा मौद्रिक एवं वित्तीय नीति का सहारा लेती है। इस तरह सरकार उचित मूल्य नीति अपनाकर उपभोक्ताओं एवं उत्पादकों को राहत प्रदान करती है।
4. **कार्यात्मक वित्त प्रबन्धन**—वर्तमान समय में कार्यात्मक वित्त प्रबन्धन की प्रणाली को अपनाकर आर्थिक विकास को प्रभावित किया जाता है। इसके अन्तर्गत करारोपण, सार्वजनिक व्यय तथा सार्वजनिक ऋण का उपयोग करते हुए औचित्यपूर्ण ढंग से बजट का निर्माण किया जाता है। कार्यात्मक वित्त की सहायता से आर्थिक उतार-चढ़ावों, कीमत स्तर, उत्पादन, आय एवं रोजगार के स्तर में आने वाली गिरावट को दूर किया जा सकता है तथा आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है।
5. **तटकर नीति**—घरेलू उद्योग-धन्धों को संरक्षण प्रदान करने तथा देश में रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने के लिए तटकर नीति के अन्तर्गत आयात को हतोत्साहित तथा निर्यात को प्रोत्साहित किया जाता है। इसके अतिरिक्त विदेशी व्यापार की नीति में परिवर्तन करके स्वदेश का आर्थिक विकास किया जा सकता है।

❑

UNIT-V

एकाधिकारी फर्म का सिद्धान्त
Theory of a Monopoly Firm

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. एकाधिकार से क्या आशय है?
What do you mean by monopoly?

उत्तर बाजार की जिस स्थित में किसी वस्तु का केवल एक ही उत्पादक या विक्रेता होता है, उसे एकाधिकार कहते हैं।

प्र.2. एकाधिकारी का प्रमुख उद्देश्य बताइए।
Tell of the main objective of monopoly.

उत्तर कुल वास्तविक एकाधिकारी आय को अधिकतम करना एकाधिकारी का प्रमुख उद्देश्य होता है।

प्र.3. अधिकतम लाभ प्राप्ति के लिए आवश्यक शर्त लिखिए।
Write the required condition for maximum gain profit.

उत्तर अधिकतम लाभ प्राप्ति के लिए आवश्यक शर्त है—$MC = MR$.

प्र.4. माँग की लोच का एकाधिकारी उत्पादन पर क्या प्रभाव पड़ता है?
What is the effect of monopolistic production on elasticity of demand?

उत्तर माँग की लोच जब लोचदार होती है, तब वस्तु का मूल्य कम हो जाता है और उत्पादन बढ़ जाता है। इसके विपरीत, जब माँग की लोच बेलोच हो जाती है, तब उत्पादन घट जाता है और वस्तु का मूल्य बढ़ जाता है।

प्र.5. विभेदात्मक एकाधिकार के अन्तर्गत लाभ के अधिकतमीकरण की कौन-सी शर्तें हैं?
What is the condition for profit maximisation under discriminatory monopoly?

उत्तर एकाधिकार के अन्तर्गत लाभ के अधिकतमीकरण की शर्तें निम्न प्रकार हैं—

1. विभिन्न बाजारों में MR समान होना चाहिए।
2. MR, MC के बराबर होना चाहिए।

प्र.6. एकाधिकार में पूर्ति वक्र का महत्त्व बताइए।
Write the importance of supply curve in monopoly.

उत्तर एकाधिकार में पूर्ति वक्र महत्त्वहीन हो जाता है।

प्र.7. एकाधिकारी शक्ति के मापन हेतु लर्नर का सूत्र कौन-सा है?
Which is the Learner's formula to measure monopolistic power?

उत्तर लर्नर के अनुसार, एकाधिकारी शक्ति की माप $= \frac{P - C}{P}$

यहाँ P = कीमत या औसत आय, C = सीमान्त लागत।

प्र.8. AR तथा MR के विषय में माँग की लोच का सूत्र क्या है?
What is the formula for elasticity of demand regarding AR and MR.

उत्तर माँग की लोच का सूत्र है—$\frac{AR}{AR - MR}$.

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. एकाधिकार से आप क्या समझते हैं? संक्षेप में बताइए।
What do you understand by monopoly? Write in brief.

उत्तर बाजार की वह स्थिति जिसमें किसी वस्तु का केवल एक ही उत्पादक या विक्रेता होता है, उसे एकाधिकार कहा जाता है। **प्रो० बेन्हम** के अनुसार—"एकाधिकारी अक्षरश: एक विक्रेता होता है ..... और एकाधिकार पूर्ति के पूर्ण नियन्त्रण पर आधारित होता है।"

एकाधिकारी फर्म की मुख्य विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

1. एकाधिकारी अपनी वस्तु का अकेला उत्पादक होता है।
2. एकाधिकारी वस्तु की कोई निकट स्थानापन्न वस्तु बाजार में नहीं होती।
3. एकाधिकारी का अपनी वस्तु की पूर्ति पर नियन्त्रण रहता है।
4. एकाधिकारी वस्तु की माँग की लोच शून्य होती है।
5. उद्योग में एक ही फर्म होती है, इसलिए एकाधिकारी फर्म एक-दूसरे के पर्यायवाची होते हैं।

प्र.2. आप एकाधिकारी शक्ति की माप किस प्रकार कर सकते हैं?
How can you measure monopolistic power?

उत्तर हम एकाधिकारी शक्ति की माप निम्नलिखित प्रकार से कर सकते हैं—

1. कीमत तथा सीमान्त लागत में जितना अधिक अन्तर होगा, फर्म की एकाधिकारी शक्ति उतनी ही अधिक होगी। अत: एकाधिकारी में सीमान्त लागत कीमत से कम होती है।
2. लर्नर ने एकाधिकारी शक्ति को मापने का सूत्र निम्न प्रकार दिया है—

$$\text{एकाधिकारी शक्ति की माप} = \frac{P - C}{P}$$

यहाँ P = कीमत या औसत आय, C = सीमान्त लागत।
सन्तुलन में सीमान्त लागत एवं सीमान्त आय समान होते हैं। यदि C के स्थान पर MR को प्रतिस्थापित कर दिया जाए तो हम लर्नर के $\frac{P - C}{P}$ सूत्र को $\frac{AR - MR}{AR}$ सूत्र के रूप में व्यक्त कर सकते हैं।

3. लर्नर का यह सूत्र माँग की लोच के सूत्र के विपरीत है। AR तथा MR के रूप में माँग की लोच का सूत्र निम्न प्रकार है—

$$\frac{AR}{AR - MR}$$

संक्षेप में, एकाधिकारी शक्ति, माँग की लोच के व्युत्क्रमानुपाती होती है अर्थात् एकाधिकारी शक्ति $\propto \frac{1}{e}$. यदि माँग की लोच अनन्त है तो एकाधिकारी शक्ति शून्य होगी और यदि माँग की लोच शून्य है तो एकाधिकारी शक्ति अनन्त होगी।

प्र.3. एक ही समय में कोई भी एकाधिकारी मूल्य एवं पूर्ति दोनों को नियन्त्रित नहीं कर पाता। ऐसी स्थिति में वह किसे नियन्त्रित करना चाहेगा?
No monopolistic can control both cost and supply at the same time. In such a condition, what would he like to control?

उत्तर किसी भी एकाधिकारी का वस्तु की पूर्ति पर तो पूर्ण अधिकार होता है लेकिन माँग पर उसका कोई नियन्त्रण नहीं होता। क्योंकि वस्तु की माँग के निर्धारक तो उपभोक्ता होते हैं। इस तरह एकाधिकारी पूर्ति की मात्रा को नियन्त्रित करने के पश्चात् ही वस्तु का ऊँचा मूल्य निर्धारित कर सकता है।

एकाधिकारीक एक ही समय में मूल्य एवं पूर्ति दोनों को नियन्त्रित नहीं कर पाने की स्थिति में उसके सामने निम्नलिखित दो विकल्प होते हैं—1. वह वस्तु के मूल्य को निर्धारित कर सकता है तथा
2. वह पूर्ति को नियन्त्रित कर सकता है।

पहली स्थिति में वस्तु की निर्धारित कीमत पर माँग के अनुसार पूर्ति निश्चित होगी जबकि दूसरी अवस्था में माँग एवं पूर्ति दोनों की शक्तियों के द्वारा मूल्य स्वत: निर्धारित होगा। एकाधिकारी मूल्य तथा पूर्ति दोनों को एक साथ निर्धारित अथवा प्रभावित नहीं कर

TOUCH 'n PASS

सकता अत: वह प्राय: पहले वस्तु की कीमत को निर्धारित करता है और उसके बाद पूर्ति को उसी के अनुसार समायोजित करता है। एकाधिकारी प्राय: वस्तु की मात्रा को दो कारणों से निश्चित करना उचित नहीं समझता—

1. माँग में परिवर्तन न होने पर पूर्ति का उसके अनुरूप बने रहना आवश्यक नहीं है।
2. माँग की लोच में परिवर्तन होने से कीमत उत्पादन व्यय से नीचे गिर सकता है।

प्र.4. विशुद्ध एकाधिकारी फर्म की प्रमुख विशेषताएँ कौन-सी हैं?
What are the main features of a pure monopoly firm?

उत्तर विशुद्ध एकाधिकार की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. वस्तु का उत्पादन तथा विक्रय केवल एक ही फर्म के द्वारा होता है।
2. एकाधिकारी फर्म की वस्तु की कोई निकट अथवा अच्छी स्थानापन्न वस्तु नहीं होती अर्थात् वस्तु की आड़ी माँग शून्य होती है।
3. उत्पादन के क्षेत्र में अन्य फर्मों के महत्त्वपूर्ण प्रतिबन्ध लगे होते हैं। सरल शब्दों में, उत्पादन के क्षेत्र में नयी फर्मों का प्रवेश पूर्णरूप से बन्द हो जाता है।
4. एकाधिकारी अपनी स्वतन्त्र मूल्य नीति अपना सकता है।

प्र.5. अपूर्ण प्रतियोगिता के प्रमुख कारण संक्षेप में लिखिए।
Write in brief the main causes of imperfect competition.

उत्तर

अपूर्ण प्रतियोगिता के कारण
(Causes of Imperfect Competition)

अपूर्ण प्रतियोगिता को जन्म देने वाले प्रमुख कारण निम्न हैं—

1. **क्रेताओं व विक्रेताओं की अज्ञानता**—क्रेताओं और विक्रेताओं को बाजार का पूरा ज्ञान नहीं होता है जिसके कारण वे अलग-अलग मूल्यों पर वस्तु का क्रय-विक्रय करते हैं, अत: बाजार भाव की जानकारी न होने से अपूर्ण प्रतियोगिता का जन्म होता है।
2. **वस्तु की इकाइयों में अन्तर**—पूर्ण प्रतियोगिता के बारे में यह भी कहा जाता है कि विभिन्न फर्मों के द्वारा उत्पादित वस्तुओं का आकार-प्रकार समान होना चाहिए। हम केवल कल्पना ही कर सकते हैं कि वस्तु आकार-प्रकार तथा गुणों में समान होगी। प्रत्येक फर्म अलग-अलग वस्तु का उत्पादन करती है, अत: 'वस्तु विभेद' (product differentiation) के कारण अपूर्ण प्रतियोगिता को जन्म मिलता है।
3. **क्रेताओं में गतिशीलता का अभाव**—क्रेताओं को इस बात की जानकारी होते हुए भी कि कौन-सी वस्तु किस स्थान में सस्ती मिल रही है। वे वहाँ जाकर वस्तु को क्रय नहीं करते हैं, बल्कि अपने आस-पास से ही महँगी वस्तु को ही क्रय कर लेते हैं। इसका मुख्य कारण क्रेताओं का वस्तु तथा उसकी कीमत के प्रति उदासीन होना है। यही कारण है कि पूर्ण प्रतियोगिता व्यवहार में नहीं हो सकती है।
4. **ऊँचा यातायात व्यय**—अपूर्ण प्रतियोगिता को जन्म देने में यातायात व्यय का भी महत्वपूर्ण हाथ है। प्राय: यातायात व्यय के ही कारण अलग-अलग स्थान में वस्तु की कीमत अलग-अलग होती है।

अपूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य निर्धारण की व्याख्या करने से पूर्व यह समझ लेना आवश्यक है कि अपूर्ण प्रतियोगिता लगभग एकाधिकार के ही समान है। दोनों में अन्तर केवल इतना है कि एकाधिकारी का सम्पूर्ण बाजार पर नियन्त्रण होता है, जबकि अपूर्ण प्रतियोगिता में बाजार लगभग कई भागों में बँटा रहता है तथा प्रत्येक भाग पर एक विक्रेता का पूर्ण अधिकार रहता है।

प्र.6. एकाधिकारी बाजार की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
Throw light on the main features of monopoly market.

उत्तर

एकाधिकारी बाजार की विशेषताएँ
(Features of Monopoly)

एकाधिकारी बाजार में अग्रलिखित विशेषताएँ पाई जाती हैं—

TOUCH 'n' PASS

1. **एक विक्रेता और अधिक क्रेता**—एकाधिकारी बाजार में वस्तु का एकमात्र उत्पादक (अथवा विक्रेता) होता है जबकि क्रेताओं की संख्या अधिक होती है। क्रेताओं की संख्या अधिक होने के कारण क्रेता इस स्थिति में नहीं होते कि वे बाजार कीमत को प्रभावित कर सकें।
2. **निकट स्थानापन्नों का अभाव**—बाजार में एकाधिकारी का कोई निकट स्थानापन्न उपलब्ध नहीं होता जिसके फलस्वरूप एकाधिकारी वस्तु की माँग की आड़ी लोच (Cross Elasticity of Demand) शून्य (Zero) होती है।
3. **एकाधिकारी स्वयं कीमत निर्धारक**—बाजार में अकेला उत्पादक एवं विक्रेता होने के कारण एकाधिकारी अपनी वस्तु की कीमत स्वयं तय करता है। दूसरे शब्दों में, एकाधिकारी कीमत और उत्पादन दोनों को निर्धारित कर सकता है। किन्तु एकाधिकारी कीमत और उत्पादन दोनों को एक समय में एक साथ निर्धारित नहीं कर सकता।
4. **नई फर्मों के प्रवेश पर प्रतिबन्ध**—एकाधिकार में नई फर्मों का उत्पादन क्षेत्र में प्रवेश पूर्णत: प्रतिबन्धित होता है क्योंकि उद्योग में नई फर्मों का प्रवेश हो जाने पर बाजार में एकाधिकार की स्थिति समाप्त हो जाएगी। एकाधिकारी का कोई प्रतियोगी नहीं होता। यही कारण है कि एकाधिकार में फर्म ही उद्योग है और उद्योग ही फर्म है।
5. **अधिकतम लाभ अर्जन की प्रवृत्ति**—एक एकाधिकारी का उद्देश्य अधिकतम मुद्रा लाभ करना होता है। बाजार में प्रतियोगिता के अभाव के कारण एकाधिकारी का बाजार पर पूर्ण नियन्त्रण रहता है। एकाधिकारी सदैव अपने कुल लाभ को अधिकतम करना चाहता है प्रति इकाई लाभ को नहीं।
   मार्शल के शब्दों में, "एक एकाधिकारी का प्रमुख हित अपनी पूर्ति को माँग की दशाओं के अनुसार समायोजित करने में होता है, परन्तु समायोजन इस ढंग से नहीं किया जाता जिससे कि कीमत केवल उत्पादन लागत को पूरा करे बल्कि उसे अधिकतम सम्भव कुल शुद्ध आय प्राप्त हो।"
6. **माँग वक्र का ऋणात्मक ढाल**—एकाधिकारी माँग वक्र ऋणात्मक ढाल वाला होता है और सीमान्त आगम (MR) औसत लागत (AR) से कम होता है। माँग वक्र का ढाल माँग की लोच (e) पर निर्भर करता है।

प्र.7. दीर्घकाल में मूल्य निर्धारण पर संक्षेप में लिखिए।
Write in brief about price determination in the long-run.

उत्तर

दीर्घकाल में मूल्य निर्धारण
(Price Determination in the Long Period)

दीर्घकाल में भी मूल्य निर्धारण का सिद्धान्त वही होगा जो अल्पकाल में है। संक्षेप में, दीर्घकाल में भी वहीं पर मूल्य का निर्धारण होगा जहाँ $MC = MR$ के होती है, लेकिन दीर्घकाल में अपूर्ण प्रतियोगिता के कारण निम्न बातों से कीमत में कमी की प्रवृत्ति पायी जाती है—

1. दीर्घकाल में माँग में वृद्धि के कारण प्रत्येक फर्म अपने उत्पादन के आकार में वृद्धि करके उत्पादन बढ़ा सकती है।
2. अपूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग के भीतर कोई भी फर्म प्रवेश कर सकती है जिसके कारण उत्पादन बढ़ता है।
3. नयी फर्मों के प्रवेश होने व उत्पादन बढ़ाये जाने से कुल बिक्री में विशेष वृद्धि नहीं होती है। बाजार अनेक फर्मों के बीच बँट जाता है। फलत: मूल्य में कमी होगी और मूल्य औसत लागत (AC) के बराबर हो जायेगा।
4. पुरानी फर्मों की अपेक्षा नयी फर्में अपनी वस्तु की कीमतों को कम रखेंगी ताकि उनकी वस्तुओं की बिक्री बढ़ सके।
5. जब नयी फर्में मूल्य घटाती हैं, तो बिक्री बढ़ाने के लिए पुरानी फर्में भी अपने मूल्य में कमी करने लगती हैं। उपर्युक्त बातों के कारण अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत दीर्घकाल में कीमतों के घटने की प्रवृत्ति होती है। फर्मों के उद्योग में प्रवेश पाने के कारण साधनों की कीमत में वृद्धि होती है जिससे फर्म की औसत लागत (AC) बढ़ती है। इस प्रकार एक ओर औसत लागत की वृद्धि और दूसरी ओर कीमतों के घटने की प्रवृत्ति के कारण अपूर्ण प्रतियोगिता में फर्मों का अतिरिक्त लाभ (excess profit) समाप्त हो जाता है, क्योंकि दीर्घकाल में कीमत व औसत लागत प्राय: बराबर हो जायेंगे, अत: दीर्घकाल में प्रत्येक फर्म सामान्य लाभ प्राप्त करेगी। ऐसी फर्म को 'न लाभ न हानि' वाली फर्म (No-profit, No-loss firms) कहा जायेगा।

प्र.8. एकाधिकार में पूर्ति वक्र की अनुपस्थिति का क्या प्रभाव पड़ता है? समझाइए।
What is the effect of absence of supply curve under monopoly? Explain.

उत्तर

एकाधिकार में पूर्ति वक्र की अनुपस्थिति
(Absence of Supply Curve Under Monopoly)

पूर्ण प्रतियोगिता में पूर्ति वक्र की एक मुख्य भूमिका है। **मार्शल** की समय-तत्व (Time Element) विचारधारा पूर्ति वक्र की लोच से ही नियन्त्रित होती है। पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग माँग वक्र एवं पूर्ति वक्र के सन्तुलन बिन्दु पर कीमत निर्धारित करता है, जिसे उस उद्योग के अन्तर्गत कार्यरत सभी फर्में दिया हुआ मानकर अपना उत्पादन निर्धारित करती हैं। पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म कीमत प्राप्तकता (Price Taker) एवं उत्पादन समायोजक (Output Adjuster) होती है, किन्तु अपूर्ण प्रतियोगिता में फर्म अपने उत्पादन की स्वयं कीमत तय करती है क्योंकि फर्म कीमत प्राप्तकर्त्ता नहीं होती। पूर्ण प्रतियोगिता में सीमान्त लागत वक्र (*MC* Curve) का वह भाग जो औसत परिवर्तनशील लागत (Average Variable Cost) वक्र के ऊपर होता है, फर्म का पूर्ति वक्र होता है, किन्तु एकाधिकार (जो अपूर्ण प्रतियोगिता का ही एक अंग है) में ऐसा कोई पूर्ति वक्र नहीं होता। एकाधिकार में सन्तुलन के बिन्दु पर सीमान्त लागत तथा सीमान्त आय परस्पर बराबर होती हैं। हमें ज्ञात है कि एकाधिकार में $AR > MR$। अतः एकाधिकार में फर्म किस कीमत पर वस्तु पर कितनी मात्रा बेचेगी यह कहना कठिन है।

एकाधिकार में एक ही पूर्ति पर भिन्न-भिन्न कीमत उपस्थित हो सकती हैं। दूसरे शब्दों में, माँग की विभिन्न परिस्थितियों के कारण एक ही उत्पत्ति की मात्रा पर दो भिन्न-भिन्न कीमतें पाई जा सकती हैं। ऐसी दशा में **पूर्ति वक्र अर्थहीन** (Meaningless) हो जाता है। इस स्थिति को चित्र 1 में दिखाया गया है। लागत दशाएँ समान रहते हुए यदि माँग वक्र AR_1 से AR_2 के रूप में परिवर्तित होता है तो कीमत OP_1 से बढ़कर OP_2 हो जाती है तथा उत्पत्ति मात्रा OQ_1 से OQ_2 हो जाती है जिसके कारण पूर्ति वक्र SS प्राप्त होता है। मान लीजिए, दूसरी दशा में माँग वक्र AR_1 से AR_2 हो जाता है। ऐसी स्थिति में चित्र से स्पष्ट है कि बदली दशा में उत्पत्ति मात्रा OQ_1 से बढ़कर OQ_2 हो गई है, किन्तु वस्तु कीमत OP_1 से बढ़कर OP_2 ही हुई है। दूसरी दशा में चित्रानुसार पूर्ति वक्र SS होगा। चित्र से स्पष्ट है कि एकाधिकार में एक ही उत्पत्ति मात्रा OQ_2 दो कीमतों—OP_2 तथा OP'_2 पर उपलब्ध हो सकती है। इस प्रकार एकाधिकार में पूर्ति वक्र का कोई औचित्य नहीं तथा यह अर्थहीन है। इसी प्रकार यह भी स्पष्ट किया जा सकता है कि एक ही कीमत पर दो भिन्न-भिन्न उत्पत्ति की मात्राएं सम्भव हैं। इस दशा में भी एकाधिकार में पूर्ति वक्र अर्थहीन हो जाता है।

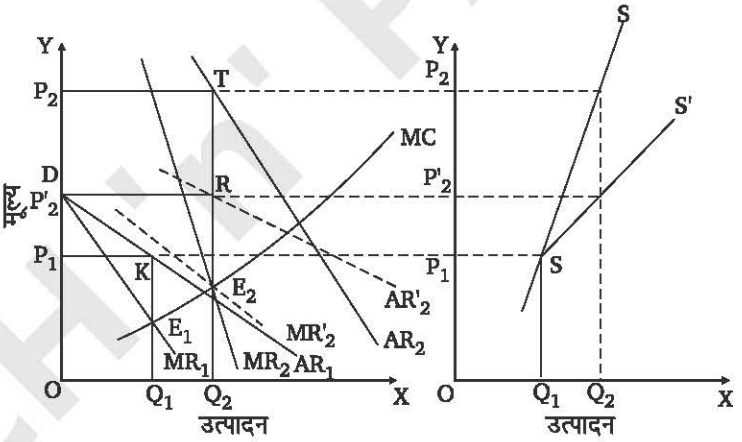

चित्र 1. एकाधिकार में पूर्ति वक्र की अनुपस्थिति

संक्षेप में, कहा जा सकता है कि एकाधिकार में पूर्ति वक्र अनुपस्थित होता है क्योंकि एकाधिकार में कीमत तथा पूर्ति मात्रा में कोई सुनिश्चित सम्बन्ध नहीं होता है।

प्र.9. प्राकृतिक एकाधिकार पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
Write a brief note on natural monopoly.

उत्तर

प्राकृतिक एकाधिकार
(Natural Monopoly)

प्राकृतिक एकाधिकार एक ऐसी स्थिति है जिसमें पैमाने की बचतें इतनी अधिक सुस्पष्ट होती हैं कि उत्पादन बहुत अधिक लागत-कुशल (Cost Efficient) बन जाता है, यदि उद्योग में केवल एक ही फर्म हो। अन्य शब्दों में, एक प्राकृतिक एकाधिकार की अवस्था में, उद्योग को पैमाने की इतनी अधिक बचतें प्राप्त होती हैं कि वस्तु (अथवा सेवा) का उत्पादन मात्र एक फर्म द्वारा किया जाना उत्पादन का अत्यधिक कुशल ढंग माना जाता है। उदाहरण के लिए—भारतीय रेलवे। भारत में रेलवे को रेलवे लाइनों

तथा अन्य बुनियादी ढांचे के रूप में इतनी अधिक पैमाने की बचतें प्राप्त होती है कि कोई भी अन्य उपक्रम भारतीय रेलवे से प्रतियोगिता नहीं कर सकता है। घटती औसत लागत के साथ-साथ निवेश का पैमाना तथा उत्पादन का पैमाना इतना विशाल होता है कि इससे वस्तु की कुल बाजार माँग लगभग पूरी हो जाती है। तद्नुसार, प्राकृतिक एकाधिकार अन्य उत्पादकों को उद्योग में प्रवेश करने से हतोत्साहित करता है।

यद्यपि प्राकृतिक एकाधिकार कम कीमत पर अधिक उत्पादन करने में सहायक होता है फिर भी ऐतिहासिक तौर पर सरकार ने ऐसे एकाधिकार को निजी क्षेत्र में पनपने नहीं दिया है। कारण, एक बार निजी क्षेत्र में स्थापित हो जाने के उपरान्त प्राकृतिक एकाधिकार भी वस्तु की कीमत को, पूर्ति को सीमित करके बढ़ाने का भरसक प्रयास करेगा। स्पष्टत: इससे उसे उच्च लाभ प्राप्त होंगे, अपेक्षाकृत कम कीमत पर अधिक उत्पादन बेचने का कारण। अत: अधिकांश सरकारों ने प्राकृतिक एकाधिकारों को प्रत्यक्ष तौर पर अपने नियन्त्रण में रखा हुआ है या फिर उन्हें निजी क्षेत्र में कठोर नियामक संयन्त्र (Regulatory Mechanism) के अधीन रखा है। उदाहरण के लिए, भारत में भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकारी (Telecom Regulatory Authority of India—TRAI) तथा बीमा नियामक तथा विकास प्राधिकारी (Insurance Regulatory and Development Authority) की स्थापना, क्रमश: दूरसंचार तथा बीमा के क्षेत्र में बड़े खिलाड़ियों (Big Players) के क्रियाकलापों पर अंकुश लगाने के लिए की गई है।

प्र.10. मूल्य विभेद की परिभाषा देते हुए इसके विभिन्न प्रकारों की संक्षिप्त विवेचना कीजिए।

Defining price discrimination, briefly describe its various types.

उत्तर

मूल्य विभेद की परिभाषाएँ
(Definitions of Price Discrimination)

प्रो० स्टिगलर के अनुसार, "कीमत विभेद का अर्थ है—तकनीकी दृष्टि से लगभग मिलते-जुलते पदार्थों को इतनी भिन्न कीमतों पर बेचना जो कि उनकी औसत लागतों के अनुपात से कहीं अधिक है।"

एक अन्य स्थान पर **प्रो० स्टिगलर** ने यह भी लिखा है, "जब एक-सी वस्तु के दो या उससे अधिक मूल्य रखे जाएँ तो उसे मूल्य विभेद कहते हैं।"

श्रीमती जॉन रॉबिन्सन के अनुसार, "एक ही नियन्त्रण के अधीन उत्पादित वस्तु को विभिन्न ग्राहकों को विभिन्न मूल्यों पर बेचने की क्रिया को मूल्य विभेद कहते हैं।"

दूसरे शब्दों में, जब एकाधिकारी एक ही लागत से उत्पन्न एक ही वस्तु की भिन्न-भिन्न इकाइयों का अलग-अलग ग्राहकों से, अलग-अलग बाजारों में अलग-अलग मूल्य प्राप्त करता है तो वह 'मूल्य विभेद' कहलाता है।

मूल्य विभेद के प्रकार (Forms of Price Discrimination)

मूल्य विभेद के प्रमुख रूप से तीन प्रकार होते हैं—

1. **व्यक्तिगत मूल्य विभेद**—जब एकाधिकारी विभिन्न उपभोक्ताओं से उनकी आवश्यकताओं की तीव्रता या आर्थिक सम्पन्नता के आधार पर भिन्न-भिन्न मूल्य वसूल करता है तो उसे 'व्यक्तिगत मूल्य विभेद' कहते हैं; यथा—वकील और डॉक्टर अपनी सेवाओं का मूल्य उपभोक्ता की आवश्यकता की तीव्रता के अनुसार लेते हैं।
2. **स्थानीय मूल्य विभेद**—जब कोई एकाधिकारी अपनी वस्तु को भिन्न-भिन्न बाजारों, क्षेत्रों या स्थानों पर भिन्न-भिन्न मूल्यों पर बेचता है तो यह 'स्थानीय एकाधिकार' कहा जाता है। यह राशिपातन भी कहलाता है।
3. **प्रयोग मूल्य विभेद**—जब एकाधिकारी अपनी वस्तु का उपयोग के अनुसार भिन्न-भिन्न मूल्य वसूल करता है तो वह 'प्रयोग मूल्य विभेद' कहलाता है; यथा—यदि बिजली कम्पनी कारखानों एवं घरेलू उपयोग के लिए विद्युत की अलग-अलग दरें वसूल करती है, तो यह 'प्रयोग मूल्य विभेद' कहा जाएगा।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. अपूर्ण प्रतियोगिता की परिभाषा देते हुए अल्पकाल में मूल्य निर्धारण का उल्लेख कीजिए तथा एकाधिकार व अपूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य निर्धारण में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

Giving definition of imperfect competition, mention price determination in the short period, and make clear the difference between price determination in monopoly and imperfect condition.

उत्तर

अपूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ
(Meaning of Imperfect Competition)

अपूर्ण प्रतियोगिता तब होती है जब उसमें पूर्ण प्रतियोगिता की विशेषताएँ नहीं होती हैं। अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत उत्पादित वस्तुओं की माँग की लोच पूर्णतया लोचदार नहीं होती है। इस सन्दर्भ में **प्रो० ए०पी० लर्नर** (Prof. A.P. Lerner) ने कहा है कि "अपूर्ण प्रतियोगिता तब होती है जब विक्रेता की वस्तु का माँग-वक्र गिरती हुई दशा में होता है।"

प्रतिष्ठित तथा नवप्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने मूल्य के निर्धारण में पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार की दशाओं का ही अध्ययन किया था। सर्वप्रथम अपूर्ण प्रतियोगिता की ओर ध्यान देने का श्रेय **प्रो० पायेरो सर्राफ** (Prof. Pierro Sraffa) को जाता है। उन्होंने 1926 में एक लेख 'The Laws of Returns under Competitive Conditions' को *'Economic Journal'* में प्रकाशित किया था। उसमें यह बताया गया था कि उद्योगों में वास्तविक स्थिति न तो एक कोने पर पूर्ण प्रतियोगिता वाली और न दूसरे कोने में एकाधिकार वाली है, अपितु वह इन दोनों सीमाओं के बीच के क्षेत्र में आती है। इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि अपूर्ण प्रतियोगिता एक व्यावहारिक बाजार की दशा है, जबकि पूर्ण प्रतियोगिता व पूर्ण एकाधिकार बाजार की एक काल्पनिक स्थिति है।

अल्पकाल में मूल्य निर्धारण
(Price Determination in the Short-Period)

एकाधिकार की तरह से अपूर्ण प्रतियोगिता में भी प्रत्येक फर्म अपना उत्पादन व मूल्य (price and output) इस प्रकार निर्धारित करना चाहती है कि उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके।

अपूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म वहाँ वस्तु का मूल्य निर्धारित करती है जहाँ $MC = MR$ होती है। यदि MC, MR से अधिक होती है तो फर्म को हानि होगी। ऐसी दशा में फर्म उत्पादन में कमी करेगी जिससे उसकी सीमान्त लागत (MC) घटेगी और सीमान्त आय (MR) में वृद्धि होगी तथा पुन: एक-दूसरे के बराबर हो जायेंगी। यदि सीमान्त आय सीमान्त लागत से अधिक होती है तो फर्म को लाभ होगा और वह उत्पादन को बढ़ायेगी। उत्पादन के बढ़ाने से एक बिन्दु ऐसा आयेगा जब सीमान्त आय सीमान्त लागत के बराबर हो जायेगी। इस प्रकार अपूर्ण प्रतियोगिता में एकाधिकार के ही समान कीमत का निर्धारण वहाँ होता है जहाँ $MC = MR$ होता है।

अपूर्ण प्रतियोगिता में फर्म की माँग रेखा (AR-curve) तथा सीमान्त आगम रेखा (MR-curve) नीचे की ओर गिरती हुई होती हैं। जहाँ तक लागत रेखाओं का प्रश्न है वे सभी बाजार परिस्थितियों के लिए आकार-प्रकार में एकसमान होती हैं, क्योंकि वे उत्पादन के भौतिक नियमों (physical laws of production) से प्रभावित होती हैं। अल्पकाल में अपूर्ण प्रतियोगिता के फर्म के लिए औसत स्थिर लागत (FAC), औसत परिवर्तनशील लागत (AVC), औसत प्रति इकाई कुल लागत (Average Total Cost या AC) एवं सीमान्त लागत (MC) का महत्व होता है, जबकि दीर्घकाल में केवल औसत लागत (AC) और सीमान्त लागत (MC) महत्वपूर्ण हैं। यदि आय व लागत की रेखाएँ दी हुई हों तो अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मूल्य-निर्धारण को आसानी से समझा जा सकता है।

कीमत निर्धारण—चित्र 1 की सहायता से अल्पकाल में अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत निर्धारण की व्याख्या को समझाया गया है। चित्र से स्पष्ट है कि E बिन्दु पर MR तथा MC एक-दूसरे के बराबर होते हैं, अत: फर्म का उत्पादन ON व सन्तुलित कीमत NP_2 होगी। फर्म के लिए अतिरिक्त प्रति इकाई लाभ (excess profit per unit) P_3P_2 होगा जिसे उत्पादन की मात्रा ON से गुणा कर दिया जाय तो फर्म को कुल अतिरिक्त लाभ (total excess profit) $PP_1P_2P_3$ प्राप्त होगा। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत माँग की रेखा (AR-curve) एकाधिकार माँग रेखा (AR) से अधिक लोचदार (more elastic) होती है, जिसके कारण यहाँ एकाधिकार की तुलना में MC व AR में कम अन्तर होता है। हम देख चुके हैं कि पूर्ण प्रतियोगिता में माँग रेखा (AR) पूर्णतया लोचदार होती है जिसके कारण कीमत (AR) व

चित्र 1

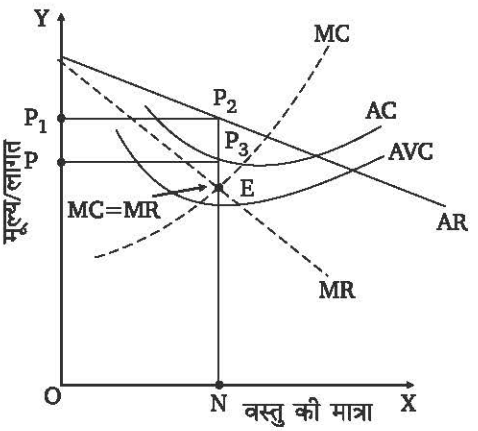

सीमान्त लागत (*MC*) बराबर होती हैं, लेकिन एकाधिकार में माँग रेखा (*AR*) कम लोचदार (less elastic) होने से कीमत (*AR*) व सीमान्त लागत (*MC*) में अन्तर होता है।

चित्र 1 में अपूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत एक फर्म की कीमत निर्धारण की व्याख्या की गयी है, लेकिन इसमें एक-से अनेक फर्में होती हैं जिनकी लागत अलग-अलग होती है तथा उपभोक्ताओं की प्रत्येक फर्म की वस्तु के लिए अलग-अलग पसन्दगी होती है। यही कारण है कि उनके माँग वक्र में भी अन्तर होता है। इस प्रकार माँग एवं लागत में अन्तर होने के कारण अलग-अलग फर्में अलग-अलग कीमत निश्चित करती हैं, फलत: कुछ फर्मों को अतिरिक्त लाभ (excess profit) तथा कुछ फर्मों को सामान्य लाभ (normal profit) ही मिलता है। जो फर्म केवल औसत परिवर्तनशील लागत के बराबर कीमत प्राप्त करने में सफल होती है उसे हानि भी हो सकती है, लेकिन सभी परिस्थितियों में मूल्य-निर्धारण का सिद्धान्त वही रहता है जिसकी व्याख्या हम चित्र 1 में कर चुके हैं।

एकाधिकार व अपूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य निर्धारण में अन्तर
(Differences between Price Determination in Monopoly and Imperfect Competition)

इनमें प्रमुख अन्तर निम्नलिखित हैं—

1. एकाधिकार में एक एकाधिकारी का पूर्ति पर पूरा नियन्त्रण होता है, जबकि अपूर्ण प्रतियोगिता में किसी भी फर्म का पूर्ति पर नियन्त्रण नहीं होता है।
2. एकाधिकार में माँग रेखा कम लोचदार (less elastic) होती है जबकि अपूर्ण प्रतियोगिता में यह अधिक लोचदार (more elastic) होती है।
3. एकाधिकार में फर्म और उद्योग में भेद नहीं किया जा सकता है। एकाधिकारी उद्योग में कोई फर्म प्रवेश नहीं कर सकती है, जबकि अपूर्ण प्रतियोगिता में कोई भी फर्म उद्योग में प्रवेश कर सकती है, अत: अपूर्ण प्रतियोगिता में प्रतियोगिता का भय रहता है, जबकि एकाधिकार में प्रतियोगिता का भय नहीं होता है।
4. अनेक कारण ऐसे भी हैं जिनके प्रभाव से एकाधिकारी कीमत की तुलना में अपूर्ण प्रतियोगिता वाली फर्म की कीमत कम होती है।

संक्षेप में, अपूर्ण प्रतियोगिता के बारे में निम्न निष्कर्ष प्राप्त किये जा सकते हैं—

1. एकाधिकार के समान ही अपूर्ण प्रतियोगिता में कीमत का निर्धारण वहाँ होता है जहाँ $MC = MR$ होता है।
2. एकाधिकार के समान ही अपूर्ण प्रतियोगिता में भी मूल्य सीमान्त लागत और सीमान्त आय से अधिक होता है, लेकिन एकाधिकार की तुलना में अपूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य एवं सीमान्त लागत तथा सीमान्त आय का अन्तर कम होता है।
3. एकाधिकार के समान ही अपूर्ण प्रतियोगिता में सन्तुलित उत्पादन पूर्ण प्रतियोगिता के सन्तुलित उत्पादन से कम होता है।
4. पूर्ण प्रतियोगिता में सन्तुलन की स्थिति में मूल्य, सीमान्त लागत, सीमान्त आय, औसत लागत एवं औसत आय सभी बराबर होती हैं, लेकिन अपूर्ण प्रतियोगिता में सन्तुलन की स्थिति में केवल सीमान्त लागत एवं सीमान्त आय में समानता पायी जाती है।

प्र.2. एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
Give a detailed discussion of price determination under monopoly.

उत्तर

एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण
(Price Determination Under Monopoly)

यद्यपि मूल्य उत्पादन पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत लागत के बराबर होने की प्रवृत्ति रखता है लेकिन एकाधिकार के अन्तर्गत ऐसा नहीं होता। ऐसी स्थिति में प्राय: मूल्य उत्पादन व्यय से अधिक ही होता है क्योंकि सामान्यत: एकाधिकारी अधिकतम लाभ कमाने की दृष्टि से ऊँचा मूल्य निर्धारित करने का प्रयत्न करता है। सरल शब्दों में, एकाधिकार का उद्देश्य कुल वास्तविक एकाधिकारी आय को अधिकतम करना होता है।

एकाधिकारी का वस्तु की पूर्ति पर तो पूर्ण अधिकार होता है लेकिन माँग पर उसका कोई नियन्त्रण नहीं होता। क्योंकि वस्तु की माँग के निर्धारक उपभोक्ता होते हैं। इस तरह एकाधिकारी पूर्ति की मात्रा को नियन्त्रित करके ही वस्तु का ऊँचा मूल्य निर्धारित कर सकता है।

एकाधिकारी एक ही समय में मूल्य तथा पूर्ति दोनों को नियन्त्रित नहीं कर सकता, इसलिए उसके समक्ष निम्नलिखित दो विकल्प होते हैं—

1. वह वस्तु के मूल्य को निर्धारित कर सकता है तथा
2. वह पूर्ति को नियन्त्रित कर सकता है।

पहली स्थिति में, वस्तु की निर्धारित कीमत पर माँग के अनुसार पूर्ति निश्चित होगी जबकि दूसरी अवस्था में माँग एवं पूर्ति की शक्तियों के द्वारा मूल्य स्वत: निर्धारित होगा। एकाधिकारी मूल्य एवं पूर्ति दोनों को एक साथ निर्धारित या प्रभावित नहीं कर सकता इसलिए वह प्राय: पहले वस्तु की कीमत को निर्धारित करता है और फिर पूर्ति को उसी के अनुसार समायोजित करता है। एकाधिकारी प्राय: वस्तु की मात्रा को निम्नलिखित दो कारणों से निश्चित करना उचित नहीं समझता—

1. माँग में परिवर्तन न होने पर पूर्ति का उसके अनुरूप बने रहना आवश्यक नहीं है।
2. माँग की लोच में परिवर्तन होने से कीमत उत्पादन व्यय से नीचे गिर सकता है।

अत: एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य-निर्धारण की दो सर्वमान्य विधियाँ निम्नलिखित हैं—

I. प्रो० मार्शल की भूल तथा जाँच विधि अथवा नव परम्परागत विधि।
II. श्रीमती जॉन रॉबिन्सन द्वारा प्रतिपादित सीमान्त लागत विधि अथवा आधुनिक विधि।

I. भूल तथा जाँच विधि (Trial and Error Method)

प्रो० मार्शल के अनुसार एकाधिकारी को अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए भूल तथा जाँच विधि को अपनाया जाना चाहिए। इस विधि के अनुसार एकाधिकारी को अपनी वस्तु के मूल्य एवं उसकी मात्रा में अनेक बार परिवर्तन करके आय की मात्रा की तुलना भी करनी चाहिए तथा जिस मूल्य या जिस मात्रा पर उसे अधिकतम लाभ की प्राप्ति हो, उस समय तक उसे निरन्तर प्रयत्न करते रहना चाहिए।

प्रो० मार्शल के अनुसार, मूल्य निर्धारण के समय प्राय: एकाधिकारी निम्नलिखित दो बातों पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है—
1. माँग की दशाएँ तथा 2. पूर्ति की दशाएँ।

1. **माँग की दशाएँ**—इस विषय में मुख्य रूप से दो स्थितियाँ हो सकती हैं—
   (i) **वस्तु की माँग अत्यधिक लोचदार हो**—इसका अर्थ यह है कि कीमत में थोड़ी-सी वृद्धि होने पर माँग में अत्यधिक कमी आ जाए या कीमत में थोड़ी-सी कमी होने पर माँग में अत्यधिक वृद्धि हो जाए। ऐसी स्थिति में एकाधिकारी का हित इसमें होगा कि वह वस्तु की नीची कीमत निर्धारित करे एवं अधिकतम कुल लाभ प्राप्त करे क्योंकि यदि ऐसी स्थिति में एकाधिकारी अपनी वस्तु की ऊँची कीमत निर्धारित करता है तो वस्तु की माँग बहुत गिर सकती है, जिसमें एकाधिकारी को अपेक्षित लाभ नहीं हो सकेगा।
   (ii) **वस्तु की माँग बेलोचदार हो**—इसका अर्थ है कि कीमत में परिवर्तन का माँग पर कोई उल्लेखनीय प्रभाव न पड़े। ऐसी स्थिति में एकाधिकारी को अधिकतम लाभ प्राप्त करने हेतु ऊँचा मूल्य निर्धारित करना चाहिए।
2. **पूर्ति की दशाएँ**—पूर्ति की दशाओं में यह ध्यान रखना होता है कि उत्पादन उत्पत्ति के किस नियम के अन्तर्गत हो रहा है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित तीन अवस्थाएँ सम्भव हैं—
   (i) **क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम की दशा**—इस दशा में उत्पादन में वृद्धि होने पर लागत में वृद्धि होगी, इसलिए एकाधिकारी को वस्तु की पूर्ति कम करके प्रति इकाई अधिक कीमत निर्धारित करनी होगी, तभी उसे अधिकतम लाभ प्राप्त होगा।
   (ii) **क्रमागत उत्पत्ति समता नियम की दशा**—इस दशा के अन्तर्गत उत्पादन की मात्रा का लागत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। अत: इस दशा में वस्तु का मूल्य माँग की लोच के आधार पर निश्चित होगा।
   (iii) **क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम की दशा**—इस नियम के लागू होने पर उत्पादन वृद्धि के साथ-साथ लागत में भी कमी आती है, इसलिए अधिकतम लाभ प्राप्त करने हेतु एकाधिकारी को पर्याप्त मात्रा में उत्पादन करके कम मूल्य पर वस्तु को बेचना चाहिए।

II. सीमान्त आय एवं सीमान्त लागत विधि (Marginal Revenue and Marginal Cost Method)

यह विधि सर्वोत्तम है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों **श्रीमती जॉन रॉबिन्सन** तथा **प्रो० नाईट** आदि ने इस विधि का प्रतिपादन किया है। **श्रीमती जॉन रॉबिन्सन** के अनुसार, "एकाधिकारी उस बिन्दु पर अपनी वस्तु की कीमत निर्धारित करेगा, जहाँ उसकी सीमान्त

आय (Marginal Revenue) सीमान्त लागत (Marginal Cost) के बराबर होगी तभी उसे एकाधिकारी लाभ प्राप्त हो सकेगा।'' सरल शब्दों में, अधिकतम लाभ प्राप्ति के लिए सीमान्त आगम (*MR*) का सीमान्त लागत (*MC*) के बराबर होना आवश्यक है।

एकाधिकार के अन्तर्गत माँग तथा पूर्ति की रेखाओं के विषय में यह उल्लेखनीय है कि माँग रेखा अपूर्ण प्रतियोगिता की तरह बाईं ओर से दाईं नीचे की ओर गिरती हुई होती है तथा सीमान्त आगम (Marginal Revenue) सदैव ही औसत आगम (Average Revenue) अर्थात् कीमत से कम होता है। जहाँ तक पूर्ति रेखाओं का प्रश्न है, पूर्ति रेखाएँ पूर्ण एवं अपूर्ण प्रतियोगिता जैसी ही होती हैं। समय की दृष्टि से एकाधिकार के अन्तर्गत मूल्य निर्धारण की व्याख्या को निम्नलिखित दो भागों में बाँटा जा सकता है—

1. **अल्पकाल में मूल्य निर्धारण**—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मूल्य का निर्धारण उसी बिन्दु के द्वारा निर्देशित होगा, जहाँ सीमान्त आगम (*MR*) सीमान्त लागत (*MC*) के बराबर होगा।

   अल्पकाल में एकाधिकार के सम्बन्ध में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि एकाधिकारी इस अवधि में लाभ, हानि अथवा सामान्य लाभ, कुछ भी अर्जित कर सकता है। सरल शब्दों में, अल्पकालीन मूल्य निर्धारण में एकाधिकारी को लाभ भी प्राप्त हो सकता है, हानि भी हो सकती है तथा सामान्य लाभ (शून्य लाभ) भी प्राप्त हो सकता है।

   तकनीकी दृष्टिकोण से, यदि औसत आगम अधिक है और औसत लागत कम है तो एकाधिकारी लाभ अर्जित करेगा। यदि औसत आगम कम तथा औसत लागत परस्पर बराबर हैं तो सामान्य लाभ की प्राप्ति होगी। यदि औसत आगम कम तथा औसत लागत अधिक है, तो एकाधिकारी को हानि होगी।

   इन तीनों अवस्थाओं को रेखाचित्रों के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

   चित्र-1 (*A*), (*B*) व (*C*) में लाभ, सामान्य लाभ एवं हानि की स्थिति को प्रदर्शित किया गया है। चित्र में *AR* औसत आगम वक्र एवं *MR* सीमान्त आगम वक्र है। *MC* अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्र और *AC* औसत लागत वक्र है। अधिकतम लाभ प्राप्त करने हेतु उत्पादन की मात्रा उस बिन्दु के द्वारा निर्धारित होगी, जहाँ *MR* तथा *MC* एक-दूसरे के बराबर हैं। चित्र (*A*) में *NMEL* लाभ की मात्रा है। रेखाचित्र (*B*) में सामान्य लाभ की स्थिति है। चित्र (*C*) में *NMPL* हानि की मात्रा है।

   निष्कर्ष—1. एकाधिकारी अपने उत्पादन को उस सीमा तक बढ़ाएगा, जहाँ सीमान्त आय (*MR*) सीमान्त लागत (*MC*) के बराबर हो जाती है। सरल शब्दों में, एक फर्म साम्य में होगी, जहाँ *MC* = *MR* के है।
2. अल्पकाल में एकाधिकारी फर्म को लाभ, हानि या सामान्य लाभ तीनों हो सकते हैं।
3. यदि *AR*, *AC* से अधिक है तो एकाधिकारी फर्म को असाधारण लाभ मिलेगा। [चित्र-1(*A*)]

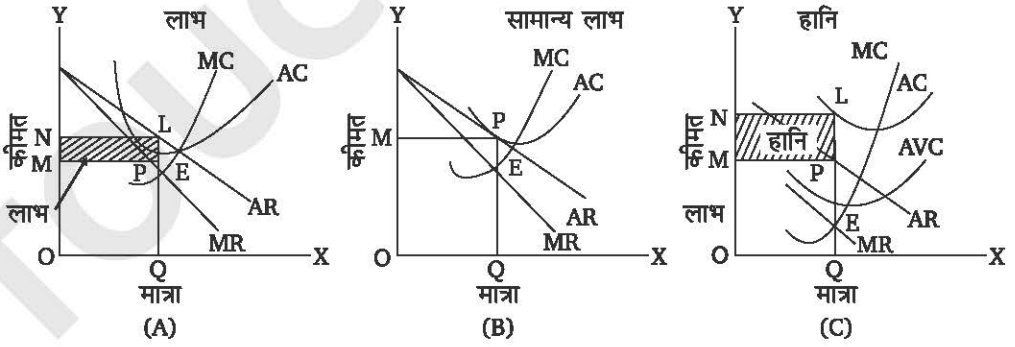

चित्र 1

4. यदि *AR*, *AC* से कम है तो एकाधिकारी फर्म को हानि होगी लेकिन वह उत्पादन करेगी। [चित्र-1(*C*)]
5. यदि *AR*, *AVC* से कम है तो एकाधिकारी फर्म उत्पादन कार्य बन्द कर देगी।
6. यदि *AR*, *AC* के बराबर है तो एकाधिकारी फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होगा। [चित्र-1(*B*)]

2. दीर्घकाल में मूल्य निर्धारण—दीर्घकाल में एकाधिकारी फर्म को सदैव लाभ प्राप्त होगा। इसके दो मुख्य कारण हैं—प्रथम, नयी फर्मों के लिए बाजार में आना कठिन है। द्वितीय, यदि एकाधिकारी को अतिरिक्त लाभ प्राप्त नहीं होता है तो वह अनावश्यक ही बाजार में अपना अस्तित्व बनाए रखना चाहेगा।

चित्र-2 में, एकाधिकारी फर्म का दीर्घकालीन सन्तुलन बिन्दु E है, जहाँ $LMC = LMR$। फर्म Q_1M कीमत पर OQ_1 के बराबर उत्पादन करेगी। फर्म को कुल लाभ प्राप्त होगा = $TSMR$.

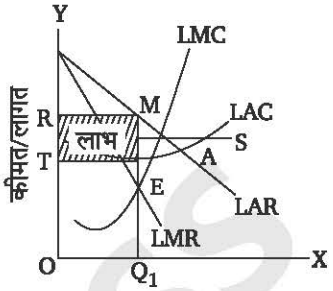

चित्र 2

चूँकि दीर्घकाल में एकाधिकारी उद्योग के विस्तार अथवा संकुचन की पूर्ण सम्भावनाएँ रहती हैं अत: उद्योग की उत्पादन लागत पर उत्पादन के नियमों का प्रभाव पड़ता है। 'उत्पादन के नियमों' की क्रियाशीलता के आधार पर दीर्घकाल में निम्नलिखित तीन दर्शाएँ हो सकती हैं—

(i) **उत्पत्ति वृद्धि नियम की स्थिति**—जब यह नियम क्रियाशील होता है तो आय (आगम) की स्थिति में तो कोई परिवर्तन नहीं होता परन्तु उत्पादन वृद्धि के साथ-साथ सीमान्त लागत तथा औसत लागत दोनों ही लागतों में कमी आती चली जाती है। अत: इसे **लागत ह्रास नियम** (Law of Decreasing Cost) भी कहते हैं।

(ii) **उत्पत्ति समता नियम**—इस नियम के क्रियाशील होने पर सीमान्त तथा औसत लागत दोनों ही स्थिर रहती हैं अर्थात् उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता; फलत: इस नियम को **लागत समता नियम** (Law of Constant Cost) भी कहा जाता है।

(iii) **उत्पत्ति ह्रास नियम**—जब यह नियम क्रियाशील होता है तो उत्पादन वृद्धि के साथ-साथ सीमान्त तथा औसत लागत में वृद्धि होती जाती है अत: इस नियम को **लागत वृद्धि नियम** (Law of Increasing Cost) की संज्ञा भी दी जाती है। [देखिए चित्र-3 (*A*), (*B*), (*C*)]

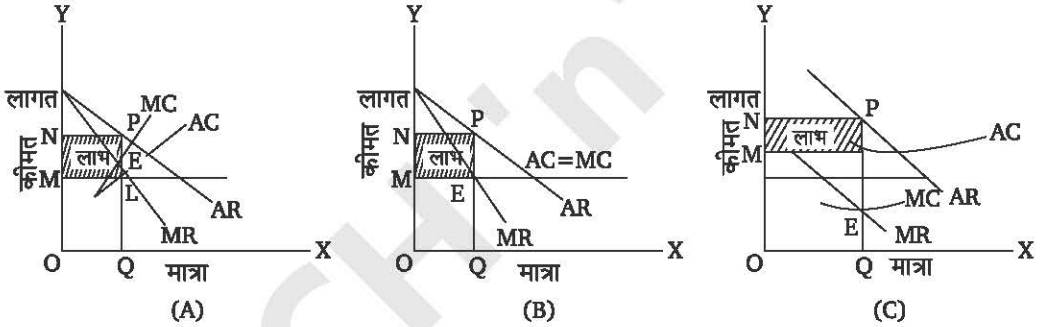

चित्र 3

(उपर्युक्त चित्रों में रेखांकित भागों में लाभ की स्थिति दिखाई गई है।)

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि दीर्घकाल में एकाधिकार के अन्तर्गत उत्पादन का चाहे कोई नियम क्यों न क्रियाशील हो, उत्पादन विक्रेता को लाभ की ही प्राप्ति होती है।

प्र.3. ट्रस्ट की अवधारणा एवं ट्रस्ट विरोधी कानून के विषय में लिखिए। भारत में ट्रस्ट विरोधी कानून की व्याख्या कीजिए।
Write about concept of trust and anti-trust law. Discuss anti-trust law in India.

उत्तर

ट्रस्ट की अवधारणा तथा साख (या ट्रस्ट) विरोधी कानून
(Concept of Trust and Anti-Trust Law)

ट्रस्ट विरोधी कानून प्रतिस्पर्धा कानूनों के रूप में भी जाना जाता है, जिसका उद्देश्य व्यापार एवं वाणिज्य को अनुचित प्रतिबन्धों, एकाधिकार तथा मूल्य निर्धारण से सुरक्षित रखना है। ट्रस्ट विरोधी कानून यह सुनिश्चित करते हैं कि खुले बाजार की अर्थव्यवस्था में निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा उपलब्ध है।

ट्रस्ट की अवधारणा (Concept of Trust)

बाजार व्यवहार के सन्दर्भ में ट्रस्ट एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें स्वतन्त्र फर्मों के अंशधारी ट्रस्ट प्रमाण-पत्रों के बदले 'स्टॉक' देने को तत्पर हो जाते हैं। ट्रस्ट के प्रमाण-पत्र उन्हें ट्रस्ट के सामान्य लाभों से अपना हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार देते हैं। ट्रस्टियों का एक समूह ट्रस्ट का एकाधिकार के रूप में संचालन करता है एवं उत्पादन को नियन्त्रित और कीमत को निर्धारित करता है।

TOUCH 'n' PASS

ट्रस्ट-विरोधी कानून (Anti-Trust Law)

ट्रस्ट-विरोधी अधिनियम या कानून उस कानून को कहते हैं जिनके द्वारा ऐसे ट्रस्टों को रोका जाता है और उनकी ऐसी क्रियाओं को नियन्त्रित किया जाता है जिन्हें अविवेकी व्यापार व्यवहार कहा जाता है एवं जो प्रतियोगिता को रोकती हैं और बाजार पर नियन्त्रण को बढ़ावा देती हैं।

ट्रस्ट व्यवस्था की उत्पत्ति अमेरिका में हुई थी। इन ट्रस्टों की एकाधिकार शक्ति को नियन्त्रित करने के लिए यू.एस.ए. कांग्रेस द्वारा इन ट्रस्टियों के खिलाफ जो कानून बनाए गए उन्हें ट्रस्ट-विरोधी कानून (Anti-Trust Legilation) कहा जाता है। अमेरिका में प्रथम ट्रस्ट-विरोधी कानून 1890 में पास किया गया, जो **शेर्मन अधिनियम** (Sherman Act) कहलाया। इस अधिनियम द्वारा राज्यों या राष्ट्रों के बीच व्यापार पर रोक लगाने के किसी भी अनुबन्ध (Contract) को अवैध घोषित किया गया एवं एकाधिकार को किसी भी प्रयत्न, सफल अथवा विफल को, एक अपराध घोषित किया गया। इसके पश्चात् सन् 1914 में **क्लेटन अधिनियम** (Clayton Act) तदुपरान्त संघीय व्यापार आयोग अधिनियम (Federal Trade Commission Act) भी पारित किए गए। FTC Act द्वारा संघीय व्यापार आयोग (Federal Trade Commission) स्थापित किया गया। FTC एक नियामक निकाय (Regulatory Body) कहलाता है जिसका कार्य उन फर्मों के ढाँचे एवं व्यवहार की जाँच-पड़ताल करना है जो अन्तर्राज्यीय व्यापार में लगी हुई है ताकि यह निश्चित किया जा सके कि अवैध (Unlawful) तथा अनुचित (Unfair) व्यवहार क्या होता है और उन फर्मों को जिन्होंने टस्ट-विरोधी कानूनों का उल्लंघन किया होता है उन्हें रोकने एवं बन्द करने के आदेश जारी किए जा सकें।

भारत में ट्रस्ट-विरोधी कानून
(Anti-Trust Law in India)

देश में औद्योगिक क्षेत्र में संकेन्द्रण की बढ़ती हुई प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण प्राप्त करने के उद्देश्य से एवं बड़े औद्योगिक घरानों की एकाधिकारिक तथा प्रतिबन्धक गतिविधियों पर नियन्त्रण पाने के दृष्टिकोण से, भारत सरकार ने 1969 में एकाधिकारी एवं प्रतिबन्धक व्यापार व्यवहार अधिनियम अपनाया तथा 1970 में एकाधिकारी और प्रतिबन्धक व्यापार व्यवहार कमीशन का गठन किया था। MRTP अधिनियम (Monopolistic and Restrictive Trade Practices Act) के अन्तर्गत यह व्यवस्था थी कि जब भी 'बड़े औद्योगिक घराने' अथवा प्रभावी उपक्रम की श्रेणियों में आने वाले प्रतिष्ठानों की क्रिया-विधियाँ आपत्तिजनक हों तो मामला एकाधिकारी प्रतिबन्धक व्यापार व्यवहार आयोग के सुपुर्द कर दिया जाएगा तथा उसका जो भी निर्णय होगा वह सम्बन्धित प्रतिष्ठान को मानना होगा।

एम०आर०टी०पी० अधिनियम का उद्देश्य एकाधिकार को नियन्त्रित करना एवं आर्थिक केन्द्रीयकरण को घटाना था। फिर भी, समय बीतने एवं आर्थिक प्रगति के साथ वर्तमान ट्रस्ट विरोधी कानून, अर्थात् MRTP अधिनियम की पुन: रचना को आवश्यक समझा गया। आर्थिक उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में एकाधिकार शक्ति पर नियन्त्रण रखने की अपेक्षा बाजार में प्रतियोगिता को बढ़ावा देना एवं उसे सुरक्षित रखना आवश्यक हो गया। उसके अनुसार श्री **एस.वी.एस. राघवन** की अध्यक्षता में एक उच्च-स्तरीय समिति का गठन किया गया। इस समिति का कार्य एक आधुनिक प्रतियोगिता कानून का सुझाव देना था जो कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल हो। **राघवन** समिति ने एक नए प्रतियोगिता कानून की सिफारिश की, जिसे **प्रतिस्पर्धा अधिनियम, 2002** (Competition Act, 2002) के नाम से जाना जाता है। इस अधिनियम के लागू होने पर MRTP Act समाप्त हो गया। प्रतिस्पर्धा अधिनियम लागू करने के लिए भारत सरकार द्वारा **भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग** (Competition Commission of India, CCI) की स्थापना की गई।

❑

UNIT-VI

उपभोक्ता एवं उत्पादक सिद्धान्त
Consumer and Producer Theory

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. माँग के नियम का कथन क्या है?

What is the statement of law of demand?

उत्तर गिरते हुए मूल्य के साथ माँग की मात्रा बढ़ जाती है एवं बढ़ते हुए मूल्य के साथ माँग की मात्रा घट जाती है।

प्र.2. माँग के नियम के कोई दो प्रमुख अपवाद लिखिए।

Write two main exceptions of law of demand.

उत्तर माँग के नियम के दो प्रमुख अपवाद हैं—1. गिफिन वस्तुओं पर यह लागू नहीं होता। 2. जब भविष्य में किसी वस्तु के दुर्लभ होने की आशंका हो।

प्र.3. किसी वस्तु की कीमत और उसकी माँगी गई मात्रा में विपरीत सम्बन्ध किस नियम के अन्तर्गत होता है?

The opposite relation between a good's cost and its demanded quantity under which law?

उत्तर माँग के नियम के अन्तर्गत किसी वस्तु की कीमत और उसकी माँगी गई मात्रा में विपरीत सम्बन्ध होता है।

प्र.4. समोत्पाद वक्र का ढाल से आप क्या समझते हैं?

What do you understand by the slope of product curve?

उत्तर समोत्पाद वक्र का ढाल ऋणात्मक होता है। दूसरे श्ब्दों में, एक समोत्पाद रेखा बाईं ओर से दाईं ओर को नीचे की तरफ गिरती हुई होती है।

प्र.5. एक उत्पादक का उद्देश्य बताइए।

Tell the objective of a producer.

उत्तर अपने लाभ को अधिकतम करना एक उत्पादक का उद्देश्य होता है।

प्र.6. एक उत्पादक अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए क्या नीति अपनाता है?

Which policy is adopted by a producer to maximise his profit?

उत्तर एक उत्पादक अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए उत्पत्ति के विभिन्न साधनों को ऐसे अनुपात में मिलाता है जिससे उत्पादन लागत न्यूनतम हो।

प्र.7. समोत्पाद वक्र के ढाल को आप किस प्रकार माप सकते हैं?

How can you measure the slope of product curve?

उत्तर समोत्पाद वक्र के ढाल को हम तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर द्वारा माप सकते हैं।

प्र.8. समोत्पाद वक्र की तकनीकी सीमान्त प्रतिस्थापन दर का सूत्र क्या है?

What is the formula for technical marginal rate of substitution of product curve?

उत्तर समोत्पाद वक्र की तकनीकी सीमान्त प्रतिस्थापन दर का सूत्र है—$MRTS_{XY} = \frac{\Delta Y}{\Delta X}$

TOUCH 'n' PASS

प्र.9. अपूर्ण प्रतियोगिता के प्रमुख आधार कौन-से हैं?
Which are the main bases for imperfect competition?

उत्तर अपूर्ण प्रतियोगिता के प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं—

(क) एकाधिकार, (ख) अल्पजनाधिकार, (ग) एक क्रेता स्पर्धा, (घ) अल्पक्रेता स्पर्धा, (ङ) एकाधिकारी प्रतियोगिता, (च) अधोमुखी प्रवण दीर्घावधि औसत लागत वक्र; यथा—स्वाभाविक एकाधिकार, (छ) मूल्य विभेदीकरण, (ज) मूल्य मथाई।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. समोत्पाद वक्र कौन-सी मान्यताओं पर निर्भर है?
On which assumptions is product curve dependent?

उत्तर जब हम समोत्पाद वक्रों का निर्माण करते है, तब कुछ आधारभूत मान्यताओं को स्वीकार करते हैं; जैसे—

1. उत्पादन के साधन छोटी-छोटी इकाइयों में विभाज्य हैं।
2. साधनों को पूर्ण कुशलता के साथ प्रयुक्त किया जा रहा है।
3. वस्तु के उत्पादन के लिए केवल दो ही साधनों का प्रयोग किया जा रहा है। क्योंकि यदि हम दो से अधिक साधनों के प्रयोग की मान्यता स्वीकार करते हैं तो समोत्पाद वक्रों की सरलता समाप्त हो जाती है।
4. विश्लेषण की अवधि में उत्पादन की प्राविधिक दशाएँ अपरिवर्तित रहती हैं।

प्र.2. समोत्पाद वक्रों की प्रमुख विशेषताएँ संक्षेप में लिखिए।
Write the main characteristics of product curve in brief.

***अथवा* समोत्पाद रेखाएँ किन्हें कहते हैं? इनकी विशेषताएँ लिखिए।**

***Or* What are product lines? Write their characteristics.**

उत्तर समोत्पाद रेखा का अर्थ—एक समोत्पाद रेखा दो साधनों के उन सब सम्भावित संयोगों को बताती है जोकि एकसमान मात्रा में उत्पादन प्रदान करते हैं।

समोत्पाद वक्रों की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

1. दायीं ओर स्थित समोत्पाद वक्र अधिक उत्पादन को प्रदर्शित करते हैं।
2. समोत्पाद वक्र किसी भी अक्ष को स्पर्श नहीं कर सकते हैं।
3. ऋजु रेखाएँ उत्पादन क्षेत्र की आर्थिक सीमाओं का निर्माण करती हैं।
4. एक समोत्पाद वक्र बाएँ से दाएँ को नीचे की ओर गिरता हुआ होता है अर्थात् उसका ढाल ऋणात्मक होता है।
5. समोत्पाद वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर होता है।
6. समोत्पाद वक्र एक-दूसरे को कभी काटते नहीं हैं अथवा वे एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते हैं। दूसरे शब्दों में, वे एक-दूसरे की स्पर्श रेखाएँ नहीं होती हैं।

प्र.3. समलागत रेखा से आपका क्या अभिप्राय है?
What do you mean by Iso-cost line?

उत्तर समलागत रेखा या साधन कीमत रेखा, उपभोक्ता की बजट रेखा अथवा कीमत रेखा की तरह ही होती है। कोई उत्पादक साधनों का कौन-सा संयोग चुनेगा, यह उत्पादक के पास साधनों को खरीदने के लिए उपलब्ध मुद्रा की माँग एवं साधनों की कीमत पर निर्भर करता है। इसलिए समलागत रेखा उत्पादन साधनों की कीमत तथा उत्पादक द्वारा व्यय की जाने वाली मुद्रा के बीच के सम्बन्ध को व्यक्त करती है। संलग्न चित्र में A_1B_1, A_2B_2 तथा A_3B_3 समलागत रेखाएँ हैं।

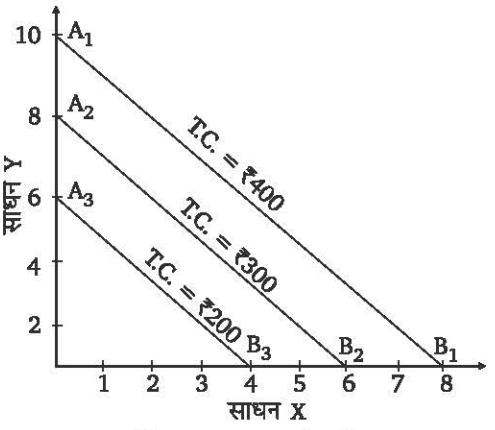

चित्र 1. समलागत रेखाएँ

प्र.4. सीमान्त लागत कीमत निर्धारण को स्पष्ट करते हुए इसकी परिभाषाएँ लिखिए। इसके लाभ तथा सीमाएँ भी बताइए।
Making clear the marginal cost pricing, write its definitions. Also mention its advantages and limitations.

उत्तर

सीमान्त लागत कीमत निर्धारण
(Marginal Cost Pricing)

वस्तु के उत्पादन में प्राय: दो प्रकार के व्यय किए जाते हैं। पहले, वे व्यय जिन पर कुछ सीमा तक उत्पादन की इकाइयों में वृद्धि अथवा कमी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, दूसरे शब्दों में, उत्पादन की मात्रा में वृद्धि करने पर अथवा कमी करने पर इन खर्चों की राशि में कोई बदलाव नहीं होता है। ऐसे खर्चों को 'स्थिर व्यय' कहते हैं। दूसरे, कुछ व्यय ऐसे होते हैं, जो उत्पादन इकाइयों में कमी अथवा वृद्धि होने पर कम अथवा बढ़ जाते हैं। इन व्ययों को परिवर्तनशील व्यय कहते हैं। स्थिर व्यय की प्रकृति होती है कि उत्पादन इकाई में वृद्धि होने पर प्रति इकाई स्थिर व्यय कम हो जाता है और इसके विपरीत दशा में बढ़ता जाता है। परिवर्तनशील व्यय सदैव प्रति इकाई एकसमान ही रहता है, चाहे उत्पादन की मात्रा में वृद्धि की गई हो अथवा कमी कर दी गई हो। आधुनिक काल में यह सामान्य रूप से माना जाता है कि कुल व्ययों के स्थिर एवं परिवर्तनशील व्ययों के रूप में बँटवारे द्वारा लागत निर्धारण, लागत नियन्त्रण तथा निर्णयन में सहायता मिलती है। इस उद्देश्य के लिए जिस विधि का प्रयोग किया जाता है, उसे 'सीमान्त लागत विधि' कहा जाता है।

स्थायी व्ययों तथा परिवर्तनशील व्ययों में भेद कर सीमान्त लागत का निर्धारण करना एवं उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन का लाभ पर प्रभाव का निर्धारण करना सीमान्त लागत विश्लेषण कहलाता है। इस परिभाषा के अनुसार सीमान्त लागत के अध्ययन के अन्तर्गत कुल लागत को स्थायी तथा परिवर्तनशील व्ययों में अन्तर कर सीमान्त लागत का निर्धारण किया जाता है। किसी एक दी हुई उत्पादन मात्रा पर वह धनराशि जिसके द्वारा कुल लागत में परिवर्तन होता है, यदि उत्पादन की मात्रा एक इकाई से बढ़ाई अथवा घटाई जाए, तो उसे सीमान्त लागत कहते हैं। व्यवहार में यह कुल परिवर्तनशील लागत द्वारा नापा जाता है जो कि एक इकाई को लागू होता है।

सीमान्त कीमत निर्धारण विधि के लाभ (Advantages of Marginal Cost Pricing)

सीमान्त मूल्य-निर्धारण विधि से होने वाले लाभ निम्नलिखित हैं—

1. अल्पकाल में परिवर्तनशील लागत भी नियन्त्रित रहने के कारण वस्तु की कीमत बढ़ नहीं पाती है ऊँची स्थायी लागत रहते हुए भी कीमत अधिक नहीं होती है।
2. सीमान्त लागत वर्तमान के बदले भविष्य के वर्तमान लागत-स्तर और लागत सम्बन्धों को दर्शाती है। ऐसा मूल्य-निर्णय लेते समय कोई भी मूल्य के कारण लागत में हुए परिवर्तन से सम्बन्ध रखता है। संक्षिप्त लागत इन परिवर्तनों को बतलाती है।
3. यह विधि उत्पादक को एक आक्रमण मूल्य-नीति लागू करने का अवसर प्रदान करती है। इससे अधिक विक्रय, लाभ, उत्पादन, साधनों की कम कीमतों आदि का लाभ मिलता है।
4. वस्तु के जीवन-चक्र में मूल्य-निर्धारण के कार्य के लिए सीमान्त लागत काफी उपयोगी होती है।

सीमाएँ (Limitations)

सीमान्त लागत कीमत निर्धारण की सीमाएँ निम्नलिखित हैं—

1. लेखापाल सीमान्त-लागत-विश्लेषण से पूरी तरह परिचित नहीं होने के कारण प्रबन्ध की इस धारणा को ठीक से समझा नहीं सकते हैं।
2. इससे छोटे व्यवसाय प्रेरित होते हैं, क्योंकि अल्पकाल में कम लाभ रहते हुए भविष्यकालीन अधिक लाभ के सुनहरे अवसर की आशा तो रहती है, किन्तु माँग बढ़ने पर इसकी उत्पादन-क्षमता कम पड़ जाती है।
3. मन्दी के दौरान व्यवसाय चालू रखने के लिए फर्म को अपनी वस्तु का मूल्य घटाना होता है जिससे दूसरी फर्मों को भी अपने-अपने मूल्यों में कटौती करनी पड़ती है। इससे गलाकाट प्रतियोगिता प्रारम्भ होती है। सीमान्त-मूल्य-निर्धारण का प्रयोग विशेष आदेशों तक ही सीमित होता है।

प्र.5. किसी वस्तु की बाजार माँग को किस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं?
How can you present the market demand of any good (thing)?

उत्तर एक बाजार में किसी वस्तु का एक उपभोक्ता न होकर अनेकानेक उपभोक्ता होते हैं। किसी वस्तु की बाजार माँग एक माँग अनुसूची एवं माँग वक्र पर प्रस्तुत की जाती है। वे वस्तु की विभिन्न कीमतों पर सभी उपभोक्ताओं द्वारा माँगी गई विभिन्न मात्राओं

के कुल जोड़ को दर्शाते हैं। मान लीजिए कि एक बाजार में A, B और C तीन व्यक्ति हैं जो वस्तु को खरीदते हैं। वस्तु की माँग अनुसूची को दी गई तालिका में व्यक्त किया गया है।

कीमत (₹)	माँगी गई मात्रा			कुल माँग
	A	B	C	
(1)	(2)	+ (3)	+ (4)	= (5)
6	10	20	40	70
5	20	40	60	120
4	30	60	80	170
3	40	80	100	220
2	60	100	120	280
1	80	120	160	360

उपर्युक्त तालिका का स्तम्भ (5) विभिन्न कीमतों पर वस्तु की बाजार माँग को व्यक्त करता है। यह (2), (3) और (4) स्तम्भों को जोड़ने से तीनों उपभोक्ताओं की कुल माँग को दर्शाता है। (1) तथा (5) स्तम्भों के बीच सम्बन्ध बाजार माँग अनुसूची को दर्शाते हैं। जब कीमत बहुत ऊँची ₹ 6 होती है तो माँग 70 किग्रा है। जब वस्तु की कीमत गिरती है तो माँग बढ़ जाती है। जब कीमत न्यूनतम ₹ 1 है तो बाजार माँग 360 किग्रा है।

प्र.6. क्या माँग एवं कीमत में आनुपातिक सम्बन्ध भी होता है? यदि हो, तो स्पष्ट कीजिए।
Is there any proportional relation between demand and price? If yes, make it clear.

उत्तर माँग के नियम के आधार पर कीमत और माँग में विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है। दूसरे शब्दों में, कीमत के बढ़ने पर माँग घट जाती है और कीमत के घटने पर माँग बढ़ जाती है लेकिन यह सम्बन्ध आनुपातिक नहीं होता। इसका आशय यह है कि दोनों में यह विपरीत दिशायी परिवर्तन समान अनुपात में नहीं होता। उदाहरणार्थ के लिए, यदि कीमत में 10% की कमी हो जाती है तो उसकी माँग में 10%, उससे अधिक या उससे कम वृद्धि हो सकती है। इस प्रकार माँग का नियम परिवर्तन की केवल दिशा बताता है; मात्रा नहीं। इसीलिए माँग के नियम को गुणात्मक कथन माना जाता है, परिमाणात्मक कथन नहीं।

प्र.7. माँग का नियम लागू होने के कोई दो प्रमुख कारण लिखिए।
Write any two causes for application of the law of demand.

उत्तर माँग का नियम लागू होने के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—1. माँग का नियम मुख्य रूप से सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम पर आधारित है। सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम हमें यह बताता है कि जैसे-जैसे किसी वस्तु की उत्तरोत्तर इकाइयों का प्रयोग किया जाता है, उपभोक्ता को प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता क्रमशः कम होती चली जाती है। इसलिए कोई व्यक्ति अन्य बातों के समान रहने पर, किसी वस्तु की अधिक इकाइयाँ तब ही क्रय करेगा जबकि वस्तु की कीमत में कमी होगी। अतः वस्तु की कीमत जितनी कम होगी, माँग उतनी ही अधिक होगी।
2. जब किसी वस्तु की कीमत में कमी होती है तो इसका अर्थ है कि वह वस्तु अपनी स्थानापन्न वस्तुओं की तुलना में सस्ती हो गई है। उपभोक्ता निश्चय ही इस वस्तु का महँगी वस्तु के स्थान पर क्रय (प्रतिस्थापन) करेगा। इस प्रकार कीमत कम होने पर वस्तु की माँग बढ़ेगी।

प्र.8. माँग एवं आवश्यकता किसे कहते हैं? इन दोनों में अन्तर बताइए।
What are demand and need? Write the difference between the two.

उत्तर माँग—माँग किसी वस्तु की वह मात्रा है जो किसी दिए हुए समय में, किसी दिए हुए मूल्य पर माँगी जाती है।
आवश्यकता—आवश्यकता एक प्रभावी इच्छा है। इसके लिए तीन बातें आवश्यक हैं—(1) इच्छा, (2) वस्तु को प्राप्त करने के साधन तथा (3) साधनों को व्यय करने की तत्परता।
माँग एवं आवश्यकता में अन्तर—माँग एवं आवश्यकता में प्रमुख अन्तर निम्न प्रकार हैं—
1. आवश्यकता की प्रकृति स्थायी होती है जबकि माँग की प्रकृति अस्थायी होती है।

2. आवश्यकता माँग का कारण होती है तथा माँग आवश्यकता का परिणाम होती है।
3. आवश्यकता इच्छा से बनती है जबकि माँग प्रभावपूर्ण इच्छा अर्थात् आवश्यकता से बनती है।
4. आवश्यकता का मूल्य से कोई सम्बन्ध नहीं होता जबकि माँग का मूल्य से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है क्योंकि माँग मूल्य पर निर्भर करती है।

प्र.9. बाजार विफलता से आप क्या समझते हैं? इसके स्रोत भी लिखिए।

What do you understand by market failure? Also, write its sources.

उत्तर बाजार विफलता—बाजार विफलता से आशय उस स्थिति से है जिसमें बाजार तन्त्र जो माँग एवं पूर्ति की शक्तियों पर आधारित है, स्वयं ही अपने आप एक कुशल साधन आवंटन हेतु पर्याप्त नहीं है।

सरल शब्दों में, बाजार विफलताएँ ऐसी दशाएँ हैं जहाँ बाजारी शक्तियाँ अनुभूत 'जनहित' को सन्तुष्ट नहीं करती। जिनसे विफलता आती है उसके निम्नलिखित दो कारण हैं—

1. उप-इष्टतम बाजार प्राधार और 2. मूल्यों में लागतों अथवा लाभों के अन्तर्राष्ट्रीयकरण का अभाव। उप-इष्टतम बाजार प्राधारों के उदाहरणों में शामिल हैं—

(i) अपूर्ण प्रतियोगिता—

(क) एकाधिकार (ख) अल्पजनाधिकार
(ग) एकाधिकारी प्रतियोगिता (घ) एक क्रेता स्पर्धा
(ङ) अल्पक्रेता स्पर्धा
(च) अधोमुखी प्रवण दीर्घावधि औसत लागत वक्र; जैसे—स्वाभाविक एकाधिकार।
(छ) मूल्य विभेदीकरण (ज) मूल्य मथाई।

(ii) बाहरी लागतें एवं लाभ—

ये परवर्ती के उदाहरणों में सम्मिलित हैं—

बाह्यता—सार्वजनिक वस्तुएँ तथा साझा सम्पत्ति संसाधन—

(क) जनसामान्य की विपत्ति (ख) मुक्त आरोही समस्या।

अनिश्चितता एवं अस्तित्वहीन तथा अपूर्ण बाजार—

(क) नैतिक संकट (ख) मूलधन-अभिकर्त्ता समस्या
(ग) असंयमित सूचना (घ) प्रतिकूल चयन
(ङ) बाजार शक्ति।

प्र.10. स्वाभाविक एकाधिकार से क्या अभिप्राय है? संक्षेप में समझाइए।

What do you mean by natural monopoly? Explain in brief.

उत्तर स्वाभाविक एकाधिकार एक ऐसी बाजार संरचना के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जहाँ कोई एक फर्म ही उद्योग की ऐसी आधारभूत लागत संरचना के कारण जो किसी अन्य के प्रवेश को रोके और किसी विशिष्ट प्रकार के उत्पाद या सेवा की आपूर्तिकर्त्ता हो। स्वाभाविक एकाधिकारों की तुलना प्राय: अवपीड़क एकाधिकारों से की जाती है जिनमें प्रतियोगिता मितव्ययी रूप से व्यवहार योग्य होगी यदि उसकी अनुमति दी जाए लेकिन सम्भावित प्रतिस्पर्धियों को बाजार में प्रवेश करने से कानूनन या बलात् रोक दिया जाता है।

जहाँ किसी उद्योग का सबसे बड़ा आपूर्तिकर्त्ता या किसी स्थानीय क्षेत्र का प्रथम आपूर्तिकर्त्ता, अन्य वास्तविक या सम्भावित प्रतिस्पर्धियों के मुकाबले अत्यधिक लागत लाभ की स्थिति में हो, प्राकृतिक एकाधिकार वहाँ जन्म लेते हैं। यह स्थिति उन उद्योगों में है जहाँ पूँजी लागतें मापानुसार मितव्ययिताएँ उत्पन्न करने में पूर्व प्रभावी होती हैं जिन्हें बाजार के आकार के मुकाबले काफी बड़े स्तर पर उत्पादन करके लाभ उठाया जा सकता है। ऐसी ऊँची लागतें प्रवेश में अवरोध उत्पन्न करती हैं। इस प्रकार के उद्योगों के उदाहरणों में सम्मिलित हैं—बिजली और जल सेवाएँ। यह किसी विशिष्ट प्राकृतिक संसाधन के नियन्त्रण पर भी निर्भर कर सकता है। मापानुसार मितव्ययिताओं का लाभ लेकर विकास करने वाली कम्पनियाँ प्राय: नौकरशाही की समस्याओं में पड़ जाती हैं। ये कारक उस फर्म के लिए एक 'आदर्श' आकार उत्पन्न करने के लिए परस्पर क्रिया करते हैं, जहाँ पर उसकी औसत उत्पादन लागत न्यूनतम हो। यदि वह आदर्श आकार सम्पूर्ण बाजार की आपूर्ति के लिए पर्याप्त बड़ा है तो बाजार एक स्वाभाविक एकाधिकार कहा जाएगा।

प्र.11. सार्वजनिक वस्तुएँ किस प्रकार बाजार विफलता के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं?

How are public goods an important source of market failure?

उत्तर सार्वजनिक वस्तुएँ अथवा 'सामुदायिक उपभोग वस्तुएँ' बाजार विफलता के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। सार्वजनिक वस्तुओं में गैर-प्रतिद्वन्द्विता एवं गैर-वर्जितता की प्रमुख विशेषता पायी जाती है। उदाहरण के लिए—सुरक्षा सेवाएँ, कानून तथा व्यवस्था सेवाएँ आदि। इन सेवाओं के प्रयोग के लिए चाहे कोई भुगतान कर रहा है या नहीं, ये सेवाएँ सभी के लिए उपलब्ध होती हैं; इसलिए ये सेवाएँ गैर-वर्जित हैं। इसी तरह इन सेवाओं का किसी एक व्यक्ति द्वारा उपभोग अन्य व्यक्तियों के लिए इनकी उपलब्धता कम नहीं करता है।

इनकी गैर-वर्जितता तथा गैर-प्रतिद्वन्द्विता की विशेषता के कारण, सार्वजनिक वस्तुओं का बाजार संयन्त्र की प्रणाली में कुशलतापूर्वक आवंटन नहीं किया जा सकता (क्योंकि इनके मामले में निजी लाभ एवं निजी लागत की तुलना में समाज/समुदाय को सामाजिक लाभ अधिक है। अतएव ये वस्तुएँ सरकार द्वारा उपलब्ध कराई जाती हैं और इन पर होने वाले खर्च के लिए वित्त प्रबन्ध सरकार करों (taxes) तथा अन्य स्रोतों से प्राप्त आय द्वारा करती है।

सार्वजनिक वस्तुएँ कब उपलब्ध कराई जानी चाहिए, इनके लिए कितना और कौन भुगतान करता है? इस सन्दर्भ में निम्नलिखित अवलोकन ध्यान देने योग्य हैं—

1. जब सुरक्षित कीमत (Reservation Price) का जोड़ सार्वजनिक वस्तु की लागत से अधिक या बराबर हो जब सार्वजनिक पदार्थ तब उपलब्ध कराए जाने चाहिए। सुरक्षित कीमत वह अधिकतम कीमत है जो कोई व्यक्ति सार्वजनिक वस्तुओं की उपलब्धता के लिए देने को तैयार होता है ताकि उसे समान अथवा अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो।
2. शामिल लोगों की संख्या कम हो।
3. सौदाकारी लागतें बहुत कम हों।

इस प्रमेय का प्रमुख गूढ़ अर्थ यह है कि उस अयथार्थपरक जगत में यदि उपचारों पर विचार किया जाए जिसमें प्रतियोगितात्मक बाजारों को साधारणतया शून्य लेन-देन लागतों का समाज माना जाता है, **पिगवी** उपाय जिन्हें बाह्यता समस्याओं के एक प्रभावी समाधान हेतु आवश्यक कहा जाता है, वास्तव में आवश्यक नहीं होते। कुल मिलाकर जो आवश्यक है, वह है कोई सर्वसामान्य कानून या वैधानिक नियम, जो एक पक्ष अथवा किसी दूसरे पक्ष की बाह्यता के सम्पूर्ण अधिकार प्रदान करता हो। बाह्यता/मूल्य-निर्धारण कार्य प्रणाली तब उसी तरीके से काम करेगी जैसी कि वह उन साधारण वस्तुओं तथा सेवाओं हेतु करती है जिसके समस्त अधिकार स्पष्ट रूप से परिभाषित हों।

कोस प्रमेय की आलोचना मुख्य रूप से तीन कारणों से की गई है। पहला, एकाधिकरण, अवांछनीय रूप से प्रतिस्पर्धात्मक कार्यवाही करते हैं। दूसरा, बहत-सी बाह्यताओं का आन्तरीकरण सम्भव नहीं होता। तीसरा, अपूर्ण जानकारियाँ, वैधानिक पात्रताओं के कारण सौदाकारी प्रक्रिया को निष्फल कर देती हैं।

इस प्रकार जा सकता है कि यद्यपि कोस की प्रमेय अपनी अपर्याप्त अनुभवजन्य प्रासंगिकता के कारण गम्भीर आलोचनाओं तथा विवादों के अधीन है, फिर भी इसने समाजों की कल्याण आवश्यकताओं के अनेक नीति-निरूपणों के बनाने में महत्त्वपूर्ण सहायता की है।

प्र.12. बाजार विफलता से आप क्या समझते हैं? बाजार विफलता के प्रमुख कारण लिखिए।

What do you understand by market failure? Write its main causes.

***अथवा* बाजार असफलता से आप क्या समझते हैं?** **(2021)**

***Or* What do you understand by market failure?**

उत्तर

बाजार विफलता
(Market Failure)

मुक्त बाजार में वस्तुओं एवं सेवाओं के अकुशल वितरण द्वारा परिभाषित आर्थिक स्थिति बाजार विफलता कहलाती है। बाजार की विफलता में व्यक्तिगत प्रोत्साहन समूह हेतु तर्कसंगत परिणाम नहीं देते हैं। सरल शब्दों में, प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए सही निर्णय लेता है, लेकिन कभी-कभी वे निर्णय समूह के लिए गलत साबित होते हैं। पारम्परिक सूक्ष्म अर्थशास्त्र में, इसे कभी-कभी एक स्थिर राज्य असमानता के रूप में दिखाया जा सकता है जिसमें आपूर्ति की गई मात्रा माँग मात्रा के बराबर नहीं होती है।

अत: स्पष्ट है, बाजार की विफलता तब होती है जब स्वार्थ में काम करने वाले व्यक्ति इष्टतम अथवा आर्थिक रूप से अक्षम परिणाम से कम उत्पादन करते हैं। अर्थव्यवस्था में बाजार की विफलता तब होती है जब किसी समूह के व्यक्तियों ने पूरी तरह से तर्कसंगत स्वार्थ में काम नहीं किया होता है।

ऐसा समूह या तो बहुत ही अधिक लागत वहन करता है या बहुत कम लाभ प्राप्त करता है। बाजार की विफलता के कारण आर्थिक परिणाम इष्टतम से विचलित हो जाते हैं एवं आमतौर पर आर्थिक रूप से कुशल नहीं होते हैं। बाजार की विफलता बाजार अर्थव्यवस्था में निहित कमियों का वर्णन नहीं करती है। बाजार की विफलताओं में कुछ विकृतियाँ महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं। यथा—एकाधिकार शक्ति में वृद्धि, कीमत सीमा निर्धारण, न्यूनतम मजदूरी नियमन एवं सरकारी कानून आदि।

बाजार विफलता के कारण (Causes of Market Failure)

1. **बाह्यताएँ**—बाह्यता एक लेन-देन से उत्पन्न लागत अथवा लाभ को संदर्भित करती है जो किसी तीसरे पक्ष पर प्रभाव डालती है जो सीधे तौर पर इसके लाभ अथवा हानि से जुड़ा नहीं होता है। बाह्यता सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार की हो सकती है।
2. **सार्वजनिक वस्तुएँ**—सार्वजनिक वस्तुएँ वे वस्तुएँ होती हैं, जिनका उपभोग बड़ी संख्या में जनमानस द्वारा किया जाता है एवं उपभोक्ताओं की संख्या में वृद्धि के साथ उनकी लागत में वृद्धि नहीं होती है।
   सार्वजनिक वस्तुएँ बाजार में विफलता उत्पन्न करती हैं यदि जनसंख्या का एक वर्ग जो वस्तु का उपभोग करता है भुगतान करने में विफल रहता है लेकिन वास्तविक भुगतानकर्त्ता के रूप में उस वस्तु का उपभोग करना जारी रखता है जैसे किसी कॉलोनी के सभी निवासी उस कॉलोनी में स्थित पार्क का आनन्द उठाते हैं चाहे वे उसके लिए भुगतान करते हैं अथवा नहीं करते हैं।
3. **बाजार नियन्त्रण**—जब क्रेता या विक्रेता के पास बाजार में वस्तुओं या सेवाओं की कीमत निर्धारित करने की शक्ति होती है तब बाजार नियन्त्रण होता है। क्रेता अथवा विक्रेता की शक्ति माँग और आपूर्ति की प्राकृतिक शक्तियों के सिद्धान्त को बाजार में कीमत निर्धारित करने से रोकती है।
4. **बाजार का अपूर्ण ज्ञान**—बाजार की विफलता तब उत्पन्न होती है जब क्रेताओं एवं विक्रेताओं को बाजार के बारे में अधूरी जानकारी होती है। क्रेता को अपूर्ण जानकारी के कारण वे किसी वस्तु की अधिक कीमत देने को तत्पर होंगे या किसी वस्तु की कम कीमत देने को तैयार रहेंगे। इसी प्रकार विक्रेता को बाजार की अपूर्ण जानकारी होने पर वह समस्त लाभों से वंचित रह सकता है।

प्र.13. सार्वजनिक वस्तुओं अथवा सामाजिक वस्तुओं से आपका क्या आशय है?
What do you mean by public goods or social goods?

उत्तर सामाजिक वस्तु को परिभाषित करते हुए **प्रो. सैम्युलसन** ने लिखा है कि, "यह एक ऐसी वस्तु है जिसका सभी लोग मिलकर इस अर्थ में आनन्द प्राप्त करते हैं कि किसी एक व्यक्ति के उपभोग में वृद्धि, किसी अन्य व्यक्ति के उपभोग में कमी लाए बिना होती है।"

सार्वजनिक अथवा सामाजिक वस्तुएँ सार्वजनिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करती हैं। सामाजिक वस्तुओं को सभी व्यक्ति समान मात्रा में उपभोग करते हैं तथा उनके लाभ से किसी व्यक्ति को वंचित नहीं किया जा सकता है अर्थात इनकी उपलब्धि के सम्बन्ध में कोई भेद-भाव नहीं बरता जाता है। जो व्यक्ति इन वस्तुओं के लिए भुगतान करते हैं या जो भुगतान नहीं करते, यह वस्तुएँ सभी की आवश्यकता की सन्तुष्टि करती हैं। सड़क, रेल, पूल, सुरक्षा-सेवाएँ आदि ऐसी विशुद्ध सामाजिक वस्तुएँ हैं जिनके उपभोग का बँटवारा नहीं किया जा सकता और इनकी पूर्ति समाज के सभी लोगों के लिए समान रूप से उपलब्ध होती है। इन वस्तुओं का संयुक्त उपभोग होता है और इनके सम्बन्ध में अपवर्जन सिद्धान्त लागू नहीं होता है। इन वस्तुओं को हिस्सों में विभाजित नहीं किया जा सकता एवं इनकी पूर्ति भी आंशिक रूप से बढ़ाई अथवा घटाई नहीं जा सकती है। चूँकि सामाजिक वस्तुओं के सन्दर्भ में अपवर्जन सिद्धान्त लागू नहीं होता तथा वे सभी व्यक्तियों को समान रूप से उपलब्ध होती हैं और व्यक्ति इनके प्रति अपना अधिमान नहीं व्यक्त कर सकता है, अत: कीमत प्रणाली द्वारा इन वस्तुओं को बाजार में खरीदा या बेचा नहीं जा सकता है। इस प्रकार सरकार द्वारा बजट में आवश्यक व्यवस्था करके सामाजिक वस्तुओं की आपूर्ति की जाती है।

प्र.14. सामाजिक चयन से आप क्या समझते हैं? संक्षेप में लिखिए।

What do you understand by social choice? Write in brief.

उत्तर सामाजिक चयन से तात्पर्य अर्थव्यवस्था में व्यक्तियों एवं गृहस्थों द्वारा वस्तुओं तथा सेवाओं का चयन है। समाज को किस चीज की आवश्यकता है इसको परिभाषित करना सामाजिक चयन अथवा चुनाव की एक समस्या है जो कुछ और नहीं बल्कि व्यक्तिगत अधिमानों (Individual Preferences) का जोड़ है। एक अति महत्वपूर्ण उपकरण जिसका उपयोग सामाजिक चयन के लिए किया जाता है, वह है 'मतदान' (Voting)। सामाजिक चयन (Social Choice) वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्तिगत अधिमानों को सामूहिक निर्णय में बदला जाता है। प्रजातान्त्रिक समाज में व्यक्तिगत रुचियों एवं मूल्यों का एकत्रीकरण करने का भी महत्व रहता है। व्यक्ति के इसी महत्व के कारण ही 'एक व्यक्ति एक मत' की व्यवस्था को अपनाया जाता है। लोक चयन की प्रमुख समस्या यही है कि किस प्रकार लाखों-करोड़ों विचारों को एक, सिर्फ एक विचार में संकलित किया जाए। उदाहरण के लिए, भारत में आणविक अस्त्र बनाने के विषय में लाखों-करोड़ों विचार हैं। इन विचारों को एक सामूहिक विचार में परिवर्तित करना है—हथियार बनाना अथवा नहीं बनाना।

इस प्रकार, सामाजिक निर्णय-निर्माण (Social Decision-making) के एक संयंत्र के रूप में मतदान बहुसंख्यक शासन सिद्धान्त (Principle of Majority Rule) पर आधारित है। यह सामाजिक निर्णय निर्माण प्रक्रिया का एक व्यापक रूप से स्वीकृत मानदण्ड है क्योंकि ऐसा विश्वास किया जाता है कि यह समाज के बड़े वर्ग के अधिमानों (Preferences) का प्रतिनिधित्व करता है। फिर भी सन 1951 में प्रकाशित अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Social Choice and Individual Value' में **के.जे. ऐरो** (K.J. Arrow) ने इस बात को स्थापित किया कि सामान्यत: सामूहिक निर्णय प्रणाली सामाजिक आर्थिक कल्याण को अधिकतम करने में सहायक नहीं होती है। उनके अनुसार जनमत के आधार पर सामाजिक कल्याण फलन का निर्माण करना सम्भव नहीं है। इसके साथ ही उन्होंने गणित तथा प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र (Symbolic logic) की सहायता से **'सामान्य असम्भवता सिद्धान्त'** (General Impossibility Theorem) का प्रतिपादन किया, जिसकी सहायता से उन्होंने व्यक्तिगत अधिमानों के आधार पर सामूहिक अधिमान का निर्माण करने को असम्भव सिद्ध कर दिया। ऐरो के अनुसार, जब सामाजिक निर्णय को जानने के लिए व्यक्तिगत अधिमानों को जोड़ा जाता है तब असंगति तथा स्वेच्छाचारिता का प्रकट होना अनिवार्य है। उन्होंने इसे "मतदान विरोधाभास" (Voting Paradox) का नाम दिया है। इसके अतिरिक्त वे वोटों का व्यापार (Voter Trading) भी कर सकते हैं जब वे किसी विशेष नीति उपकरण की मतदान प्रक्रिया में अपने आपको किसी 'दीजिए-लीजिए' (Give and Take) के लिए वचनबद्ध होते हैं। ऐसा प्राय: संसदीय शासन प्रणाली में होता है, जैसा कि भारत में। ऐरो ने इसे 'अदला-बदली' (Log rolling) का नाम दिया है। इसे अस्वीकार नहीं किया जाता कि कुछ स्थितियों में पारस्परिक लेन-देन एक कुशल सामाजिक चयन का कारण बन सकता है परन्तु साथ ही साथ अकुशल चुनावों की सम्भावना भी उतनी ही अधिक होती है। इसके साथ ही मतदाताओं में अपने आपको मताधिकार सम्बन्धी महत्व निहितार्थ की पूरी जानकारी रखने में कोई रुचि नहीं होती, विशेषकर जब मतदान का सम्बन्ध सार्वजनिक/सामाजिक चुनाव से होता है। जैसा कि भारत में संसदीय चुनावों में क्योंकि गलत चुनाव के कारण कभी-कभी सामूहिक सामाजिक हानि भी होती है। अविवेकी सामाजिक निर्णय प्राय: विवेकी सामाजिक निर्णय को धुंधला कर देते हैं। सामाजिक निर्णय निर्माण के सन्दर्भ में, समस्या उस समय और भी अधिक गम्भीर बन जाती है जब मतदान बारम्बार घटित होने वाली घटना नहीं होती। यही कारण है कि क्यों मतदाता अपने आपको सामाजिक निर्णय निर्माण प्रक्रिया की उलझन में डालने में कोई रुचि नहीं रखता।

प्र.15. सरकारी अकुशलता की संक्षिप्त विवेचना कीजिए।

Give a brief description of government inefficiency.

उत्तर

सरकारी अकुशलता
(Government Inefficiency)

बाजार अर्थव्यवस्था की एक सामान्य कमी है कि यह बाह्यताओं का लेखा-जोखा रखने में असफल रहती है। यह अर्थव्यवस्था में उत्पादन तथा उपभोग की गतिविधियों द्वारा जनित बाहरी लागतों तथा बाहरी लाभों का आकलन तथा उसका निराकरण करने में सफल रही है। तद्नुसार बाजार संयंत्र एक सामाजिक रूप से कुशल उत्पादन मिश्रण अथवा सामाजिक रूप से संसाधन आबंटन का कुशल प्रतिमान स्थापित करने में असफल रहा है। बाह्यताओं के समाधान हेतु सरकारी हस्तक्षेप को आवश्यक समझा जाता है। आज अधिकांश अर्थव्यवस्थाओं में सरकार सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने हेतु उत्पादन एवं उपभोग सम्बन्धी गतिविधियों को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से नियन्त्रित करती है।

फिर भी, इस सन्दर्भ में एक प्रश्न यह उठता है कि क्या सरकारी हस्तक्षेप कुशल निर्णय लेने तथा बाह्यताओं के घटने का सम्पूर्ण समाज के हित में लेखा-जोखा रखने में पूर्ण कुशल है। सरकार के आर्थिक हस्तक्षेप के सन्दर्भ में क्या सरकार की विफलता अथवा सरकार की अकुशलता का वर्जन (Ruled out) किया जा सकता है? सरकारी हस्तक्षेप के आलोचकों ने इस प्रश्न का उत्तर नहीं में दिया है। आलोचकों का तर्क है कि यदि उत्पादन मिश्रण का कोई अनुकूलतम जैसा स्तर पाया भी जाता है तो जल्दबाजी में हमें इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच जाना चाहिए कि सरकार वास्तव में उस उत्पादन मिश्रण को प्राप्त कर सकती है। वास्तव में, आलोचकों की धारणा है कि यदि बाजार अर्थव्यवस्था संसाधनों के अनुकूलतम आबंटन को प्राप्त करने में असफल रहती है तो सरकारी हस्तक्षेप आबंटन की प्रक्रिया को बद से बदतर की ओर प्रवाहित कर देगा। सरकार की अकुशलता को इस रूप में देखा जा सकता है : सामाजिक लाभों तथा सामाजिक लागतों (अथवा बाह्य लाभों तथा बाह्य लागतों) को मापने में अनेक कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं। उदाहरण के लिए, पर्यावरण प्रदूषण के रूप में बाह्य लागतों के अनुमान में बहुत अधिक विचलन होने की सम्भावना बनी रहती है। यह अनुमान जनसंख्या के अनुमान जनसंख्या के आकार तथा प्रयोग में लाए गए विधितंत्र (Methodology) पर निर्भर करता है। क्या फैक्ट्रियों द्वारा उत्सर्जित धुएं की बाह्य लागत का सही अनुमान लगाना वास्तव में सम्भव है, जबकि पीडितों में मानवीय जीवन, पशु-जीवन तथा पौध जीवन सम्मिलित होते हैं ? निश्चित रूप से नहीं। सरकारी कर्मचारियों (समाज की ओर से निर्णय लेने वाले) को ऐसा कोई प्रोत्साहन (incentive) नहीं प्राप्त होता है जिससे प्रेरित होकर वे एक ऐसे निर्माण प्रक्रिया का विकास करें जो कि त्रुटिहीन हो और जिसका केन्द्र-बिन्दु सामाजिक कल्याण को अधिकतम करना हो। यदि निर्णय लेने वाले निर्दयता (Callousness) तथा तटस्थता (Indifference) द्वारा बाध्य न होते तो भारत जैसी अर्थव्यवस्था को सार्वजनिक नियन्त्रण की नीति को त्याग कर उदारीकरण की नीति को क्यों अपनाना पड़ता? क्यों ऐसी अर्थव्यवस्ताएँ तेजी से सार्वजनिक क्षेत्र की नीति का त्याग कर उदारीकरण की नीति अपना रही हैं? क्यों ऐसी अर्थव्यवस्ताएँ तेजी से सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का निजीकरण कर रही हैं ? वास्तव में, बाजार अर्थव्यवस्था में जब फर्मों को हानि उठानी पड़ती है। अकुशल/निर्णयों के कारण तो वे बाजार छोड़ जाती हैं, किन्तु ऐसा कोई संयंत्र उपलब्ध नहीं है जिसके द्वारा उन सार्वजनिक कर्मियों को वापस बुलाया (Recall) जा सके जो लोगों की आकांक्षाओं के अनुरूप कार्य करने में असफल रहते हैं।

यद्यपि सरकार द्वारा कुछ वस्तुओं/सेवाओं के उत्पादन/उपभोग पर आर्थिक सहायता (Subsidy) प्रदान की जाती है फिर भी जनसंख्या का एक बड़ा भाग लाभार्तियों के क्षेत्र से बाहर रहता है।

वैश्विक अर्थव्यवस्था में बहुत सारे ऐसे उदाहरण विद्यमान हैं जहाँ उत्पादन की क्रिया के उसी क्षेत्र में, एक ओर निजी क्षेत्र में उच्च स्तर की कुशलता तथा लाभदायकता देखने को मिलती है, वहीं दूसरी ओर निजी क्षेत्र में ही अकुशलता तथा हानियां देखने को मिलती है।

अन्त में, अर्थव्यवस्था में संसाधनों के आबंटन में सुधार लाने हेतु सरकारी हस्तक्षेप के वारे में यह कहा जा सकता है कि यदि स्वतन्त्र बाजार संसाधनों का कुशल आबंटन नहीं कर पाते तो हमें यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि सरकारी हस्तक्षेप से कुशलता प्राप्त होती है, सरकारें भी विफल होती हैं।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. बाह्यताएँ क्या हैं? इनके प्रकार तथा विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

What are externalities? Throw light on their types and characteristics.

उत्तर

बाह्यताएँ
(Externalities)

बाह्यताएँ तब अस्तित्व में आती हैं जब बाजार में एक फर्म या व्यक्ति की क्रिया (Action) का प्रत्यक्ष प्रभाव (अच्छा या बुरा) बाजार की अन्य फर्मों या व्यक्तियों पर पड़ता है।

बाह्यताओं से तात्पर्य लोगों या फर्मों की "उन क्रियाओं से है जो दूसरों पर अच्छा या बुरा प्रभाव डालती हैं और ये अन्य लोग इन क्रियाओं के लिए कोई भुगतान नहीं करते हैं या इनके बदले में उन्हें कोई मुआवजा नहीं मिलता है। बाह्यताओं का सृजन उस समय होता है जब निजी लागत या लाभ सामाजिक लागत या लागत के बराबर नहीं होते हैं। इनकी दो बड़ी उपजातियां बाह्य मितव्ययताएँ और बाह्य अमितव्ययताएँ हैं।"

बाह्यता का सृजन उस समय होता है जब व्यक्तियों के एक सेट द्वारा की गई उपभोग या उत्पादन की क्रिया अन्य व्यक्तियों के उपभोग, उपयोगिता फलन या उत्पादन फलन को प्रभावित करती है। यह प्रभाव परोक्ष है इस अर्थ में कि इसका सम्बन्ध आर्थिक

क्रिया के कर्त्ता से भिन्न अन्य व्यक्तियों से है तथा यह प्रभाव बाजार यन्त्र के माध्यम से क्रिया नहीं करता है। पीगू ने बाह्यता को सीमान्त सामाजिक लागत तथा सीमान्त निजी लागत के अन्तर के रूप में देखा।

बाह्यताओं का सृजन सम्पत्ति के अधिकार की अनुपस्थिति में होता है। एक उदाहरण लें। एक कारखाना-कचरे को नदी में फेंक देता है तथा धुएं को आसमान में छोड़ देता है, क्योंकि किसी का भी इन पर मालिकाना अधिकार नहीं होता है। नदी तथा आसमान दोनों ही कॉमन सम्पत्ति संसाधन हैं। यदि वे किसी निजी व्यक्ति के अधिकार में होते, तो उनके स्वामी अपने निजी स्वार्थ के हित में उनका संरक्षण करते।

अर्थशास्त्रियों की परिभाषा में लागत उत्पादन प्रक्रिया में लगे साधनों का मूल्य है। अवसर लागत (opportunity cost) सिद्धान्त के अनुसार मूल्य वह लाभ है जो इन साधनों द्वारा सर्वोत्तम वैकल्पिक उपयोग में प्राप्त होता है। (अवसर लागत किसी वस्तु के उत्पादन में लगे साधनों की लागत है जिसकी माप उस मूल्य के रूप में की जाती है जो सर्वोत्तम वैकल्पिक उपयोग में इनके उपयोग से प्राप्त होता है।) मान लें कि ट्रक निर्माण में लगे साधनों का सर्वोत्तम वैकल्पिक उपयोग (best alternative use) टैंक का निर्माण है। अत: ट्रक की लागत टैंक का वह परिमाण है जिसका उत्पादन ट्रक निर्माण के कारण नहीं हो सका। निजी लागत (Private cost) सर्वोत्तम वैकल्पिक उपयोग में लगे उत्पादन के साधनों का वह मूल्य है जो उत्पादनकर्त्ता द्वारा लगाया जाता है। सामाजिक-लागत सर्वोत्तम वैकल्पिक उपयोग में लगे साधनों का वह मूल्य है जो सम्पूर्ण समाज को वहन करना पड़ता है।

इस प्रकार निजी लागत निजी उत्पादनकर्त्ता को उपलब्ध साधनों के सर्वोत्तम वैकल्पिक उपयोग की माप है। सामाजिक लागत में निजी लागत के अतिरिक्त समाज को उपलब्ध सभी साधनों का सर्वोत्तम उपयोग भी शामिल होता है। सामाजिक तथा निजी लाभ में अन्तर बाह्यताओं के कारण होता है और यह अन्तर विनिमय की वह लागत या लाभ है जिसे समाज को वहन करना पड़ता है (लागत की स्थिति में) या समाज को प्राप्त होता है (लाभ की स्थिति में), किन्तु जिसे विनिमय में शामिल पक्ष अपने लेखा में नहीं मिलता है। बाह्यताओं को तृतीय पक्ष प्रभाव (Third Party effects) भी कहा जाता है, क्योंकि यह प्रभाव विनिमय के दो प्रमुख भागीदारों (उपभोक्ता तथा उत्पादनकर्त्ता) से भिन्न अन्य पक्षों पर पड़ता है। बाह्यताएँ कई रूपों में उत्पन्न होती है जिनमें से कुछ हानिकारक होती है और कुछ लाभदायक।

बाह्यताओं के प्रकार (Types of Externalities)

बाह्यताएँ निम्नलिखित दो प्रकार की होती हैं—

1. **लाभदायक अथवा धनात्मक बाह्यताएँ** उस समय उत्पन्न होती हैं जब उत्पादन की क्रिया से केवल उन्हीं को फायदा नहीं होता है, जो वस्तु के उपभोग के लिए कीमत अदा करते हैं, बल्कि उन्हें भी जिनसे ऐसी कीमत नहीं ली जा सकती है। मान लें कि हमने अपने मकान का खूब अच्छी तरह पेन्ट किया जिससे पड़ोसियों को अच्छे नजारे देखने को मिलते हैं तथा उनकी सम्पत्ति का मूल्य बढ़ जाता है। ऐसी बाह्यताओं का सृजन उस समय भी होता है जब किसी चित्रकार की पेन्टिंग की कीमत उस भुगतान से ज्यादा होती है जो चित्रकार को दिया जाता है। जब कभी ऐसी लाभदायक बाह्यताओं का सृजन होता है, फर्म द्वारा उत्पादित मात्रा सामाजिक सर्वोत्तम स्तर की उत्पत्ति से कम होती है। इसका कारण यह है कि फर्म तो सभी लागतों को वहन करती है जबकि अन्य लोगों को लाभ का एक हिस्सा प्राप्त होता है जिसके लिए वे भुगतान नहीं करते हैं।
2. **हानिकारक अथवा ऋणात्मक बाह्यताओं** का उस समय सृजन होता है, जैसे जब कारखाने धुआं छोड़ते है कारखाने की क्रिया से पड़ोस में निवास एवं कार्य करने वाले व्यक्तियों को वास्तविक लागत वहन करनी होती है निम्न प्रकार से—
   (a) धुएं के कारण उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है तथा मेडिकल खर्च बढ़ जाता है,
   (b) धुएं के कारण कपड़े अधिक गन्दे होते हैं तथा धोने का खर्च बढ़ जाता है।

जब कारखाने का मालिक उत्पादन करने का निर्णय लेता है, वह इन लागतों पर विचार नहीं करता है। ऐसी लागतें उसके लिए बाह्य हैं, किन्तु, समाज को वहन करनी पड़ती हैं। ये हानिकारक बाह्यताओं के उदाहरण हैं जो उत्पादनकर्त्ता ऐसी बाह्यताओं का सृजन करता है, वह वस्तु का उत्पादन सामाजिक इष्टतम स्तर (socially optimal level) से अधिक मात्रा में करता है।

बाह्यताएँ चाहे हानिकारक हों या लाभदायक, बाजार की विफलताओं के कारण हैं, क्योंकि इनकी वजह से सीमान्त निजी राजस्व (marginal private revenue) सीमान्त सामाजिक लागत से भिन्न होता है और इसलिए उत्पत्ति सामाजिक इष्टतम स्तर से भिन्न होती है।

बाह्यताओं की विशेषताएँ (Characteristics of Externalities)

बाह्यताओं की निम्न विशेषताएँ हैं—

1. **बाह्यताओं का सृजन उपभोक्ताओं एवं फर्मों के द्वारा होता है।** फर्मों के द्वारा बाह्यताओं के सृजन का उदाहरण ऊपर दिया गया कारखानों के धुआं के माध्यम से। उपभोक्ता द्वारा इसके सृजन का एक उदाहरण लें। मान लें कि भीड़ भरे कमरे में कोई व्यक्ति सिगरेट पीता है। ऐसा करके वह एक कामन संसाधन, शुद्ध वायु, का उपयोग करके अन्य व्यक्तियों के कल्याण को कम करता है।
2. **बाह्यताएँ पारस्परिक** (reciprocal) **होती हैं।** मान लें कि अशोक अपने कारखाने का कूड़ा-कचरा बगल की नदी में डाल देता है। इस प्रकार वह नदी के जल को प्रदूषित करता है। अब मान लें कि भीम इस नदी की मछली को पकड़ कर अपनी जीविका चलाता है। अशोक की क्रिया का भीम पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है और उसके कल्याण में ह्रास होता है। यह भी सम्भव है कि भीम अन्य मछुओं के साथ मछली पकड़कर नदी के जल को प्रदूषित करता है तथा अशोक के कूड़ा-कचरा फेंकने की सामाजिक लागत को बढ़ा देता है।
3. **बाह्यताएँ धनात्मक** (positive) **या ऋणात्मक** (negative) **हो सकती हैं।** यदि मैं कीड़ों से रक्षा के लिए अपने पेड़ों का छिड़काव करता हूँ, तो मेरी क्रिया से मेरे पड़ोसियों को भी प्रत्यक्ष रूप से लाभ प्राप्त होता है। पड़ोसियों से इस लाभ के लिए कोई कीमत लेना सम्भव नहीं होता है। यह धनात्मक (लाभदायक) बाह्यता का उदाहरण है। **सिजविक** (sigwick) का प्रकाश स्तम्भ भी इसी धनात्मक बाह्यता का उदाहरण है। **पीगू** ने कारखाने की चिमनी से निकलने वाले धुएं का जो उदाहरण दिया है उससे आस-पास में रहने वालों को कपड़ों की धुलाई तथा दवाइयों पर अधिक खर्च करना पड़ता है और इस खर्च के लिए मिल मालिक कोई सहायता नहीं कर सकता है अर्थात् इसका भुगतान नहीं करता है। यह ऋणात्मक बाह्यताओं का उदाहरण है।
4. **लोक वस्तु एक विशेष प्रकार की बाह्यता है।** जब कोई व्यक्ति किसी धनात्मक बाह्यता का सृजन करता है और इसका पूरा प्रभाव अर्थव्यवस्था के प्रत्येक व्यक्ति पर पड़ता है, यह बाह्यता शुद्ध लोक वस्तु है। लोक वस्तु एक विशेष प्रकार की बाह्यता है, वह बाह्यता जिसका असर सम्पूर्ण समाज पर पड़ता है। ऊपर दिए गए उस उदाहरण को लें जिसमें पेड़ पर दवा के छिडकाव की बात कही गई। यदि मेरे द्वारा दवा के छिड़काव से सम्पूर्ण समाज से कीड़ों का सफाया हो जाता है, तो मेरे द्वारा एक लोक वस्तु का सृजन हुआ है, किन्तु यदि मेरी क्रिया केवल कुछ पड़ोसियों को ही प्रभावित करती है, तो यह एक बाह्यता है। औपचारिक दृष्टिकोण से धनात्मक बाह्यताएँ तथा लोक वस्तुएँ मिलते-जुलते (similar) हैं, किन्तु व्यवहार में दोनों में अन्तर करना उपयोगी होगा। कभी-कभी यह अन्तर धुँधला या अस्पष्ट रहता है।

प्र.2. अपूर्ण सूचना को परिभाषित करते हुए प्रतिकूल चयन एवं नैतिक जोखिम का उल्लेख कीजिए।
Defining imperfect information, mention adverse selection and moral hazard.

उत्तर

अपूर्ण सूचना
(Imperfect Information)

जब उपभोक्ता को बाजार की पूरी जानकारी नहीं होती अर्थात् वस्तु की कीमत, गुणवत्ता तथा आपूर्ति से सम्बन्धित अधूरी अथवा त्रुटिपूर्ण जानकारी होती है तो इस अपूर्ण सूचना के कारण लोग निर्णय लेने में जोखिम तथा अस्थिरता का सामना करते हैं। वे लाभ अधिकतम करने वाले निर्णय नहीं ले सकते, यदि उन्हें वस्तुओं की उचित सूचना नहीं मिलती, जिन्हें वे खरीदना या बेचना चाहते हैं। अत: एक वस्तु को खरीदने या बेचने में जोखिम को कम करने के लिए पूर्ण सूचना आवश्यक होती है।

अपूर्ण सूचना के कारण उपभोक्ता उपभोग तथा सन्तुष्टि के स्तर को अनुकूलतम बनाने में असफल रहते हैं। इसी तरह, उत्पादक भी उत्पादन का अनुकूलतम-मिश्रण (Optimum-mix) प्राप्त करने में असफल रहते हैं जब वे साधन आगतों की उपलब्ध विविधता तथा उनकी कीमत के बारे में बेखबर रहते हैं।

सूचना की अपूर्णता अथवा विषमता दो मूल समस्याओं का कारण बनती है—

1. प्रतिकूल चयन की समस्या तथा
2. नैतिक जोखिम की समस्या।

प्रतिकूल चयन (Adverse Selection)

प्रतिकूल चयन की समस्या तब उत्पन्न होती है जब विनिमय सम्बन्धी गतिविधि के सम्बन्ध में एक पक्ष को दूसरे पक्ष की अपेक्षा अधिक सूचना प्राप्त होती है। अन्य शब्दों में, प्रतिकूल चयन की समस्या तब घटती है जब एक क्रेता/विक्रेता किसी वस्तु अथवा सेवा का विनिमय किसी अन्य पक्ष के साथ वस्तु अथवा सेवा के बारे में अधूरी अथवा त्रुटिपूर्ण जानकारी के आधार पर करता है। प्रतिकूल चयन का उपयुक्त उदाहरण श्रम बाजार में मिलता है, जब श्रमिकों को काम पर लगाया जाता है। भावी कर्मचारियों के बारे में अपर्याप्त सूचना के कारण, नियोजक प्रतिकूल चयन कर सकता है। पुरानी कारों का बाजार सम्भावित प्रतिकूल चयन का एक अन्य उदाहरण है। पुरानी कार के सम्बन्ध में त्रुटिपूर्ण सूचना के कारण, क्रेता एक ऐसी कार खरीद लेता है जिसे वह कभी भी न खरीदता यदि उसे कार के बारे में पूर्ण सूचना प्राप्त हो जाती। बीमा बाजार प्रतिकूल चयन का एक अन्य उदाहरण है। जब बीमा कम्पनी, होने वाली घटना की सम्भाव्यता के बारे में ग्राहक से कम जानती है तो प्रतिकूल चयन उत्पन्न होता है। व्यक्तिगत स्वास्थ्य बीमा बाजार में व्यक्ति अपने स्वास्थ्य के बारे में, जितना बीमा कम्पनी उसका बीमा करते समय मेडिकल परीक्षण से जान सकती है, उससे अधिक जानता है। अत: अपने मौजूदा रोगों को छिपाकर कुछ लोग उच्च मूल्य वाली मेडिकल बीमा पालिसियां खरीद लेते हैं। स्पष्टत: इस कारण मेडिकल दावों की संख्या बहुत अधिक बढ़ जाती है। इसके उत्तर में बीमा कम्पनियाँ बीमे की किस्त बढ़ा देती हैं, जिसका मौद्रिक भार ईमानदार पालिसीधारक पर पड़ता है। प्रतिकूल चयन की समस्या बीमा कम्पनी को दिवालिया बना सकती है क्योंकि इसे अस्वस्थ व्यक्तियों को उनके स्वास्थ्य खर्चे के लिए कुल बीमा प्रीमियम से अधिक भुगतान करना होगा। यह बीमा कम्पनी को बीमा की दर इतनी ऊंची रखने के लिए बाध्य कर देता है कि अस्वस्थ्य लोग भी बीमा करवाना बन्द कर देते हैं, जब वे पाते हैं कि किसी बीमारी के लिए व्यक्तिगत भुगतान, बीमा प्रीमियम से कम है।

प्रतिकूल चयन की समस्या को हल करने हेतु बीमा कम्पनियाँ, विभिन्न आयु, समूहों तथा व्यवसायों के लिए प्रत्येक समूह में जोखिम की प्रकृति पर आधारित प्रीमियम लेती हैं।

नैतिक जोखिम (Moral Hazard)

नैतिक जोखिम की समस्या उस समय उत्पन्न होती है जब अनुबन्ध (Contract) का एक पक्ष अपने व्यवहार की लागत को दूसरे पक्ष पर डाल देता है। दूसरे पक्ष के अप्रत्याशित व्यवहार के सम्बन्ध में, सूचना के अभाव के कारण एक पक्ष को कष्ट उठाना पड़ता है। अन्य शब्दों में, नैतिक जोखिम की समस्या तब उत्पन्न होती है जब एक व्यक्ति, जिसका बीमारी, आग या कार दुर्घटना के लिए बीमा हुआ है, ऐसा व्यवहार करता है जिससे उस घटना के घटित होने की सम्भाव्यता उत्पन्न हो। ऐसे मामले में नुकसान, व्यक्ति से बीमा कम्पनी को स्थानान्तरित हो जाता है, जिसे बढ़े हुए दावों को सहन करना पड़ता है। नैतिक जोखिम तब होता है जब एक व्यक्ति अपनी कार अधिक लापरवाही से चलाता है या इसे चोरी से बचाने के लिए ताला लगाने में लापरवाही करता है जिससे दुर्घटना अथवा चोरी की सम्भाव्यता बढ़ जाए। इसी प्रकार, मकान मालिक या फर्म अग्नि बीमा के साथ अग्निशामक यंत्र नहीं लगाती, जिससे आग लगने की सम्भाव्यता बढ़ जाती है। स्वास्थ्य के लिए बीमित व्यक्ति निरन्तर धूम्रपान करता है तथा इस प्रकार बीमार पड़ने की सम्भाव्यता बढ़ा लेता है। समस्त अन्य समान मामलों में, पालिसीधारक का व्यवहार परिवर्तित हो जाता है। इस परिवर्तित व्यवहार का सही अंदाजा पालिसी के समझौते के समय नहीं लगाया जा सकता।

प्र.3. सार्वजनिक वस्तुओं के अप्रभावी प्रावधान से क्या अभिप्राय है? उदाहरण सहित समझाइए।

What do you mean by ineffective provision of public goods? Explain with example.

उत्तर मान लीजिए, एक पार्क हमारे पास एक सार्वजनिक वस्तु के रूप में हो लेकिन हम लोगों को इसके उपयोग से रोकना चाहते हैं। यह ध्यान रहे कि इसमें किसी व्यक्ति को सार्वजनिक वस्तु का प्रयोग करने देने के लिए अतिरिक्त लागत शामिल नहीं है। यदि उन्हें ऐसा करने के लिए मूल्य वसूलने का प्रयत्न किया जाता है और मूल्य उससे ऊपर निर्धारित किया जाता है जो न्यूनतम पार्क-पसन्द व्यक्ति के योग्य हो, तब हम एक अप्रभावी आय पर बात समाप्त करते हैं। कोई भी मूल्य जो किसी आगन्तुक के बहिष्करण में फलित होता हो, बहुत अधिक होगा क्योंकि पार्क से सभी लोग लाभ उठाते हैं। चूँकि हम प्रवेश-शुल्क नहीं लगा सकते हैं और इसलिए हमें इसके लिए किसी प्रकार संसाधन जुटाने पड़ते हैं जिससे इसके प्रयोग से लोग निराश न हों। इसके लिए हम भिन्न-भिन्न लोगों से भिन्न-भिन्न प्रकार के मूल्य वसूल सकते हैं, इसके लिए जरूरी होगा कि सबसे पहले हम कोई मूल्य-निर्धारण योजना बनाएँ जिससे लोग सही-सही बोध कर सकें कि पार्क उनके लिए कितना मूल्य रखता है। लोगों को यह अनुभव कराना अत्यन्त जटिल है कि कोई सार्वजनिक वस्तु का मूल्य उनके लिए क्या है।

अप्रतिद्वन्द्वी प्रकृति का सार्वजनिक वस्तु उपयोग की इन बातों से महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध—(1) प्रभावी संसाधन आवंटन में क्या-क्या है; जैसे—उपभोक्तागण जो सबसे अधिक चाहते हैं, उसको न्यूनतम लागत पर उत्पादित करने हेतु संसाधनों का आवंटन और

(2) प्रक्रिया जिससे उसकी व्यवस्था की जानी है। चित्र–1 में दर्शायी गई निजी वस्तुओं की व्यवस्था से तुलना करते समय इन निहितार्थों को जाना जा सकता है—

उपर्युक्त समस्या 1 के अन्वेषण के लिए, यह उपयोगी सिद्ध होगा कि निजी वस्तुओं हेतु सुपरिचित माँग तथा आपूर्ति आरेख की तुलना सार्वजनिक वस्तुओं के लिए एक सदृश व्यवस्था से की जाए, वे किसी काल्पनिक बाजार परिवेश में सदृश होते हैं। बाद में, जैसा कि हम वर्तमान में देखते हैं, वास्तविक है लेकिन यह इस पर भी दो अवस्थाओं के मध्य अनिवार्य अधिमान ज्ञात करने में उपयोगी सिद्ध होता है चित्र–1 का बायाँ पक्ष एक निजी वस्तु के लिए परम्परागत बाजार दर्शाता है। D_A और D_B, A और B के माँग वक्र हैं, जो अन्य वस्तुओं हेतु आय एवं मूल्यों के किसी प्रदत्त वितरण पर आधारित हैं। किसी दिए गए मूल्य पर A और B द्वारा क्रय की जाने वाली मात्राओं को जोड़कर कुल बाजार माँग वक्र D_{A+B} D_A और D_B के क्षैतिज योग से प्राप्त किया जाता है। SS आपूर्ति तालिका है तथा साम्यावस्था E पर निर्धारित की जाती है, जो बाजार माँग और आपूर्ति का परिच्छेद-बिन्दु है। मूल्य A द्वारा OF और B द्वारा OG के साथ OC और उत्पादन OH के समान होता है।

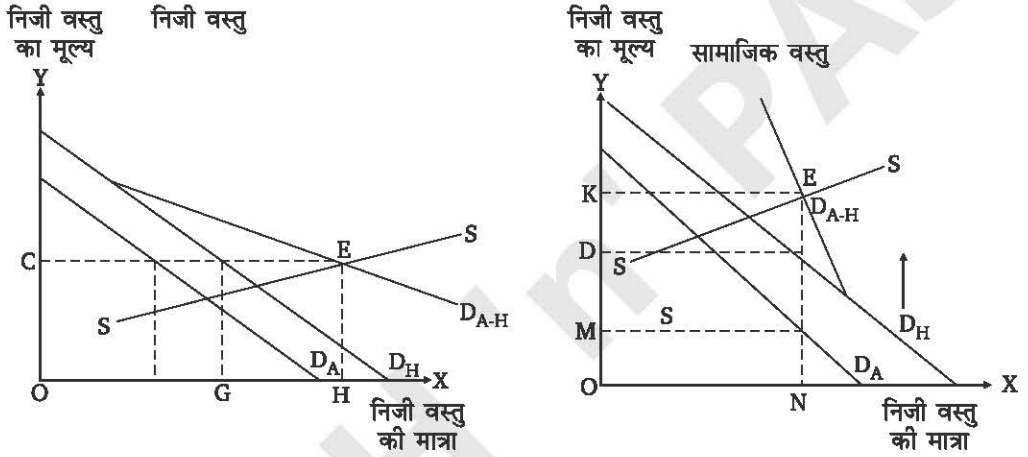

चित्र 1. सार्वजनिक वस्तुओं की माँग और आपूर्ति

दायीं ओर की आकृति एक सार्वजनिक वस्तु के तदनुरूप स्वरूप (pattern) को प्रस्तुत करती है। इस उद्देश्य से हम मानकर चलते हैं कि उपभोक्तागण सार्वजनिक वस्तु—माना, मौसम का पूर्वानुमान सम्बन्धी अपने सीमान्त मूल्यांकनों को उजागर करने के इच्छुक होते हैं। यह समझा जाता है कि दैनिक रिपोर्ट निःशुल्क उपलब्ध होंगी। पूर्व की तरह D_A एवं D_B क्रमशः A और B के माँग वक्र हैं, जो अन्य वस्तुओं के लिए आयों तथा मूल्यों की उन्हीं शर्तों के अधीन होते हैं। चूँकि यह मान लेना अयथार्थपरक होगा कि उपभोक्तागण अपने अधिमान स्वेच्छा से बताते हैं, ऐसे वक्रों को 'कूट-माँग वक्र' कहा जाता है। लेकिन तर्क के आशय से यह मान लीजिए कि उपभोक्ता अधिमान प्रकट हैं। निजी-वस्तु उदाहरण से अति महत्त्वपूर्ण अधिमान तब उस बाजार माँग वक्र में प्रकट होते हैं। D_{A+B} उन मूल्यों का योग प्रस्तुत करते हैं। D_{A+B} के साथ D_A तथा D_B के ऊर्ध्वाधर योग से प्राप्त किया जाता है जो A एवं B किसी भी दी गई मात्रा के लिए चुकाने के लिए तैयार हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि दोनों समान मात्रा का उपभोग करते हैं और प्रत्येक से अपेक्षा की जाती है कि वह सीमान्त इकाई सम्बन्धी अपने सही मूल्यांकन के समान ही मूल्य प्रस्तुत करें।

सेवा लागत को अधिव्याप्त करने के लिए उपलब्ध मूल्य प्रत्येक द्वारा चुकाए गए मूल्यों के योग के बराबर होता है। SS पुनः आपूर्ति तालिका है, जो सार्वजनिक वस्तु के विभिन्न उत्पादनों हेतु सीमान्त लागत (जिसकी वसूली A और B से मिलाकर की जानी है) दर्शाती है। निजी वस्तु उदाहरण में सन्तुलन उत्पादन OH के अनुरूप उत्पादन का स्तर अब ON के बराबर है, जो कि A और B दोनों द्वारा उपयुक्त मात्रा है। संयुक्त मूल्य OK के बराबर है लेकिन A द्वारा चुकाया मूल्य OM है जबकि B द्वारा चुकाया मूल्य OL है जहाँ $OM + OL = OK$ है।

यदि हम निजी वस्तु के उदाहरण की ओर वापस लौटते हैं तो देखते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के माँग वक्र के अधीन ऊर्ध्वाधर (vertical) दूरी सीमान्त लाभ दर्शाती है जो अपने उपभोग से अवकलित होती है। साम्यावस्था E पर OF का उपभोग करने में A द्वारा अवकलित सीमान्त लाभ तथा OG का उपभोग करने में B द्वारा अवकलित सीमान्त लाभ सीमान्त लागत HE के समान होता है। यह एक प्रभावी समाधान है क्योंकि सीमान्त लाभ प्रत्येक उपभोक्ता हेतु सीमान्त लाभ के समान होता है। यदि उत्पादन में OH

आवश्यकता से कम होता है तो सीमान्त लाभ सीमान्त लागत से अधिक हो जाता है तथा लोग लागत अधिव्याप्त करने हेतु आवश्यकता से कहीं अधिक चुकाने को तैयार होंगे। विशुद्ध लाभ तब तक उत्पादन बढ़ाकर प्राप्त किए जाएँगे जब तक सीमान्त लाभ ऐसा करने की सीमान्त लागत से बढ़कर रहेगा एवं विशुद्ध लाभ इसलिए OH इकाइयों को उत्पादित दर को अधिकतम किया जाएगा, जिस बिन्दु पर सीमान्त लाभ सीमान्त लागत के समान होता है। कल्याण हानियाँ वहाँ दिखाई देंगी जहाँ सीमान्त लागत सीमान्त लाभों से दूर चली जाएगी एवं उत्पादन OH से परे चला जाएगा।

इस समाधान की तुलना अब सार्वजनिक वस्तुओं के समाधान से की जा सकती है जबकि व्यक्ति के माँग वक्र के अन्तर्गत ऊर्ध्वाधर दूरी पुन: प्राप्त सीमान्त लाभ प्रस्तुत करती है, किसी भी प्रदत्त आपूर्ति द्वारा उत्पन्न सीमान्त लाभ ऊर्ध्वाधर योग से प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार, साम्यावस्था बिन्दु E अब सीमान्त लाभों की कुल राशि एवं सार्वजनिक वस्तु की सीमान्त लागत के मध्य समानता प्रस्तुत करता है। यदि उत्पादन में ON आवश्यकता से कम है तो इसे बढ़ाना लाभकर रहेगा क्योंकि सीमान्त लाभों की राशि लागत से अधिक है। चूँकि सीमान्त लागतें कुल सीमान्त लाभों से कहीं अधिक हैं अत: इसके विपरीत किसी उत्पादन में ON की अधिकता होने का अर्थ कल्याण हानियाँ होगा।

उपर्युक्त दो उदाहरण वैसे तो एक जैसे हैं लेकिन इनमें महत्त्वपूर्ण भेद है। निजी वस्तु के लिए, कुशलता (efficiency) प्रभाव सीमान्त लागत वाले प्रत्येक व्यक्ति द्वारा प्राप्त सीमान्त लाभ की समानता की अपेक्षा करती है। दूसरी ओर, सार्वजनिक वस्तु के उदाहरण में, दो उपभोक्ताओं द्वारा प्राप्त सीमान्त लाभ भिन्न होते हैं एवं वह सीमान्त लाभों (या प्रतिस्थापन की सीमान्त दरों) का योग होता है जो सीमान्त लागत के समान होना चाहिए।

पिछले पृष्ठ पर दिया गया चित्र-1 यह भी दर्शाता है कि समान मूल्य-निर्धारण का अनुप्रयोग जहाँ प्रत्येक उपभोक्ता द्वारा मूल्य व्यक्ति विशेष के सीमान्त लाभ के समान होता है, सार्वजनिक एवं निजी वस्तुओं हेत भिन्न-भिन्न परिणाम देता है। निजी-वस्तु उदाहरण में A और B एक ही मूल्य चुकाते हैं लेकिन भिन्न-भिन्न मात्राएँ खरीदते हैं जबकि सार्वजनिक वस्तु उदाहरण में, वे समान मात्रा खरीदते हैं लेकिन भिन्न-भिन्न मूल्य चुकाते हैं। फिर भी, दोनों उदाहरणों में समान मूल्य-निर्धारण नियम लागू होता है। प्रत्येक उपभोक्ता खरीदी गई वस्तुओं की इकाइयों के लिए एक ही मूल्य चुकाता है जो क्रेता द्वारा प्राप्त किए गए सीमान्त लाभ के मूल्य के समान होता है।

प्र.4. माँग परिवर्तन होने पर बाजार समन्वय की स्थिति विस्तार से समझाइए।

Explain in detail market coordination on changes in demand.

उत्तर यह तो हम सभी जानते हैं कि एक बाजार में किसी वस्तु का केवल एक ही उपभोक्ता नहीं होता अपितु अनेक उपभोक्ता होते हैं। एक वस्तु की बाजार माँग अनुसूची और माँग वक्र पर दर्शायी जाती है। वे वस्तु की विभिन्न कीमतों पर सभी उपभोक्ताओं द्वारा माँगी गई विभिन्न मात्राओं के कुल योग प्रस्तुत करते हैं। मान लीजिए कि एक बाजार में A, B तथा C तीन व्यक्ति हैं जो वस्तु को खरीदते हैं। वस्तु की माँग अनुसूची को निम्नांकित तालिका में व्यक्त किया गया है।

तालिका : बाजार माँग अनुसूची

कीमत (₹)	माँगी गई मात्रा			कुल माँग
	A	B	C	
(1)	(2)	+ (3)	+ (4)	= (5)
6	10	20	40	70
5	20	40	60	120
4	30	60	80	170
3	40	80	100	220
2	60	100	120	280
1	80	120	160	360

उपर्युक्त तालिका का स्तम्भ (5) विभिन्न कीमतों पर वस्तु की बाजार माँग को दर्शाता है। यह (2), (3) और (4) स्तम्भों का योग करने से तीनों उपभोक्ताओं की कुल माँग को दर्शाता है। (1) तथा (5) स्तम्भों के मध्य सम्बन्ध बाजार माँग अनुसूची को व्यक्त करते हैं। जब कीमत बहुत ऊँची ₹ 6 होती है तो माँग 70 किग्रा है। जब कीमत गिरती है तो माँग बढ़ती है। जब कीमत न्यूनतम ₹ 1 है तो बाजार माँग 360 किग्रा है।

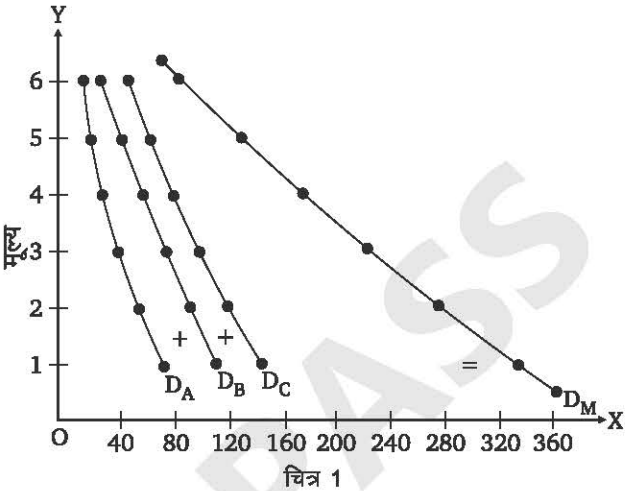

चित्र 1

उपरोक्त तालिका से हम चित्र-1 में बाजार माँग वक्र D_M खींचते हैं जो सभी व्यक्तिगत माँग वक्रों का समानान्तर योग है—$D_M = D_A + D_B + D_C$ एक वस्तु की बाजार माँग सभी घटकों पर निर्भर करती है जो एक व्यक्ति की माँग को निर्धारित करते हैं।

परन्तु बाजार माँग वक्र बनाने का अपेक्षाकृत अच्छा तरीका यह है कि व्यक्ति माँग वक्रों का पार्श्व-योग कर दिया जाए। इस अवस्था में, निश्चित कीमत पर उपभोक्ताओं की माँग की विभिन्न मात्राओं को प्रत्येक व्यक्तिगत माँग वक्र द्वारा दिखाया जाता है और फिर उनका पार्श्व-योग कर देते हैं, जैसा कि चित्र-2 में दर्शाया गया है।

मान लीजिए बाजार में A, B, C तीन व्यक्ति हैं। वे OP कीमत पर वस्तु OA, OB, OC मात्राएँ खरीदते हैं जिन्हें क्रमशः चित्र A, B, C में दिखाया गया है। बाजार में OQ मात्रा खरीदी जाएगी जो मात्रा OA, OB, OC मात्राओं को जोड़ने से बनती है। व्यक्तिगत माँग वक्र D_A, D_B, D_C के पार्श्व योग से बाजार माँग वक्र D_A, D_B, D_C के पार्श्व योग से बाजार माँग वक्र D_M प्राप्त होता है।

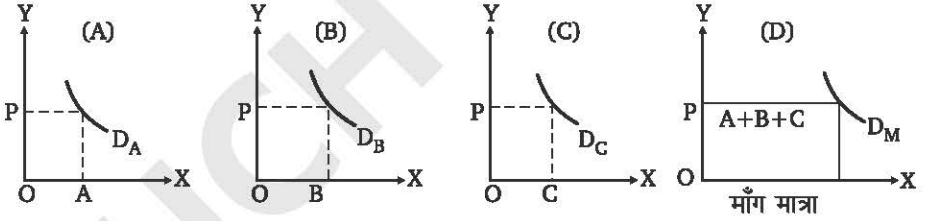

चित्र 2

माँग में परिवर्तन (Changes in Demand)

ध्यान देने योग्य है कि बाजार में कसी वस्तु की माँग सदैव स्थिर नहीं रहती बल्कि परिवर्तित होती रहती है। एक व्यक्ति का माँग वक्र इस मान्यता पर खींचा जाता है कि उसकी माँग को प्रभावित करने वाले घटक जैसे अन्य वस्तुओं की कीमतें, आय एवं रुचियाँ स्थिर रहते हैं। यदि उसकी माँग को प्रभावित करने वाला कोई एक घटक परिवर्तित होता है, जबकि अन्य स्थिर रहें तो उसके माँग वक्र पर क्या प्रभाव पड़ता है? एक घटक के परिवर्तित होने से उसका माँग वक्र खिसक जाता है। मान लीजिए जब एक व्यक्ति की आय बढ़ती है, अन्य घटक स्थिर रहते हुए, उसका एक वस्तु के लिए माँग वक्र दायीं ओर ऊपर को खिसक जाएगा। वह दी हुई कीमत पर वस्तु की अधिक मात्रा खरीदेगा जैसा कि नीचे दिए चित्र-3 में दर्शाया गया है। उसकी आय बढ़ने से पहले वह D_1D_1 माँग वक्र पर OQ_1 मात्रा OP कीमत पर खरीद रहा है। उसकी आय बढ़ने से उसका माँग वक्र D_1D_1 दायीं ओर खिसक कर D_2D_2 हो जाता है। अब वह उसी कीमत OP पर अधिक मात्रा OQ_2 खरीदता है जब उपभोक्ता दी हुई कीमत पर वस्तु की अधिक मात्रा खरीदता है तो उसे माँग में वृद्धि कहते हैं। इसके विपरीत, यदि उसकी आय कम होती है तो उसका माँग वक्र बायीं ओर नीचे की ओर खिसक जाएगा। अब वह उसी कीमत पर वस्तु की कम मात्रा खरीदेगा, जैसा कि नीचे दिए चित्र-4 में दर्शाया गया है। आय कम होने से पहले उपभोक्ता D_1D_1 माँग वक्र पर है जहाँ वह OP कीमत पर OQ_1 मात्रा खरीद रहा है। जब उसकी आय कम होती है तो उसका माँग वक्र D_1D_1 बायीं ओर D_2D_2 पर खिसक जाता है। अब वह OP कीमत पर कम मात्रा OQ_2 खरीदता है। जब उपभोक्ता दी हुई कीमत पर वस्तु की कम मात्रा खरीदता है तो इसे माँग में कमी कहते हैं।

अत: स्पष्ट है कि माँग वक्र स्थिर नहीं रहते। वे कई कारणों से बायीं ओर को या दायीं ओर को स्थान बदलते रहते हैं। इसके कारण हैं—उपभोक्ताओं की रुचियों,आदतों और रीति-रिवाजों में परिवर्तन; आय-व्यय में परिवर्तन; स्थानापन्नों और पूरक वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन; भविष्य में कीमतों और आय में परिवर्तन; की आशा और जनसंख्या की आयु-रचना में परिवर्तन आदि।

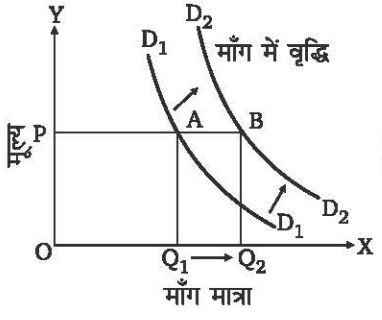

चित्र 3

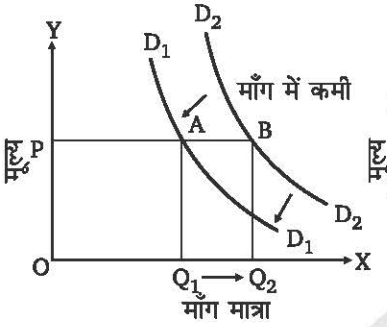

चित्र 4

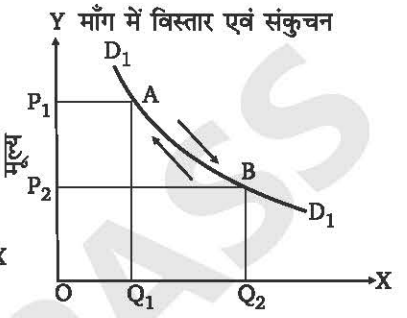

चित्र 5

जब वस्तु की माँगी गई मात्रा में परिवर्तन वस्तु की अपनी कीमत में परिवर्तन से होता है जो माँग वक्र के साथ-साथ गति होती है। इसे ऊपर दिए चित्र-5 में व्यक्त किया गया है जो यह दिखाता है कि जब कीमत OP_1 है तो माँगी गई मात्रा OQ_1 है। वस्तु की कीमत गिर कर OP_2 होने से, माँगी गई मात्रा बढ़कर OQ_2 हो जाती है। इस प्रकार, कीमत कम होने से उसी माँग वक्र D_1D_1 के साथ-साथ बिन्दु A से B पर नीचे की ओर गति हुई है, इसे माँग में विस्तार कहते हैं। इसके विपरीत, यदि हम B को मूल कीमत-माँग बिन्दु मान लें तो कीमत में OP_2 से OP_1 बढ़ोतरी से माँगी गई मात्रा OQ_2 से गिरकर OQ_1 हो जाती है। उसी माँग वक्र D_1D_1 के साथ-साथ उपभोक्ता ऊपर की ओर बिन्दु B से A की ओर गति करता है। इसे माँग में संकुचन (contraction) कहते हैं।

प्र.5. बाजार संयंत्र का विस्तृत मूल्यांकन कीजिए।

Do a detailed evaluation of market mechanism.

उत्तर

बाजार संयंत्र का मूल्यांकन
(Evaluation of Market Mechanism)

बाजार संयंत्र संसाधन आबंटन की एक कुशल व्यवस्था को प्रस्तुत करता है अथवा नहीं।

कुशल परिणाम की प्राप्ति के लिए क्या सरकार की सहायता की आवश्यकता होती है? बाजार की कुशलता की प्राप्ति हेतु सरकार तथा सरकार की नीतियों का होना आवश्यक है अथवा क्या वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन तथा वितरण सम्बन्धी निर्णय बाजार शक्तियों की स्वतन्त्र गतिविधियों पर छोड़ देना चाहिए? यह ऐसी कुछ जटिल समस्याएँ है जिनका उत्तर देना सहज नहीं है।

एक पूर्ण प्रतियोगी बाजार व्यवस्था में बाजार शक्तियों की स्वतन्त्र गतिविधियां क्रियाशील होती हैं जिससे वह संसाधनों के कुशल आबंटन का सर्वोत्तम परिणाम प्रस्तुत करती है। एक पूर्ण प्रतियोगी प्रणाली उन वस्तुओं के उत्पादन को सरल बनाती है जो अर्थव्यवस्था के व्यक्तियों तथा परिवारों की रुचियों तथा अधिमानों के अनुरूप होती है। इन वस्तुओं का उत्पादन भी यथा सम्भव न्यूनतम लागत पर किया जाता है, ताकि संसाधनों का उपयोग तथा उत्पादन का वितरण अनुकूलतम हो। तद्नुसार सरकारी हस्तक्षेप की कोई सम्भावना नहीं होती। परन्तु पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यताएँ ऐसी कठोर मान्यताओं का समूह है जिन्हें व्यावहारिक जगत में पूरा करना कठिन है। उदाहरण के लिए, क्या क्रेताओं तथा विक्रेताओं को बाजार में उपलब्ध अनेक वस्तुओं की विशिष्टताओं का पूरा ज्ञान रहता है? क्या क्रेता जीवन बीमा या स्वास्थ्य के देखभाल सम्बन्धी बीमे की पॉलिसियों, जिन्हें बाजार में प्रस्तुत किया जाता है, के सभी पहलुओं को वास्तव में समझते हैं? सम्भवत: नहीं! उनसे कैसे सही चुनाव की आशा की जा सकती है जबकि बाजार से सम्बन्धित सूचना या तो पूर्ण नहीं होती अथवा त्रुटिपूर्ण होती है? समस्याएँ तब भी उत्पन्न होती हैं जब हम अपने अध्ययन के क्षेत्र में 'सार्वजनिक वस्तुओं को शामिल कर लेते हैं। ये वस्तुएँ प्रतिद्वंदी या गैर-प्रतिद्वंदी हो सकती हैं किन्तु निश्चित रूप से ये गैर-वर्जित योग्य होती हैं। ऐसी वस्तुओं के उत्पादन से सम्बन्धित मुफ्तखोरों या **नि:शुल्क सवार** (Free-riders) की समस्या उत्पन्न होती है। इस नि:शुल्क घुड़सवार की समस्या या सार्वजनिक वस्तुओं से लाभान्वित होने के लिए भुगतान न करने वालों को रोकने में उत्पादकों की असमर्थता के कारण एक लाभ अधिकतम करने वाली फर्म या तो

सार्वजनिक वस्तु का उत्पादन ही नहीं करेगी या कम मात्रा में उत्पादन करेगी। कीमत संयंत्र (price-mechanism) ऐसी वस्तुओं के उत्पादन की अनुमति ही क्यों देता है या उस सीमा तक जिस पर समाज को इनकी वास्तविक आवश्यकता होती है? बाह्यताओं की उपस्थिति मामले को और भी अधिक जटिल बना देती है, जब तक बाह्यताओं के समाधान की कोई व्यवस्था नहीं की जाती तथा उससे बाहरी लागत तथा लाभ का लेखा-जोखा नहीं किया जाता, कीमत प्रणाली स्वत: हमें उत्पादन का कुशल मिश्रण प्रस्तुत नहीं करती, जो कि अनुकूलतमता की यह मूल शर्त पूरी करे कि प्रत्येक वस्तु का उत्पादन सीमान्त लागत कीमत निर्धारण के सिद्धान्त के अनुसार किया जाना चाहिए।

अपूर्ण बाजार (वे बाजार जो सीमान्त लागत कीमत निर्धारण का पालन नहीं करते) तथा कुछ वस्तुओं के सन्दर्भ में बाजारों की अनुपस्थिति (जैसे खराब मौसम का बीमा) बाजार अर्थव्यवस्थाओं की कुछ ऐसी कमियां हैं जो उनकी कुशलता को हानि पहुंचाती हैं। तद्नुरूप, सामान्य सन्तुलन के परिप्रेक्ष्य में बाजार संचालित अर्थव्यवस्थाएँ संसाधनों के आवंटन सम्बन्धी समस्याओं केवल उप-अनुकूलतम (Sub-optimal) समाधान प्रस्तुत करती है।

अब यह विश्लेषण करना उचित होगा कि क्या बाजार अर्थव्यवस्थाओं की कमियां अथवा दोष सरकार की मौजूदगी तथा सरकार की नीतियों को उचित सिद्ध करती है? कुछ सीमा तक इसे उचित ठहराया जा सकता है बशर्ते कि सरकारी नीतियां अनियमित बाजार अर्थव्यवस्थाओं की कमियों पर अपना ध्यान केन्द्रित करें। उस सीमा तक सरकार की भूमिका को उचित माना जाता है जिस सीमा तक अर्थव्यवस्था में सभी क्रेताओं तथा विक्रेताओं को वस्तुओं तथा सेवाओं सम्बन्धी प्रस्तुत की गई सूचना सन्तुलित होती है। सरकार की भूमिका को तब भी उचित माना जाता है जब वह बाह्यताओं का आन्तरीकरण करने के लिए किसी संयंत्र का अन्वेषण करती है। सरकार की भूमिका को तब भी सराहा जाता है जब वह बाजार सत्ता तथा बाजार नियन्त्रण को रोकने का कार्य करती है तथा यह सुनिश्चित करती है कि जहाँ तक सम्भव हो सके सीमान्त लागत कीमत निर्धारण सिद्धान्त का पालन किया जाए।

परन्तु इसकी सम्भावना बनी रहती है कि ऐसा न हो कि अत्यधिक सरकारी हस्तक्षेप से अर्थव्यवस्था में कुशलता के स्थान पर अकुशलता को ही बढ़ावा मिल जाए। इस आशंका के निराकरण के समर्थन में अग्रलिखित उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है—

गैर-प्रतियोगी बाजार व्यवहार सार्वजनिक वस्तुओं, बाह्यताओं तथा अपूर्ण सूचना की स्थिति में, सरकार को कुशलता की प्राप्ति के लिए बाजार प्रणाली में हस्तक्षेप करना चाहिए।

प्राय: सरकार न्यायसंगत, निष्पक्षता तथा समता के नाम पर उच्चतम कीमत (Ceiling price) तथा न्यूनतम कीमत (Floor price) का निर्धारण करती है। उच्चतम, कीमत का उदाहरण किराया नियन्त्रण (Rent control) है। कीमत को सन्तुलन कीमत से नीचे रखकर पूर्ति की मात्रा को घटाया तथा माँग की मात्रा को बढ़ाया जाता है। परिणाम मृत प्राय हानि (Dead Weight Loss) या शुद्ध हानि का प्राप्त होना है। न्यूनतम कीमत का उदाहरण न्यूनतम मजदूरी (Minimum wage) है जिससे श्रम बाजार में मजदूरी की दर सन्तुलन दर से ऊपर हो जाती है। इससे आगत बाजार में विकृति (distoration) उत्पन्न हो जाती है। यह विकृति उत्पादन बाजार में भी उत्पन्न हो जाती है। जब सरकार द्वारा ऐसी नीतियां लागू की जाती है तब संसाधनों का आबंटन पेरेटो कुशल (Pareto Efficient) कदापि नहीं हो सकता। इस तरह स्पष्ट है कि सरकार अकुशलता को दूर करने के स्थान पर इसे बढ़ाती है अथवा उत्पन्न करती है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि बाजार अर्थव्यवस्थाओं को सरकारी नीतियों का समर्थन प्राप्त होना जरूरी है, परन्तु सरकार को इस दिशा में सतर्कता से आगे बढ़ना चाहिए ताकि बाजार अर्थव्यवस्थाओं की कुशलता पर कोई विपरीत प्रभाव न पड़े। सरकारी हस्तक्षेप को तभी उचित ठहराया जा सकता है यदि उसके द्वारा बाजार अर्थव्यवस्थाओं की अनियमितताओं को प्रभावशाली ढंग से समाप्त किया जाता है।

❑

UNIT-VII

आय वितरण एवं साधन कीमत

Income Distribution and Factor Pricing

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. उत्पादन के अन्तर्गत श्रम का क्या महत्त्व है?

What is the importance of labour under production?

उत्तर श्रम उत्पादन का प्रमुख एवं सक्रिय उपादान कहा जाता है। श्रमिक या व्यक्ति के वे सभी शारीरिक तथा मानसिक प्रयत्न जो धनोपार्जन के लिए किए जाते हैं, श्रम माने जाते हैं; जैसे—कच्चा माल, मशीनें, उपकरण। इनके बिना उत्पादन सम्भव नहीं है।

प्र.2. उत्पादन के उपादान तथा उनके स्वामियों के नामों की सूची बनाइए।

Write the names of factors of production and their owners.

उत्तर

उत्पादन के उपादान	उपादान के स्वामी
भूमि	भूमिपति
श्रम	श्रमिक
पूँजी	पूँजीपति
संगठन या प्रबन्ध	संगठक या प्रबन्धक
उद्यम या साहस	उद्यमी या साहसी।

प्र.3. विशिष्ट एवं अविशिष्ट उपादान से आप क्या समझते हैं?

What do you understand by specific and non-specific factors?

उत्तर उत्पादन का विशिष्ट साधन भूमि होता है। क्योंकि इसका प्रयोग एक या कुछ विशिष्ट कार्यों के लिए ही किया जा सकता है, जबकि श्रम तथा पूँजी अविशिष्ट साधन हैं क्योंकि इनका प्रयोग विभिन्न कार्यों में किया जा सकता है। श्रीमती जॉन रॉबिन्सन की मान्यता है कि विशिष्ट साधन अविशिष्ट और अविशिष्ट साधन विशिष्ट हो सकते हैं।

प्र.4. साधन बाजार से आपका क्या तात्पर्य है?

What do you mean by factor market?

उत्तर ऐसे बाजार जहाँ भूमि, श्रम एवं पूँजी जैसे उत्पत्ति के साधनों का क्रय-विक्रय किया जाता है, साधन बाजार कहलाते हैं।

प्र.5. सामूहिक सौदेबाजी से आप क्या समझते हैं?

What do you mean by collective bargaining?

उत्तर सामूहिक सौदेबाजी उस सौदेबाजी को कहते हैं जिसमें कर्मचारियों की एक संगठित संस्था एवं एक मालिक या मालिकों की एक समिति जो प्राय: उचित अधिकार प्राप्त अभिकर्त्ताओं के माध्यम से कार्य करती है, के मध्य सौदेबाजी के द्वारा सेवायोजन की शर्तों को निश्चित करने का एक साधन है।

प्र.6. मानवीय उपादान एवं प्राकृतिक उपादान से क्या अभिप्राय है?

What do you mean by human factors and natural factors?

उत्तर मानवीय उपादानों के तहत वे सभी उपादान आते हैं, जो मानवीय प्रयत्नों द्वारा निर्मित होते हैं; जैसे—श्रम, संगठन अथवा उद्यम। प्राकृतिक या बाह्य उपादान के अन्तर्गत उन कारकों अथवा तथ्यों को सम्मिलित किया जाता है, जो प्रकृति प्रदत्त होते हैं; जैसे—भूमि अथवा जो बाह्य क्षेत्रों से प्राप्त होते हैं; जैसे—पूँजी। कहीं-कहीं पूँजी को मानवीय प्रयत्नों का परिणाम भी माना जाता है।

TOUCH 'n PASS

प्र.7. वास्तविक मजदूरी को कैसे ज्ञात किया जा सकता है?
How can you find out real wages?

उत्तर वास्तविक मजदूरी को ज्ञात करने का सूत्र है—वास्तविक मजदूरी $= \frac{\text{मौद्रिक मजदूरी}}{\text{सामान्य मूल्य स्तर}}$

प्र.8. लासाले द्वारा प्रतिपादित मजदूरी का सिद्धान्त लिखिए।
Write the theory of wages as propounded by Lassalle.

उत्तर लासाले द्वारा मजदूरी का जीवन-निर्वाह सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया।

प्र.9. मजदूरी के सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त क्या है?
What is the theory of marginal production of wages?

उत्तर श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता मजदूरी का निर्धारण करती है तथा यह श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता के समान होने की प्रवृत्ति रखती है।

प्र.10. पूर्ण रोजगार की स्थिति में मजदूरी निर्धारण में सन्तुलन की दशा कैसी होती है?
How is the equilibrium in wage determination in the condition of perfect employment?

उत्तर मजदूरी = सीमान्त आगम उत्पादकता = सीमान्त उत्पादकता का मूल्य।

प्र.11. जॉन रॉबिन्सन के कथनानुसार, श्रमिकों का शोषण कब होता है?
According to Joan Robinson, when are workers exploited?

उत्तर **जॉन रॉबिन्सन** के कथनानुसार, "जब वस्तु बाजार तथा श्रम बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति पायी जाती है तो श्रमिकों का शोषण होता है।"

प्र.12. किसी प्रसिद्ध अर्थशास्त्री द्वारा प्रतिपादित लगान की परिभाषा लिखिए।
Write the definition of rent propouned by a famous economist.

उत्तर प्रसिद्ध अर्थशास्त्री रिकार्डो के अनुसार, "लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो भूमिपति को भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों के प्रयोग के लिए दिया जाता है।"

प्र.13. आभास लगान किसे कहते हैं?
What is quasi rent?

उत्तर मौद्रिक लागत पर कुल आय के उस आधिक्य को आभास लगान कहते हैं जो न्यूनाधिक उस समय की माँग और पूर्ति के घटनावश सम्बन्धों से प्रभावित होता है। इसका सूत्र है—

आभास लगान = कुल आगम – कुल परिवर्तनशील लागत।

प्र.14. रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की कोई दो मुख्य विशेषताएँ लिखिए।
Write any two characteristics of Ricardo's Theory of Rent.

उत्तर रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की दो प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

1. लगान एक भेदात्मक बचत है।
2. यह अधिसीमान्त भूमि पर उत्पादन में सीमान्त भूमि की तुलना में अतिरेक है।

प्र.15. रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की कोई दो प्रमुख मान्यताएँ बताइए।
Write any two assumptions of Ricardo's Theory of Rent.

उत्तर रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की दो प्रमुख मान्यताएँ निम्न प्रकार हैं—

1. कृषि पर उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है।
2. लगान केवल भूमि को प्राप्त होता है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.16. लगान के आधुनिक सिद्धान्त तथा रिकार्डो के लगान सिद्धान्त में पाया जाने वाला कोई एक अन्तर लिखिए।

Write any one difference between Modern Theory of Rent and Ricardo's Theory of Rent.

उत्तर लगान का आधुनिक सिद्धान्त उत्पादन के सभी साधनों पर लागू होता है जबकि रिकार्डो का लगान सिद्धान्त केवल भूमि पर लागू होता है।

प्र.17. 'योग्यता का लगान' से क्या अभिप्राय है?

What do you understand by merit rent?

उत्तर कोई व्यक्ति अपनी दुर्लभ तथा प्राकृतिक योग्यता के कारण जो आय प्राप्त करता है, उसे योग्यता का लगान कहते हैं।

प्र.18. दुर्लभता लगान की धारणा किस मान्यता पर आधारित है?

On which belief is the concept of rarity rent based?

उत्तर दुर्लभता लगान इस मान्यता पर आधारित है कि भूमि एकरूप तथा सीमित है।

प्र.19. भेदात्मक लगान की तुलना में दुर्लभता का लगान अधिक श्रेष्ठ कैसे होता है?

How is rarity rent better than differential rent?

उत्तर दुर्लभता लगान इस तथ्य की भी व्याख्या करता है कि व्यावहारिक आर्थिक जगत में सीमान्त भूमि लगानहीन भूमि क्यों नहीं होती। इसलिए भेदात्मक लगान की तुलना में दुर्लभता का लगान अधिक श्रेष्ठ होता है।

प्र.20. मजदूरी निर्धारण की स्थिति में फर्म का दीर्घकालीन सन्तुलन किस बिन्दु पर निर्धारित होना चाहिए?

On which point should the long-run equilibrium of the firm be fixed in case of wage determination?

उत्तर मजदूरी निर्धारण की स्थिति में फर्म का दीर्घकालीन सन्तुलन उस बिन्दु पर निर्धारित होना चाहिए, जहाँ पर

$$MRP = ARP = AW = MW$$

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. साधन बाजार अथवा उत्पादन के प्रमुख उपादान कौन-से हैं? संक्षेप में समझाइए।

Which are the main factors of production? Explain in brief.

उत्तर साधन बाजार अथवा उत्पादन के प्रमुख उपादान निम्नलिखित हैं—

1. **भूमि**—उत्पादन का प्रमुख एवं प्रथम उपादान भूमि होती है। अर्थशास्त्र में भूमि का अर्थ केवल भूमि की ऊपरी सतह से न लेकर उसके ऊपर एवं उसके अन्दर विद्यमान प्रकृतिप्रदत्त पदार्थों से लिया जाता है; जैसे—पृथ्वी, पहाड़, मिट्टी, नदी, खनिज पदार्थ, वायु, प्रकाश, जल आदि।
2. **श्रम**—उत्पादन का दूसरा प्रमुख एवं सक्रिय उपादान श्रम कहलाता है। मनुष्य के वे सभी शारीरिक तथा मानसिक प्रयास जो धनोपार्जन के लिए किए जाते हैं, श्रम कहे जाते हैं; जैसे—कच्चा माल, मशीनें, उपकरण आदि। मनोरंजन के लिए किया गया श्रम, श्रम नहीं है।
3. **पूँजी**—साधारणत:, पूँजी से आशय रुपये-पैसे से लिया जाता है, लेकिन अर्थशास्त्र में पूँजी से आशय मानव-निर्मित उन सभी उत्पादन के साधनों से लिया जाता है जो और अधिक उत्पादन करने में सहायक होते हैं।
4. **संगठन अथवा प्रबन्ध**—संगठन एक ऐसा विशिष्ट प्रकार का श्रम है, जिसका कार्य उत्पादन के साधनों को एकत्रित करके उनमें उचित तालमेल बनाए रखना है। आधुनिक उत्पादन प्रणाली में संगठन को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।
5. **साहस अथवा उद्यम**—उत्पादन-कार्य में आने वाले समस्त जोखिमों और अनिश्चितताओं को वहन करने का कार्य साहस कहा जाता है। यह उत्पादन का अन्तिम एवं महत्त्वपूर्ण उपादान है, जिस पर कि प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन निर्भर करता है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.2. मजदूरी से आप क्या समझते हैं? मजदूरी की प्रमुख परिभाषाएँ लिखिए।

What do you understand by wage? Write its main definitions.

उत्तर कोई भी कार्य चाहे शारीरिक हो या मानसिक, यदि वह आंशिक रूप से या पूर्ण रूप से मौद्रिक भुगतान के लिया किया जाता है, तो उसे श्रम कहते हैं। श्रम के लिए श्रमिक को प्राप्त होने वाला पुरस्कार मजदूरी कहलाता है। मजदूरी शब्द का अर्थशास्त्र में व्यापक अर्थ होता है। इसमें प्रति घण्टा, प्रति दिन, प्रति सप्ताह, प्रति माह दिया जाने वाला भुगतान, डॉक्टर, वकील या अध्यापक की फीस, घर के नौकर को दिया जाने वाला भुगतान आदि शामिल होता है। मजदूरी देने के निम्नलिखित दो तरीके हैं—

1. **समयानुसार मजदूरी**—एक निश्चित समय के लिए काम करने के लिए श्रमिकों को जो भुगतान दिया जाता है; जैसे—प्रति घण्टा, प्रति दिन, प्रति सप्ताह या प्रति माह आदि।
2. **कार्यानुसार मजदूरी**—जब श्रमिक के कार्य के आकार या गुण के अनुसार मजदूरी दी जाती है तो उसे कार्यानुसार मजदूरी कहते हैं। उदाहरणार्थ—यदि एक कुर्सी बनाने के लिए बढ़ई को ₹ 150 दिये जायें तो वह कार्य मजदूरी (Piece Wages) कहलाती है; चाहे बढ़ई कुर्सी एक दिन में बनाये अथवा एक सप्ताह में, इससे मजदूरी का कोई सम्बन्ध नहीं होता।

परिभाषाएँ—

मजदूरी से सम्बन्धित निम्नलिखित अर्थशास्त्रियों की दी गई परिभाषाएँ उपयुक्त हैं—

1. **प्रो० मैकोनल** के अनुसार, "श्रम के उपयोग के लिए चुकायी गयी कीमत को मजदूरी या मजदूरी दर कहते हैं।"
2. **प्रो० बेन्हम** के अनुसार, "मजदूरी मुद्रा की उस राशि को कहा जाता है जो एक मालिक किसी श्रमिक को एक समझौते के अनुसार उसकी सेवाओं के लिए देता है।"

प्र.3. उत्पादन के उपादानों का सापेक्षिक महत्त्व क्या है? संक्षिप्त विवेचन कीजिए।

What is the comparative importance of factors of production? Write a brief explanation.

उत्तर अर्थशास्त्रियों के अनुसार उत्पादन के पाँच उपादान होते हैं, लेकिन यह कहना कठिन है कि इन उपादानों में किसका महत्त्व अधिक है। वास्तव में प्रत्येक उपादान अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

उत्पादन का एक अनिवार्य तथा आधारभूत उपादान भूमि होती है। इसके अन्तर्गत पृथ्वी की सतह, जंगल, नदी, पर्वत, खनिज पदार्थ आदि सभी आते हैं और ये सभी किसी भी देश के आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। इन प्राकृतिक साधनों के विदोहन के लिए पर्याप्त मात्रा में श्रम-शक्ति का होना आवश्यक है। **श्रम-शक्ति** का विवेकीकरण भी अत्यावश्यक है, अन्यथा उपलब्ध साधनों का उचित उपयोग नहीं हो सकेगा। वर्तमान में **पूँजी**, उद्योग-धन्धों की प्राण बन गई है। इसके अभाव में औद्योगिक विकास सम्भव नहीं है। **मार्शल** के शब्दों में "पूँजी सम्पूर्ण आर्थिक तन्त्र को जीवन प्रदान करती है।" इसके अभाव में आर्थिक विकास के साथ-साथ देश का औद्योगिक विकास भी अवरुद्ध हो जाता है। वर्तमानकाल में उत्पादन की विधि इतनी कठिन हो गई है कि उत्पादन के सभी साधनों को समायोजित करना एक समस्या बन गई है। **संगठन** इस कार्य को करता है। सभी प्रकार के उद्योगों में कुछ-न-कुछ जोखिम का अंश अवश्य विद्यमान रहता है। इसलिए हानि की जोखिम उठाने के लिए एक **उद्यमी** का होना अत्यावश्यक है।

संक्षिप्त रूप में कह सकते हैं कि धनोत्पादन में प्रत्येक उपादान आवश्यक होता है लेकिन यह कहना जटिल है कि कौन-सा उपादान अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस विषय में **प्रो० पेंसन** ने सत्य ही कहा है, "धनोत्पादन का प्रत्येक उपादान आवश्यक है, किन्तु भिन्न-भिन्न समय में और औद्योगिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं में इन साधनों का सापेक्षिक महत्त्व घटता-बढ़ता रहता है।"

प्र.4. प्रो० वीजर द्वारा किए गए उत्पत्ति के साधनों का वर्गीकरण संक्षेप में लिखिए।

Write the classification of factors of production given by Prof. Weiser in brief.

उत्तर प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **प्रो० वीजर** ने उत्पत्ति के सम्पूर्ण साधनों को दो वर्गों में वर्गीकृत किया है—पूर्णत: विशिष्ट साधन तथा पूर्णत: अविशिष्ट साधन। पूर्णत: विशिष्ट साधन वे साधन हैं, जिनको केवल एक प्रयोग में ही प्रयुक्त किया जा सकता है। इसके विपरीत, पूर्णत: अविशिष्ट साधन वे साधन हैं, जो विभिन्न प्रयोगों में प्रयुक्त किए जा सकते हैं।

इस सम्बन्ध में दो बातें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—

पहला, यह वर्गीकरण स्थायी न होकर अस्थायी है अर्थात् जो साधन आज विशिष्ट हैं, वे कल अविशिष्ट हो सकते हैं। उदाहरण के लिए—यदि किसी भूमि के टुकड़े पर आज गेहूँ बोया गया है तो यह विशिष्ट कहलाएगा, परन्तु यदि गेहूँ काटने के बाद उसे किसी अन्य प्रयोग में लाया जा सकता है तो वह अविशिष्ट हो जाएगा।

दूसरा, संसार में कोई साधन न तो पूर्ण रूप से विशिष्ट ही है और न पूर्ण रूप से अविशिष्ट। वास्तविकता तो यह है कि प्रत्येक साधन आंशिक रूप से विशिष्ट अथवा आंशिक रूप से अविशिष्ट होता है।

प्रो० वीजर के इसी वर्गीकरण के आधार पर आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने, जिनमें **श्रीमती जॉन रॉबिन्सन** तथा **प्रो० बोल्डिंग** प्रमुख हैं, लगान के आधुनिक दृष्टिकोण (सिद्धान्त) की व्याख्या की है।

प्र.5. दुर्लभता लगान किसे कहते हैं?

What is rarity rent?

उत्तर प्रो० स्टोनियर तथा हेग ने दुर्लभता लगान की व्याख्या करते हुए लिखा है, "दुर्लभता लगान भूमि की दुर्लभता तथा सीमितता के कारण उपलब्ध होता है। यह बात विशुद्ध दुर्लभता लगान की एकमात्र मुख्य विशेषता है। उत्पत्ति के अन्य साधनों की कीमतों में वृद्धि दीर्घकाल में प्राय: उनकी पूर्ति में भी वृद्धि करती है परन्तु लगान में होने वाली वृद्धि से भूमि की पूर्ति में वृद्धि होना सम्भव नहीं है अत: भूमि के उपयोग के लिए उच्च आय (High Income) दीर्घकाल में भी विद्यमान रह सकती है। दुर्लभता लगान हमारे मॉडल तथा वास्तविक जगत दोनों में इस तथ्य का परिणाम है कि भूमि की पूर्ति बेलोचदार है।" अर्थात् "दुर्लभता लगान भूमि के उपयोग के लिए दी गई वह कीमत है, जो इस कारण से दी जाती है कि भूमि की पूर्ति भूमि की माँग की तुलना में सीमित होती है।"

इस प्रकार दुर्लभता लगान यह स्वीकार करता है कि भूमि एकरूप तथा सीमित है। यदि भूमि असीमित मात्रा में उपलब्ध होती है तो भूमि के उपयोग के लिए कोई कीमत (भुगतान) देने का प्रश्न ही नहीं था। इस प्रकार भूमि की सीमितता अर्थात् उसकी पूर्ति का उसकी माँग से कम होना **दुर्लभता लगान** उत्पन्न होने का मौलिक तथा आधारभूत कारण है।

प्र.6. लगान किसे कहते हैं? यह कितने प्रकार का होता है?

What is rent? It is of how many types?

उत्तर डेविड रिकार्डो के शब्दों में, "लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो भू-स्वामी को भूमि की मौलिक तथा अविनाशी शक्तियों के प्रयोग के लिये दिया जाता है।" अर्थात् आय का वह भाग जो भूमिपतियों को उनकी भूमि के प्रयोग के बदले दिया जाता है, लगान कहलाता है।

मार्शल के शब्दों में, "भूमि तथा प्रकृति के अन्य नि:शुल्क उपहारों के स्वामित्व के फलस्वरूप जो आय प्राप्त होती है, वह लगान होती है।"

लगान के प्रकार (Types of Rent)

1. **कुल लगान**—सरल भाषा में लगान का अर्थ कुल लगान ही होता है, आर्थिक लगान नहीं होता। भूमि का प्रयोग उसी रूप में नहीं किया जाता जिस रूप में वह प्रकृति से प्राप्त होती है बल्कि इस पर पूँजी व्यय करके इसका सुधार किया जाता है। भूस्वामी जब भूमि को कृषक को प्रयोग के लिए देता है तो वह जोखिम उठाता है और कुछ दशाओं में प्रबन्ध आदि भी करता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि भूस्वामी को आर्थिक लगान ही प्राप्त नहीं होता बल्कि उसके द्वारा लगायी पूँजी पर ब्याज, भूमि के प्रबन्ध हेतु मजदूरी तथा जोखिम का पुरस्कार भी प्राप्त होता है। इस प्रकार इन सब भुगतानों का योग लगान कहा जाता है। इसका सूत्र है—

   कुल लगान = आर्थिक लगान + भूमि पर लगी पूँजी का ब्याज + भूमि प्रबन्ध का व्यय
   + भूस्वामी द्वारा उठाये गये जोखिम के लिए लाभ।

2. **स्थिति लगान**—भूमि की स्थिति के अन्तर के कारण जो लगान उत्पन्न होता है उसे स्थिति लगान कहते हैं। उदाहरण के लिए, विकसित एवं सुविधा सम्पन्न क्षेत्र में मकान का किराया शहर से दूर स्थित अविकसित क्षेत्र की तुलना में अधिक होगा।
3. **दुर्लभता अथवा सीमितता लगान**—आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, लगान साधन की दुर्लभता के कारण उत्पन्न होता है। जब किसी साधन की पूर्ति उसकी माँग के सापेक्ष दुर्लभ हो तो लगान की समस्या उत्पन्न होती है। दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि उत्पादन के प्रत्येक साधन को लगान प्राप्त हो सकता है यदि उसकी पूर्ति पूर्णत: लोचदार न हो।

4. **आर्थिक लगान**—केवल भूमि के प्रयोग के बदले जो भुगतान भूस्वामी को प्राप्त होता है उसे आर्थिक लगान कहा जाता है। **रिकार्डो** ने ऐसे भूखण्डों की कल्पना की है जो सीमान्त भूमि (जिस पर उत्पादन मूल्य एवं उत्पादन लागत समान हो) के रूप में जाना जाता है। सीमान्त भूमि के अतिरिक्त अन्य भूमि अधि-सीमान्त भूमि (Intra-Marginal Land) कहलाती है जिनकी उर्वरता अधिक होने के कारण लगान उत्पन्न होता है। **रिकार्डो** के अनुसार, अधिक उर्वरता वाली श्रेष्ठ भूमि की लागत एवं सीमान्त भूमि की लागत का अन्तर ही आर्थिक लगान होता है किन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री **रिकार्डो** के आर्थिक लगान के विचार से सहमत नहीं थे। उनके अनुसार आर्थिक लगान एक साधन की अवसर लागत के ऊपर बचत है (Economic rent is surplus over opportunity cost of a factor of production)।
5. **ठेके के लगान**—यह लगान भूस्वामी एवं काश्तकार के बीच आपसी समझौते द्वारा निश्चित होता है। कुल लगान के अलावा काश्तकारों एवं भूस्वामियों की सौदा करने की शक्ति भी ठेका लगान को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण योगदान करती है। पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में ठेका समान लगान एवं आर्थिक लगान एकसमान होते हैं। जब ठेका लगान आर्थिक लगान से अधिक हो तो इसे **अत्यधिक लगान** (Rack Rent) कहा जाता है।
ठेके का लगान भूमि की माँग एवं पूर्ति पर निर्भर करता है। यदि भूमि की माँग पूर्ति की तुलना में अधिक है तब काश्तकारों में भूमि की प्राप्ति के लिए अधिक प्रतियोगिता होगी जिसके कारण आर्थिक लगान से ठेके का लगान ऊँचा होगा। इसके विपरीत, भूमि की पूर्ति माँग की तुलना में अधिक होने पर भूमि-स्वामियों में भूमि को काश्तकारों को देने के लिए प्रतियोगिता होगी जिसके कारण ठेके का लगान आर्थिक लगान से कम हो जायेगा।

प्र.7. आर्थिक लगान एवं ठेके के लगान में क्या अन्तर है? संक्षेप में लिखिए।

What is the difference between economic rent and contract rent?

उत्तर आर्थिक लगान एवं ठेके के लगान में निम्नलिखित अन्तर पाए जाते हैं—

1. ठेके का लगान आर्थिक लगान से कम, ज्यादा या उसके बराबर हो सकता है क्योंकि ठेके का लगान पूर्व निश्चित होता है जबकि आर्थिक लगान की मात्रा पूर्व सीमान्त तथा सीमान्त भूमियों की उपज पर निर्भर करती है।
2. आर्थिक लगान में शोषण की सम्भावना कम होती है, इसलिए इसे अनुचित नहीं माना जाता। जबकि ठेका लगान के आर्थिक लगान से अधिक हो जाने पर काश्तार का शोषण होता है। यह सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से अनुचित है।
3. भूमि के स्वामित्व के कारण प्राप्त होने वाली आय 'आर्थिक लगान' कहलाती है जबकि किसान द्वारा भूमिपति को भूमि के उपयोग के बदले में जो धनराशि देने का वादा किया जाता है, उसे 'ठेके का लगान' कहा जाता है।
4. आर्थिक लगान की मात्रा का निर्धारण पूर्व सीमान्त भूमियों एवं सीमान्त भूमि की लागत को ध्यान में रखकर किया जाता है जबकि ठेके के लगान का निर्धारण माँग तथा पूर्ति की शक्तियाँ करती हैं।
5. सीमान्त भूमि की लागत में या पूर्व सीमान्त भूमि की लागत में बदलाव होने से आर्थिक लगान की मात्रा बदल जाती है जबकि ठेके के लगान में उस समय तक कोई बदलाव नहीं हो सकता, जब तक कि पुराने समझौते के स्थान पर नया समझौता न हो जाए।

प्र.8. योग्यता के लगान से आप क्या समझते हैं? योग्यता के लगान की अवधारणा का महत्त्व भी समझाइए।

What is merit rent? Explain the importance of this theory?

उत्तर नवपरम्परावादी अर्थशास्त्री **प्रो० मार्शल** ने योग्यता के लगान का प्रतिपादन किया था। उनका विचार है, "मनुष्य को जो आय अपनी दुर्लभ तथा प्राकृतिक योग्यता के कारण प्राप्त होती है उसे योग्यता का लगान (Rent of Ability) कहते हैं।"
इस प्रकार स्पष्ट है कि—जिस प्रकार भूमि की उर्वरता में भिन्नता पायी जाती है, ठीक उसी प्रकार उत्पादकों की कार्यकुशलता (दक्षता) भी भिन्न-भिन्न होती है। दूसरे शब्दों में, सीमान्त उत्पादक की तुलना में अन्य दक्ष उत्पादक जो लाभ कमाते हैं, वही योग्यता का लगान कहा जाता है। साधारण परिस्थितियों में लोगों की आय में योग्यता के लगान का अंश बहुत कम होता है, लेकिन फिर भी कुछ लोग ऐसे अवश्य हो सकते हैं, जिन्हें अपनी आय का एक बड़ा अंश दुर्लभ योग्यता के कारण प्राप्त होता है। याद रहे कि विशेष शिक्षा अथवा प्रशिक्षण के कारण प्राप्त होने वाली आय 'योग्यता का लगान' नहीं होगी बल्कि वह तो विनियोजित पूँजी का प्रतिफल मात्र होगी। इस प्रकार योग्यता का लगान प्रकृति की देन का पुरस्कार है, जो सदैव ही दुर्लभ होती है।

योग्यता के लगान की अवधारणा का महत्त्व—योग्यता के लगान की अवधारणा का महत्त्व निम्न प्रकार है—

1. यह विचार इस तथ्य पर प्रकाश डालता है कि मनुष्य में भी भूमि का कुछ अंश पाया जाता है क्योंकि मनुष्य की प्राकृतिक योग्यता एक प्रकार से भूमि के समान ही है।
2. यह इस बात का उत्तर देता है कि ऊँची मजदूरी अथवा आय वाले व्यवसायों में उत्पत्ति के साधन क्यों गतिशील नहीं हो पाते। इसका कारण यह है कि ऐसे उद्योगों में ऊँची आय अधिकांशत: योग्यता के लगान के कारण होती है।
3. यह विचार बताता है कि एक ही व्यवसाय में दो व्यक्तियों की आय में अन्तर क्यों पाया जाता है।

प्र.9. रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की लगान के आधुनिक सिद्धान्त का तुलनात्मक विवरण दीजिए।

Give a comparative description between Ricardo's Theory of Rent and Modern Theory of Rent.

उत्तर निस्सन्देह लगान के दोनों ही सिद्धान्त (परम्परावादी रिकार्डो का सिद्धान्त तथा आधुनिक सिद्धान्त) पूर्ण प्रतियोगिता की अवास्तविक मान्यता पर आधारित हैं फिर भी दोनों सिद्धान्तों में निम्नलिखित मौलिक अन्तर अवश्य पाए जाते हैं—

क्र०सं०	रिकार्डो का लगान सिद्धान्त	लगान का आधुनिक सिद्धान्त
1.	रिकार्डो के अनुसार लगान भूमि की उर्वरा शक्ति तथा स्थिति के कारण उत्पन्न होता है। इसलिए उन्होंने लगान को एक भेदात्मक बचत माना था।	आधुनिक सिद्धान्त के प्रतिपादक लगान को बेलोच पूर्ति अथवा सीमितता के कारण उत्पन्न मानते हैं।
2.	रिकार्डो ने लगान का मापन सीमान्त भूमियों को आधार मानकर किया था।	आधुनिक अर्थशास्त्री साधन की वास्तविक आय में से अवसर लागत को घटाकर लगान की गणना करते हैं।
3.	रिकार्डो के अनुसार, लगान मूल्य को प्रभावित नहीं करता बल्कि स्वयं मूल्य का निर्धारण सीमान्त (लगानहीन) भूमि से होता है।	आधुनिक सिद्धान्त के प्रतिपादक यह मानते हैं कि अधिकांश दशाओं में लगान मूल्य को प्रभावित करता है।
4.	रिकार्डो के अनुसार लगान भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों के लिए भुगतान है; अत: लगान केवल भूमि से ही प्राप्त हो सकता है।	आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान साधन की अवसर लागत के ऊपर बचत है; अत: यह सभी साधनों को प्राप्त हो सकता है।
5.	रिकार्डो का लगान सिद्धान्त केवल भूमि पर लागू होता है; अत: यह एक विशिष्ट सिद्धान्त है।	लगान का आधुनिक सिद्धान्त उत्पादन के सभी साधनों पर लागू होता है; अत: यह एक सामान्य सिद्धान्त है।
6.	रिकार्डो ने लगान को सीमान्त भूमि की लागत पर पूर्व सीमान्त भूमियों से प्राप्त होने वाली बचत माना था।	आधुनिक विचारक लगान को अवसर लागत पर बचत मानते हैं।
7.	रिकार्डो ने सीमान्त भूमि को लगानहीन भूमि माना।	आधुनिक अर्थशास्त्री ऐसी कोई कल्पना नहीं करते।

इस प्रकार लगान के दोनों दृष्टिकोणों में व्यापक तथा आधारभूत अन्तर पाया जाता है। यह भिन्नता आधुनिक सिद्धान्त की श्रेष्ठता को स्वत: सिद्ध करती है।

प्र.10. विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में मजदूरी की दरों में भिन्नता क्यों पाई जाती है? कारण बताइए।

Why are different rates of wages found in different occupations? Give reasons.

उत्तर विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में मजदूरी की दारें में पाई जाने वाली भिन्नता के निम्नलिखित कारण हैं—1. विभिन्न व्यवसायों में कार्यरत श्रमिकों की कार्यकुशलता में अन्तर होता है।

2. विभिन्न व्यवसायों में कार्य की प्रकृति भिन्न-भिन्न होती है।
3. ऐसे व्यवसायों में जहाँ प्रशिक्षण प्राप्त कर्मचारियों की नियुक्ति होती है, मजदूरी की दर ऊँची रहती है।
4. कार्य और अवकाश के दिनों में अन्तर रहने पर, मजदूरी की दर में भिन्नता पायी जाती है।
5. सामूहिक सौदाकारी शक्ति अधिक रहने पर मजदूरी की दर भी अधिक रहती है।
6. अधिक दायित्व वाले व्यवसायों में मजदूरी की दर अपेक्षाकृत ऊँची रहती है।

7. कुछ व्यवसायों में अतिरिक्त अन्य लाभ मिलते हैं जबकि कुछ व्यवसायों में ये लाभ नहीं मिलते।
8. भविष्य में प्रगति के अधिक अवसर होने वाले व्यवसायों में कम मजदूरी पर कार्य किया जाता है।
9. सामयिक प्रकृति वाले व्यवसायों में मजदूरी की दर प्राय: कम रहती है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. वितरण के सिद्धान्त क्या हैं? वितरण के लिए पृथक सिद्धान्त की आवश्यकता क्यों पड़ी?
What are Theories of Distribution? What was the need for a separate theory of distribution?

उत्तर

वितरण के सिद्धान्त
(Theories of Distribution)

उत्पादक को उत्पादन क्रिया के लिए अनेक उत्पत्ति के साधनों को एकत्रित करना पड़ता है। इन उपादानों (Inputs) की एक निश्चित मात्रा तथा निश्चित उत्पादन तकनीक द्वारा उत्पादक एक ऐसे संयोग को प्राप्त करता है जिसकी सहायता से अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जा सके। मुख्यत: उत्पादन क्रिया में चार उपादानों का सहयोग होता है—**भूमि** (Land), **श्रम** (Labour), **पूँजी** (Capital) तथा **संगठन** (Organisation)। उत्पादन इन सभी उपादानों के सामूहिक प्रयास का परिणाम है। अब यह प्रश्न उठता है कि उत्पादन एक सामूहिक क्रिया है, अत: किसी साधन विशेष का पुरस्कार (अर्थात् उसकी कीमत) निश्चित करने का आधार क्या हो? साधनों के पुरस्कार वितरण से सम्बन्धित खोज ही वितरण का सिद्धान्त कहलाता है।

वितरण के पृथक् सिद्धान्त की आवश्यकता
(Need of a Separate Theory of Distribution)

किसी वस्तु की कीमत उसकी माँग एवं पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियों द्वारा निर्धारित होती है। वस्तु की माँग का आधार वस्तु में निहित उपयोगिता है जिसके कारण उपभोक्ता उसकी माँग करता है। वस्तु की पूर्ति उत्पादक लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से करता है। वस्तु की कीमत उस बिन्दु पर निर्धारित होती है जहाँ उपभोक्ता तथा उत्पादक एक निश्चित कीमत पर वस्तु को क्रमश: खरीदने तथा बेचने के लिए तैयार हो जाते हैं।

यदि इसी कीमत सिद्धान्त को किसी साधन के पुरस्कार निर्धारण में लागू किया जाय तो साधन की कीमत निर्धारण करने के लिए हमें उस साधन की माँग तथा पूर्ति दोनों पक्षों पर ध्यान देना होगा। परन्तु वस्तु की कीमत निर्धारण (Commodity Pricing) तथा साधन कीमत निर्धारण (Factor Pricing) में कुछ महत्वपूर्ण अन्तर भी हैं जिनके कारण साधनों की कीमत निर्धारित करने के लिए पृथक सिद्धान्त की आवश्यकता पड़ती है।

माँग की प्रकृति (Nature of Demand)

किसी साधन की माँग में कुछ मुख्य विशेषताएँ निहित हैं—

1. **किसी वस्तु की प्रत्यक्ष माँग** (Direct Demand) के विपरीत किसी साधन की माँग वस्तुत: **अप्रत्यक्ष माँग** (Indirect Demand) अथवा **व्युत्पन्न माँग** (Derived Demand) होती है। किसी साधन की माँग उत्पादक द्वारा इस उद्देश्य से की जाती है कि वह इस साधन के सहयोग से उत्पादन कार्य करके ऐसी वस्तु उत्पादित कर सके जिसकी बाजार में उपभोक्ता प्रत्यक्ष माँग करते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि किसी साधन की माँग उसकी सीमान्त उत्पादकता (Marginal productivity) पर निर्भर करती है जबकि किसी वस्तु की माँग उसकी सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility) द्वारा निर्धारित होती है। इस वास्तविकता के कारण साधन की माँग अप्रत्यक्ष अथवा व्युत्पन्न माँग बन जाती है।
2. उत्पत्ति के साधनों की माँग, **संयुक्त माँग** (Joint Demand) होती है क्योंकि उत्पादन क्रिया में सम्मिलित उत्पत्ति के साधनों में स्थानापन्नता (Substitutability) एवं पूरकता (Complementarity) का एक अंश विद्यमान रहता है। अत: साधनों के सम्बन्ध में संयुक्त माँग प्रदर्शित करने वाले पृथक माँग वक्र की आवश्यकता पड़ती है।

पूर्ति की प्रकृति (Nature of Supply)

इसी प्रकार **साधन की पूर्ति** भी वस्तु की पूर्ति से भिन्न है क्योंकि किसी वस्तु की पूर्ति उसकी उत्पादन-लागत (Cost of Production) पर निर्भर करती है जबकि उत्पत्ति के साधनों की पूर्ति का सम्बन्ध अवसर लागत (Opportunity Cost) से

लिया जाता है। अवसर लागत वह न्यूनतम धनराशि है जो किसी साधन विशेष को उस व्यवसाय में बनाये रखने के लिए आवश्यक होती है। यदि उस साधन को इस न्यूनतम धनराशि से कम मूल्य दिया जायेगा तो वह साधन किसी दूसरे व्यवसाय में स्थानान्तरित हो जायेगा। इस प्रकार यही न्यूनतम धनराशि उस व्यवसाय विशेष की दृष्टि से साधन की अवसर लागत होगी। उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर वितरण के पृथक सिद्धान्त की आवश्यकता न्यायोचित प्रतीत होती है।

प्र.2. साधन बाजार का अर्थ स्पष्ट करते हुए साधन की माँग तथा पूर्ति की अवधारणा का विस्तृत विवेचन कीजिए।
Making clear the meaning of Factor Market, give a detailed discription of concept of input demand and supply.

उत्तर

साधन बाजारों का अर्थ
(Meaning of Factor Market)

ऐसे बाजार, जहाँ भूमि, श्रम तथा पूँजी जैसे उत्पत्ति के साधनों का क्रय-विक्रय किया जाता है, साधन बाजार कहलाते हैं। उत्पत्ति के ये साधन, उद्यमी के साथ अन्तर्क्रिया करके अर्थव्यवस्था में वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन करते हैं। उत्पत्ति के साधनों के प्रमुख अभिलक्षण तथा अर्थ निम्नलिखित हैं—

1. **भूमि**—उत्पत्ति का यह साधन रूप में दिखाई देने वाला साधन है। यह एक स्टॉक अवधारणा है। इसमें अर्थव्यवस्था में उपलब्ध कुल भौतिक संसाधन सम्मिलित हैं। भूमि में न केवल जमीन, वरन् वन, जल संसाधन, मृदा तथा खनिज संसाधन और खानें आदि भी सम्मिलित हैं।
2. **श्रम**—श्रम एक प्रवाह रूपी संकल्पना है। यह उत्पत्ति का अदृश्य साधन है क्योंकि श्रम सेवाएँ श्रमिक में सन्निहित हैं, उससे अलग नहीं की जा सकती। परिवारों द्वारा उत्पादन के उद्देश्य से किए गए प्रयास, चाहे वे शारीरिक हों या बौद्धिक, श्रम कहलाते हैं।
3. **पूँजी**—सभी प्रकार की मशीनें एवं प्लाण्ट, भवन, परिवहन साधन आदि, जिनका उपयोग उत्पादन हेतु किया जाता है, पूँजी कहलाता है। यह उत्पत्ति का दिखाई देने वाला साधन है।
4. **उद्यम**—वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करने के लिए उत्पादन प्रक्रिया को चलाने तथा संगठित करने वाले उद्यमी की दक्षताएँ दिखाई न देने वाला साधन है। सामान्य रूप से, परिवार उत्पत्ति के इन कारकों के स्वामी होते हैं एवं उन पर उनका नियन्त्रण होता है। वे इन साधनों को उत्पादकों को बेचते हैं। परिवार श्रम के रूप में अपनी सेवाएँ देकर बदले में मजदूरी प्राप्त करते हैं। कुछ परिवारों के कुछ सदस्यों में उद्यम कौशल होता है तथा वे उद्यमी के रूप में कार्य करते हैं। परिवार साधन बाजार में इन साधनों को बेचकर आय अर्जित करते हैं और इस प्रकार, उत्पादन प्रक्रिया में सकारात्मक रूप में योगदान देते हैं। इस अन्तर्क्रिया को परिवारों और फर्मों के बीच आय एवं व्यय के चक्रीय प्रवाह को उपर्युक्त चित्र द्वारा दर्शाया गया है—

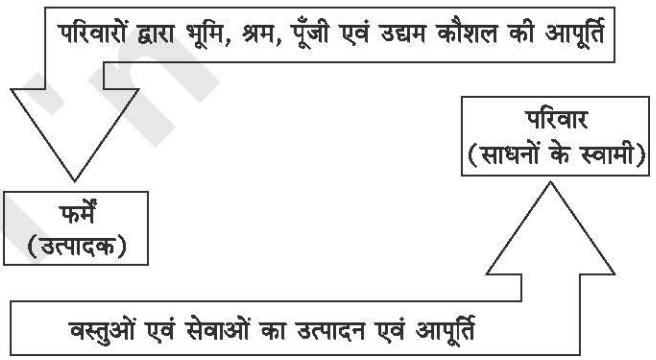

चित्र 1. उत्पत्ति के साधनों, वस्तुओं और सेवाओं का परिवारों और फर्मों के बीच एक सरल रेखाचित्र अन्तःक्षेत्रीय प्रवाह।

साधन की माँग एवं आपूर्ति की अवधारणा
(Concept of Input Demand and Supply)

साधन की माँग एवं आपूर्ति को समझने के लिए वस्तु बाजार तथा साधन बाजार के बीच के अन्तर्सम्बन्ध को समझना महत्त्वपूर्ण है।

व्युत्पन्न माँग (Derived Demand)

यहाँ पर हम आँकड़ों का विश्लेषण करने वाली फर्म के कार्यालय हेतु स्थान की माँग पर विचार करते हैं। सामान्य रूप से आँकड़ों का विश्लेषण करने वाली फर्म को अपने विश्लेषकों, प्रोग्रामरों, प्रबन्धकों एवं अन्य कार्मिकों हेतु किराये के कार्यालय की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार, एक बेकरी स्वामी को बेकरी के उत्पादों के उत्पादन और विक्रय हेतु स्थान की आवश्यकता

होती है। प्रत्येक भौगोलिक क्षेत्र में कार्यालय स्थल के लिए माँग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ होगा जहाँ किराया फर्मों द्वारा माँग किए गए कार्यालय स्थान के आकार से सम्बद्ध है। किराया कीमत जितनी कम होगी, कार्यालय स्थल की माँग उतनी ही अधिक होगी। वस्तुओं की माँग तथा साधनों की माँग के मध्य एक महत्त्वपूर्ण अन्तर उनकी उपयोगिता से जुड़ा हुआ है। उपभोक्ता वस्तुओं की माँग इसलिए करते हैं कि उनके उपभोग से उन्हें उपयोगिता प्राप्त होती है। दूसरी ओर, फर्में उत्पत्ति के साधनों की माँग इसलिए नहीं करतीं कि इससे उन्हें कोई उपयोगिता प्राप्त होती है अपितु इसलिए करती हैं कि उत्पत्ति के चारों साधनों को प्रयुक्त करते हुए उत्पादन करना होता है। इसका उद्देश्य उत्पत्ति के साधनों का प्रयोग कर आगम तथा लाभ को अधिकतम करना है। इतना ही नहीं उत्पत्ति के साधनों की माँग उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं की उपभोक्ताओं द्वारा की गयी माँग पर निर्भर है। वस्तुओं की माँग जितनी अधिक होगी, उनको उत्पादित करने वाले साधनों की माँग भी अधिक होगी। वस्तुओं की माँग कम होगी तो उन्हें उत्पादित करने वाले साधनों की माँग उतनी ही कम होगी। इसीलिए अर्थशास्त्रियों ने उत्पत्ति के साधनों की माँग को व्युत्पन्न माँग की संज्ञा दी है।

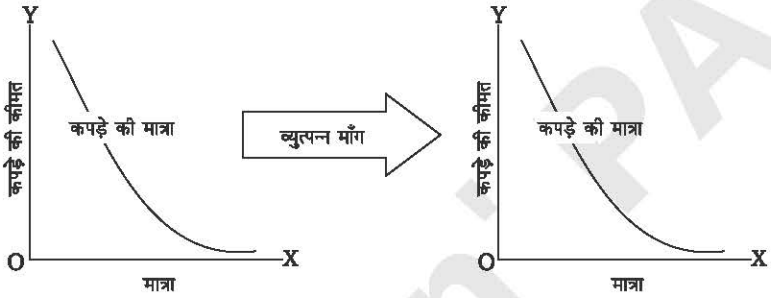

चित्र 2. स्वतन्त्र माँग

पारस्परिक माँग (Interdependence Demand)

सर्वविदित है कि केवल एक साधन का प्रयोग करते हुए किसी वस्तु अथवा सेवा का उत्पादन नहीं किया जा सकता। क्योंकि वस्तुओं या सेवाओं का उत्पादन उत्पत्ति के विभिन्न साधनों की अन्तर्क्रिया से ही सम्भव हो सकता है। मान लीजिए कि एक उत्पादक सोने के आभूषण उत्पादित करना चाहता है। इस उत्पादक को सोने के आभूषण की डिजाइन बनाने वाले (श्रमिक) की सेवाओं की आवश्यकता होगी। उत्पादन प्रक्रिया चलाने के लिए कार्यालय स्थल (भूमि) की आवश्यकता होगी तथा सोने को गलाने और ढालने के लिए कुछ मशीनों (पूँजी) की भी आवश्यकता होगी। यहाँ यह समझ लिया जाना सर्वोचित है कि उत्पादन में अन्तर-निर्भरता उत्पत्ति के साधनों की उत्पादकताओं की पारस्परिक निर्भरता के रूप में परिलक्षित होती है। इस तरह से श्रम की उत्पादकता सीधे-सीधे प्रभावित होगी यदि सोने को गलाने और ढालने की मशीन दो दिन के लिए काम करना बन्द कर देती हैं। वास्तव में, भूमि, श्रम तथा पूँजी की उत्पादकताओं की पारस्परिक निर्भरता ही है जो साधन आय के वितरण को कठोर बना देती है। उत्पादन प्रक्रिया में उत्पत्ति के विभिन्न साधनों के योगदान का आकलन करने हेतु सीमान्त उत्पादकता की अवधारणा को प्रयुक्त किया जाता है, जहाँ प्रत्येक साधन के प्रतिफल के निर्धारण के लिए उसकी सीमान्त उत्पादकता आकलित की जाती है।

उत्पत्ति के साधनों की माँग (Demand of Factor of Production)

उत्पत्ति के साधनों का माँग वक्र बाजार की संरचना में परिवर्तन के अनुसार बदलता रहता है। ऊपर पूर्ण प्रतियोगिता वाली बाजार संरचना के लिए *VMP* एवं *MRP* का आकलन किया गया है जो एकसमान है। यहाँ *VMP* यह बताती है कि उत्पत्ति के साधन की अधिकतम कितनी इकाइयों को काम पर लगाया जा सकता है। चूँकि *VMP* उत्पादन प्रक्रिया में अतिरिक्त श्रम इकाइयों के प्रयोग से हुई मूल्य वृद्धि को बताता है। इसलिए यह निष्कर्ष निकलता है कि यह पूर्ण

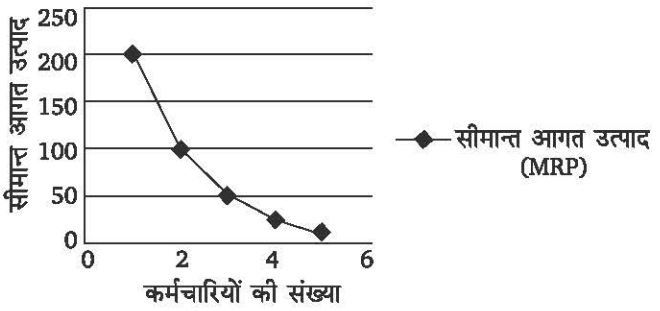

चित्र 3. सीमान्त आगम उत्पादन (*MRP*) माँग वक्र के रूप में।

प्रतियोगिता वाले बाजार में *VMP* (*MRP*) वक्र पूर्ण प्रतियोगी फर्म हेतु उत्पत्ति के साधन का माँग वक्र है। इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि जो कारक फर्म के *MRP* को प्रभावित करते हैं; वही साधन के माँग वक्र को भी प्रभावित करेंगे। फर्म के *MRP* को प्रभावित करने वाले कारक हैं—साधनों की प्रतिस्थापन्नता, अन्तिम उत्पाद की माँग में परिवर्तन एवं उत्पत्ति के साधन पर खर्च की गयी राशि (लागत)।

कोई एकल *MRP* किसी साधन हेतु बाजार माँग वक्र को परिलक्षित नहीं कर पाएगा क्योंकि यह केवल एक फर्म हेतु ही साधन का माँग वक्र है। सभी फर्मों के *MRP* के योग से उद्योग हेतु उत्पत्ति के साधन का माँग वक्र प्राप्त होता है। यदि सभी उद्योगों हेतु उत्पत्ति के साधन के माँग वक्रों का योग कर दिया जाए तो उत्पत्ति के साधन का कुल माँग वक्र प्राप्त होगा।

उत्पत्ति के साधनों की आपूर्ति (Supply of Factor of Production)

अर्थव्यवस्था में उत्पत्ति के अधिकतर साधन निजी स्वामित्व वाले होते हैं। इतना ही नहीं, भूमि, श्रम तथा पूँजी जैसे उत्पत्ति के साधनों की आपूर्ति से जुड़े निर्णय अनेक आर्थिक और गैर-आर्थिक कारणों से प्रभावित होते हैं। श्रम की आपूर्ति के निर्धारक तत्त्व हैं—श्रम की कीमत (मजदूरी) एवं जनसंख्या के आयु, लिंग, शिक्षा एवं परिवार संरचना जैसे जनांकिकीय कारक आदि। भूमि की आपूर्ति अधिकांश रूप से संरक्षण तथा अधिवास प्रतिरूपों में परिवर्तन जैसे कारकों से निर्धारित गुणवत्ता से प्रभावित होती है। व्यवसायों, परिवारों एवं सरकारों द्वारा पूर्व में किए गए निवेश पूँजी की आपूर्ति को प्रभावित करते हैं।

सभी आगतों के आपूर्ति वक्र धनात्मक ढाल वाले अथवा ऊर्ध्वाकार हो सकते हैं। कुछ मामलों में, यह ऋणात्मक ढाल वाला भी हो सकता है। भूमि की आपूर्ति स्थिर है। इसलिए भूमि का आपूर्ति वक्र ऊर्ध्वाकार होता है। चूँकि पूँजी की आपूर्ति इस पर प्राप्त होने वाले प्रतिफल से सीधे-सीधे प्रभावित होती है, ऊँचा प्रतिफल होने पर आपूर्ति भी अधिक होती है। इसलिए पूँजी के आपूर्ति वक्र का ढाल धनात्मक होता है।

श्रम बाजार (Labour Market)

दूसरी ओर, श्रम का आपूर्ति वक्र या तो धनात्मक ढाल वाला होता है (अल्पकाल में) या पीछे की ओर मुड़ने वाला (अल्पकाल में) होता है। उत्पत्ति के साधनों के माँग वक्रों एवं आपूर्ति वक्रों के बीच की अन्तर्क्रिया उनकी सन्तुलन कीमत निर्धारित करती है।

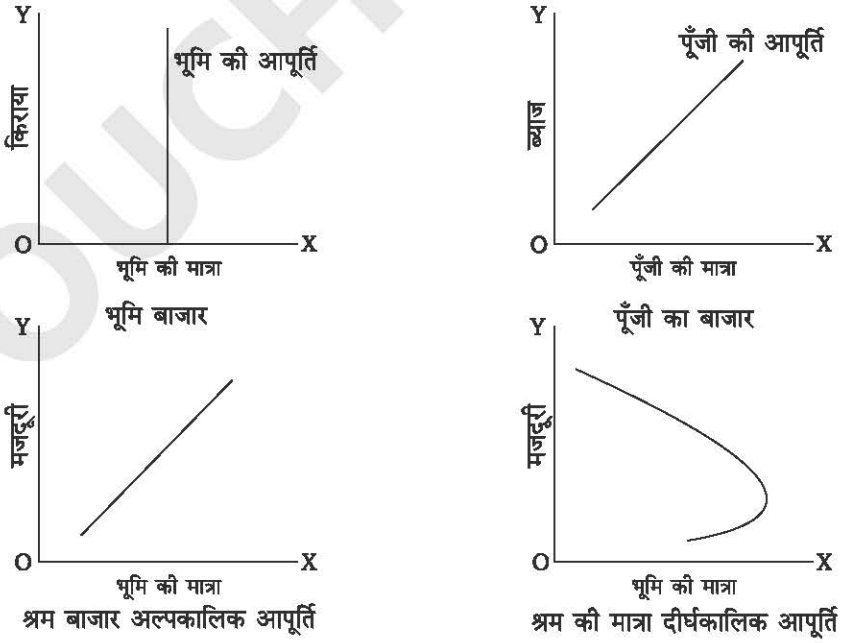

चित्र 4

TOUCH 'n' PASS

प्र.3. लाभ के सिद्धान्तों की विस्तृत विवेचना कीजिए।
Give a detailed description of theories of profit.

उत्तर

लाभ के सिद्धान्त
(Theories of Profit)

गत वर्षों के दौरान अर्थशास्त्र के प्रसिद्ध विद्वानों ने लाभ के अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं। उदाहरणार्थ, **जोसेफ शुम्पीटर** ने लाभ को नवोन्मेष से जोड़ा है जबकि **फ्रेंक नाइट** ने लाभ को अनिश्चितता से सम्बद्ध किया है।

1. **लाभ-नवोन्मेष हेतु पुरस्कार**—प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **शुम्पीटर** ने लाभ को एक ऐसी प्रघटना माना है, जो केवल गत्यात्मक अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित है। उन्होंने पाँच प्रकार के परिवर्तन चिह्नित किए जो आर्थिक विकास को बढ़ावा देते हैं अथवा समाज को गतिशील बनाते हैं। ये परिवर्तन निम्न प्रकार हैं—
   (i) नये उत्पादों को प्रारम्भ करना
   (ii) उत्पादन की नई विधियों को अपनाना
   (iii) नये कच्चे माल खोजना
   (iv) नये बाजार खोजना
   (v) संगठन के नये स्वरूपों को अपनाना।

   नवोन्मेष नवीन ज्ञान वास्तविक व्यावसायिक परिस्थितियों में यथार्थ रूप से प्रयुक्त किए जाने की व्यवस्था कहा जाता है। नयी खोजों, नयी तकनीकों का वास्तविक जगत में अनुप्रयोग ही नवोन्मेष कहलाता है। यह आवश्यक नहीं है कि नवोन्मेषक स्वयं अन्वेषक भी हो लेकिन वह कुछ नवोन्मेषों को अपनी उत्पादक गतिविधियों को बदलने अथवा आगतों एवं उत्पादन के सम्बन्धों को परिवर्तित करने का कार्य करता है। ऐसे नवोन्मेष उत्पादन की नयी तकनीक अपनाने के रूप में भी हो सकते हैं। ये नये बाजारों की खोज से सम्बन्धित हो सकते हैं या फिर विपणन की सभी गतिविधियों से सम्बद्ध हो सकते हैं।

   शुम्पीटर की मान्यता है कि जो नवोन्मेष करता है, वह अधिक लाभ अर्जित करने में सक्षम होता है अत: उसे आगे और नवोन्मेष अपनाने की प्रेरणा मिलती है। इससे कुछ और नये उद्यमी बाजार में उतर सकते हैं। ये लोग धीरे-धीरे मूल नवोन्मेषक की भाँति ही उत्पादन करने लगते हैं। इसके फलस्वरूप वह प्रतिस्पर्धा में सबसे आगे रहने के लिए और अधिक प्रयास करता है। इस प्रकार, नवोन्मेष से लाभ सृजित होता है तथा लाभ से अन्य नवोन्मेष करने की प्रेरणा मिलती है।

2. **अनिश्चितता एवं लाभ**—फ्रेंक नाइट द्वारा लाभ को विक्रय कीमत तथा लागतों के मध्य के अन्तर के रूप में परिभाषित किया गया है। ऐसी परिस्थिति में लाभ एक अवशिष्ट के रूप में प्राप्त होता है। विक्रय कीमतें तथा लागतें अनेक कारकों पर निर्भर करती हैं। इनमें से कुछ कारक जोखिम युक्त होते हैं, जिनका पूर्वानुमान लगाकर उनसे हो सकने वाली हानि को लागत संरचना में शामिल कर लिया जाता है। पूर्वानुमानित अधिकांश जोखिमों का बीमा भी कराया जा सकता है। ऐसी जोखिमों से होने वाली हानि से बचने के लिए कम्पनी बीमा पॉलिसी ले सकती है। इन पॉलिसियों पर किए गए भुगतान को लागत में सम्मिलित कर लिया जाता है। इस प्रकार की जोखिम दशाएँ पूरी तरह से पूर्वानुमान लगा लिए जाने योग्य तथा कटौती किए जाने योग्य होती है। इसलिए पूर्ण सुनिश्चितता के परिवेश में उत्पादन करना अच्छा अथवा बुरा हो सकता है। लेकिन नाइट का दृष्टिकोण अनिश्चितता के अन्य आयाम की ओर ध्यान आकर्षित करता है और कहता है कि उत्पादक या उद्यमी सदैव पहले से ही उपभोक्ता की इच्छाओं और प्राथमिकताओं का अनुमान लगा रहा होता है। उसे ऐसा करना भी चाहिए क्योंकि उसे भविष्य में ऐसी वस्तुओं का उत्पादन करना है जो ऐसी इच्छाओं को सन्तुष्ट करें। ऐसा अनिवार्य रूप से होता है क्योंकि माँग के पूर्वानुमान तथा उत्पादन एवं उपभोक्ताओं तक वस्तुएँ पहुँचाने में समयान्तराल होता है। एक सीमा तक माँग की सन्तुष्टि के अनुरूप उत्पादन करने के लिए फर्म के संचालन के परिणामों में भी अनिश्चितता होती है। यहाँ तक कि सामान्य संगठनात्मक कार्य करने वाला प्रबन्धक भी बाजार में होने वाले आय उच्चावचनों के विरुद्ध उत्पत्ति के साधनों के हितों को संरक्षित करने के मामले में जोखिम का सामना करता है।

इस प्रकार, उद्यमी की आय के दो संघटक हैं, वेतन या मजदूरी संघटक, जिसकी प्रकृति संविदात्मक है और दूसरी अवशिष्ट आय जो बाजार में परिवर्तन के अनुसार बदल सकती है। कुछ अर्थशास्त्री केवल दूसरे घटक को ही लाभ कहना पसन्द करते हैं।

इस प्रकार, हमने देखा कि लाभ तथा उत्पत्ति के अन्य साधनों के बीच प्रमुख अन्तर है—मजदूरी, लगान (किराया) एवं ब्याज आदि सभी भुगतान हैं जो पहले से ही तय हो जाते हैं, लाभ के बारे में ऐसा नहीं है। अनिश्चितता के चलते लागतों एवं आगम दोनों में उच्चावचन हो सकते हैं। उनमें सन्तुलन नहीं बैठाया जा सकता। अत: लाभ एक अतिरेक है जो अन्य सभी भुगतान दायित्वों को पूरा करने के उपरान्त उद्यमी के लिए बचता है।

3. **लाभ तथा बाजार संरचना**—कुछ अर्थशास्त्रियों ने इस बात पर भी बल दिया है कि लाभ अनिवार्य रूप से बाजार अपूर्णताओं का एक परिणाम है। यदि पूर्ण प्रतियोगिता मौजूद रहती है तो प्रत्येक उत्पादक एक जैसी प्रौद्योगिकी का प्रयोग करेगा, उत्पाद, लागत तथा बाजार की दशाओं की उसे पूरी जानकारी होगी। ऐसा परिदृश्य सभी उत्पादनों में लागत को न्यूनतम करने की ओर ले जाएगा। लागत तथा आगम के सभी निर्धारक तत्त्व पूरी तरह से सुनिश्चित होंगे। इसलिए उद्यम केवल एक संगठन या दैनिक पर्यवेक्षण होगा। अत: लाभ का न्यूनतम स्तर या पर्यवेक्षण आदि के लिए सामान्य क्षतिपूर्ति ही होना चाहिए।

   लेकिन यदि बाजार पूर्ण प्रतियोगी नहीं है तो फर्म अपनी सुविधानुसार उत्पादन की मात्रा एवं कीमतें निर्धारित कर सकती है। इसमें पूर्ण सूचना की शर्त को तोड़ना भी शामिल है। फर्म कुछ नवोन्मेष करके इन्हें अन्यों से गुप्त रख सकती है। जब तक यह गोपनीयता बनी रहती है, तब तक सम्बन्धित फर्म की तुलना में अधिक लाभ अर्जित करती रहेगी।

   प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **ए०पी० लर्नर** ने लाभ पर एकाधिकारी शक्ति के प्रभाव को मापने का प्रयास किया। हम जानते हैं कि सीमान्त लागत एवं सीमान्त आगम का आपस में समान होना सन्तुलन स्थापित होने की शर्त है। जब पूर्ण प्रतियोगिता होती है तो औसत आगम (कीमत) भी सीमान्त आगम के बराबर हो जाती है। कीमत में केवल उसी दशा में सीमान्त आगम से अलग होने की प्रवृत्ति आती है जब पूर्ण प्रतियोगिता विद्यमान न हो। इसलिए कीमत एवं सीमान्त आगम के बीच का अन्तर $(P - MR)$ या $(P - MC)$ यह दर्शाता है कि बाजार पर फर्म का नियन्त्रण है। इसे कीमत के भाग के रूप में दर्शाया जाता है। इस प्रकार, एकाधिकार की डिग्री $(P - MC)/P$ है। यह एकाधिकार स्तर जितना अधिक होगा किसी फर्म द्वारा अर्जित किए जाने वाले लाभ का स्तर उतना ही ऊँचा होगा।

प्र.4. श्रम की आपूर्ति को प्रभावित करने वाले कारक लिखिए।
Write the factors that affect labour supply.

उत्तर

श्रम की आपूर्ति
(Labour Supply)

श्रम की आपूर्ति को समझने के लिए अर्थशास्त्रियों ने चयन के बुनियादी प्रतिमान का प्रयोग किया है। कितने श्रमिक काम करने के लिए तैयार होंगे, यह उनके द्वारा उपयोग एवं आराम करने के मध्य चयन करने पर निर्भर करता है। आराम करने से आशय है कि श्रमिक को काम (रोजगार) मिलने पर भी काम न करना। जब कोई श्रमिक आराम का परित्याग करके काम करता है तो उसे अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। इससे वह अपने उपभोग स्तर को बढ़ा सकता है। दूसरी ओर, अपने उपभोग में कमी लाकर श्रमिक कम काम करके, अधिक समय तक आराम कर सकता है।

श्रम की आपूर्ति श्रमिकों एवं सम्भाव्य श्रमिकों द्वारा होती है। मजदूरी की दी हुई दर पर श्रम के सम्भाव्य आपूर्तिकर्त्ताओं को यह तय करना पड़ता है कि उन्हें कोई काम करना चाहिए अथवा नहीं। मजदूरी की विभिन्न दरों पर काम करने के लिए तैयार कुल श्रमिकों की संख्या श्रम की आपूर्ति है। न्यूनतम भुगतान या आरक्षित कीमत जो श्रम के एक समुच्चय को प्राप्त होती, क्षतिपूर्ति का वह स्तर

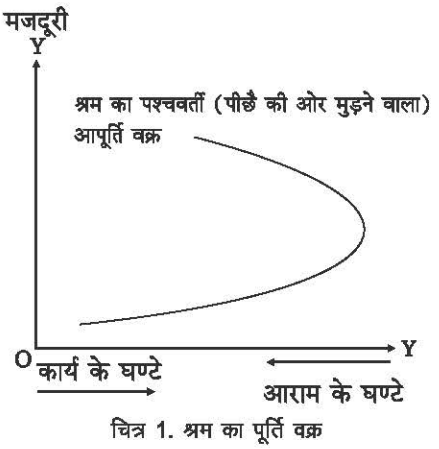

चित्र 1. श्रम का पूर्ति वक्र

है जिस पर किसी तटस्थ श्रमिक को काम करने या न करने के बीच निर्णय करना होता है। आर्थिक रूप में, मजदूरी की दी हुई दर पर काम करने का निर्णय लागत-लाभ सिद्धान्त पर निर्भर करता है। श्रम की आपूर्ति करने के लिए इच्छा उसी समय अधिक होती है जब मजदूरी की दर ऊँची होती है। इससे श्रम के आपूर्ति वक्र का ढाल ऊपर की ओर उठता हुआ होता है लेकिन मजदूरी की दर में लगातार वृद्धि होने पर एक बिन्दु के बाद श्रम का पूर्ति वक्र ऊपर की ओर चढ़ने के स्थान पर पीछे की ओर मुड़ जाता है।

श्रम के आपर्ति वक्र का मजदूरी की ऊँची दर पर पीछे की ओर मुड़ जाना यह व्यक्त करता है कि श्रमिक अब और अधिक घण्टों तक काम करने के स्थान पर आराम करना अधिक पसन्द करता है। लम्बी अवधि (अधिक घण्टों) तक काम करने का अर्थ है श्रमिकों को आराम करने के लिए कम समय मिलना। मजदूरी की दरों में जैसे-जैसे वृद्धि होती है, व्यक्तिगत स्तर पर, श्रमिकों की आय में वृद्धि होती है। इससे श्रमिकों की रुचि अधिक आरामदायक गतिविधियों के लिए बढ़ जाती है, इसलिए मजदूरी दर में एक सीमा के बाद उपरान्त होने पर श्रम की आपूर्ति घटने लगती है क्योंकि श्रमिक अपनी बढ़ी हुई आय को अधिक आरामदायक गतिविधियों पर उपयोग करने लगते हैं।

श्रम की आपूर्ति को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Affecting Labour Supply)

वास्तविक मजदूरी दर पर काम करने के लिए तैयार श्रमिकों की संख्या को प्रभावित कर सकने वाले किसी भी कारक से श्रम का पूर्ति वक्र दायीं ओर विवर्तित हो जाएगा। वृहत् आर्थिक स्तर पर, श्रम की आपूर्ति को प्रभावित करने वाला सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारक काम करने योग्य आयुवर्ग वाली जनसंख्या का आकार है जो घरेलू जन्मदर, प्रवास तथा अप्रवास दरों एवं श्रम बल में सम्मिलित होने एवं सेवानिवृत्त होने की आयु पर निर्भर करता है।

श्रम की आपूर्ति को प्रभावित करने वाले निम्नलिखित कारक हैं—

1. मौसम एवं प्राकृतिक दशाएँ भी श्रम की पूर्ति को प्रभावित करती हैं।
2. देश की आर्थिक नीतियाँ एवं श्रम कानून भी श्रम की आपूर्ति पर प्रभाव डालते हैं।
3. मजदूरी दरों में वृद्धि तथा आराम या अवकाश के मध्य अनधिमान श्रम की पूर्ति को प्रभावित करता है।
4. देश में जनसंख्या का आकार एवं आयु वर्ग वितरण की श्रम की पूर्ति को प्रभावित करता है।
5. मजदूरी दर एवं सेवा शर्तें भी श्रम की पूर्ति को प्रभावित करेंगी।
6. श्रम की गतिशीलता भी श्रम की आपूर्ति को प्रभावित करती है। जब श्रमिक एक कारखाने से दूसरे कारखाने में या एक नगर से दूसरे नगर में गतिशील होते हैं तब श्रम की पूर्ति पर प्रभाव पड़ता है।
7. मजदूरी प्रतिस्थापन प्रभाव के कारण श्रम की पूर्ति प्रभावित होती है क्योंकि श्रमिकों को मजदूरी के विकल्प मिलने पर उनकी पूर्ति प्रभावित होती है।

❑

TOUCH 'n' PASS

UNIT-VIII

कल्याणकारी एवं नवकल्याणकारी अर्थशास्त्र
Welfare and New Welfare Economics

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. पीगू द्वारा प्रतिवादित आर्थिक कल्याण की परिभाषा दीजिए।

Define economic welfare as propounded by Pigou.

उत्तर पीगू के अनुसार, "आर्थिक कल्याण सामाजिक कल्याण का वह भाग है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मुद्रारूपी पैमाने के साथ सम्बन्धित किया जाता है।"

प्र.2. कल्याण जाँचने की पेरेटो की कसौटी से आप क्या समझते हैं?

What do you understand by Pareto's criterion to check welfare?

उत्तर कल्याण जाँचने की पेरेटो की कसौटी के अनुसार, आर्थिक कल्याण की दृष्टि से एक परिवर्तन को वांछनीय या सुधार लाने वाला तभी कहा जा सकता है, जबकि वह परिवर्तन बिना कोई हानि पहुँचाए कम-से-कम एक व्यक्ति की स्थिति को अच्छा करता है।

प्र.3. सामाजिक कल्याण फलन से क्या अभिप्राय है?

What do you understand by social welfare function?

उत्तर सामाजिक कल्याण फलन से आशय है कि सामाजिक कल्याण फलन या तो किसी समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण का फलन होता है या फिर समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा उपभोग की गई वस्तुओं तथा प्रदत्त सेवाओं का फलन है।

प्र.4. उन अर्थशास्त्रियों के नाम बताइए, जिन्होंने सामाजिक कल्याण फलन का पुनर्निर्माण किया हो। इन्होंने यह कसौटी किस हेतु प्रस्तुत की थी?

Name the economists who restored the social welfare function. Why did they present this criterion?

उत्तर जिन अर्थशास्त्रियों ने सामाजिक कल्याण फलन का पुनर्निर्माण किया, उनके नाम बर्गसन, सैमुअल्सन, टिंटनर तथा ऐरे आदि हैं। इन्होंने नये कल्याणकारी अर्थशास्त्र द्वारा नैतिक निर्णयों से स्वतन्त्र कसौटी प्रस्तुत करने की असमर्थता के कारण यह कसौटी प्रस्तुत की गई।

प्र.5. समाज कल्याण फलन से आप क्या समझते हैं?

What do you understand by social welfare function?

उत्तर जिन पर समाज का कल्याण निर्भर करता है, समाज कल्याण फलन उन साधनों को प्रकट करता है।

प्र.6. नव कल्याणकारी अर्थशास्त्र से क्या अभिप्राय है?

What do you mean by New Welfare Economies?

उत्तर काल्डोर-हिक्स एवं साइटोवस्की द्वारा निर्मित कल्याणकारी अर्थशास्त्र को नव कल्याणकारी अर्थशास्त्र कहते हैं।

प्र.7. नव कल्याणकारी अर्थशास्त्र की कोई दो प्रमुख मान्यताएँ बताइए।

Write any two main assumptions of new welfare economies.

उत्तर नव कल्याणकारी अर्थशास्त्र की दो प्रमुख मान्यताएँ निम्नलिखित हैं—

1. प्रत्येक व्यक्ति की रुचियाँ स्थिर हैं।
2. उत्पादन एवं उपभोग में बाह्य प्रभावों का अभाव रहता है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.8. काल्डोर-हिक्स कसौटी की कोई एक प्रमुख आलोचना लिखिए।
Write any one main criticism of Kaldor-Hicks Criterion.

उत्तर डॉ० लिटिल के शब्दों में, "काल्डोर-हिक्स का क्षतिपूर्ति सिद्धान्त कल्याण में वृद्धि की कसौटी नहीं अपितु परिभाषा मात्र है, क्योंकि वह आय वितरण पर ध्यान नहीं देता।"

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. वास्तविक अर्थशास्त्र तथा कल्याणकारी अर्थशास्त्र में क्या अन्तर हैं? स्पष्ट कीजिए।
What is the difference between actual economics and welfare economics? Make clear.

उत्तर वास्तविक अर्थशास्त्र तथा कल्याणकारी अर्थशास्त्र में निम्नलिखित अन्तर हैं—

1. वास्तविक अर्थशास्त्र व्याख्या करता है, जबकि कल्याणकारी अर्थशास्त्र सुझाव देता है।
2. वास्तविक अर्थशास्त्र में एक सिद्धान्त की जाँच करने का सामान्य तरीका उसके निष्कर्षों की जाँच करता है जबकि कल्याणकारी अर्थशास्त्र में एक कल्याण कथन जाँच करने का सामान्य तरीका उसकी मान्यताओं की जाँच करता है।
3. वास्तविक अर्थशास्त्र किसी आर्थिक घटना एवं कार्यप्रणाली के कार्यकरण को समझने, व्याख्या करने और भविष्यवाणी करने से सम्बन्धित है जबकि कल्याणकारी अर्थशास्त्र दिए हुए वांछित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए नीतिगत सुझाव देता है।

प्र.2. कल्याणकारी अर्थशास्त्र से किसे कहते हैं? संक्षेप में समझाइए।
What is welfare economics? Explain in brief.

उत्तर आर्थिक सिद्धान्त की वह महत्त्वपूर्ण शाखा जो सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने की दृष्टि से आर्थिक नीतियों का विश्लेषण करती है, कल्याणकारी अर्थशास्त्र कहलाती है। **प्रो० साइटोवस्की** के शब्दों में, "कल्याणकारी अर्थशास्त्र आर्थिक सिद्धान्त के सामान्य शरीर का वह भाग है जो प्रमुख रूप से नीति से सम्बन्ध रखता है।" वास्तव में, यह एक आदर्शवादी अध्ययन है जो निर्णय तथा सुझाव से सम्बद्ध रहता है। यह कुछ कथनों को प्रस्तुत करता है जिनके आधार पर सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने हेतु सिद्धान्तों तथा नीतियों का निर्धारण किया जा सके और कुछ ऐसी कसौटियों का प्रतिपादन करता है, जिनके आधार पर सरकारी नीतियों के औचित्य का परीक्षण किया जा सके।

इस प्रकार कल्याणकारी अर्थशास्त्र स्वभाव से आदर्शात्मक अध्ययन है। इसका उद्देश्य सामाजिक लाभ को अधिकतम करना है। अत: इसका स्वभाव आदर्शात्मक है। इसलिए **डॉ० लिटिल** (I.M.D. Little) ने सत्य ही कहा है—"कल्याणकारी अर्थशास्त्र आदर्शवादी अध्ययन है।" साथ ही यह अध्ययन वैज्ञानिक भी है क्योंकि इसमें वांछित लक्ष्यों (Desired ends) को प्राप्त करने के लिए निर्मित की जाने वाली नीतियों का अध्ययन किया जाता है।

प्र.3. वास्तविक तथा आदर्शात्मक अर्थशास्त्र की प्रमुख परिभाषाएँ लिखिए।
Give the main definitions of positive and normative economics.

उत्तर वास्तविक अर्थशास्त्र—वास्तविक अर्थशास्त्र आर्थिक घटनाओं के कारण तथा परिणाम के सम्बन्ध का अध्ययन करता है। यह यथार्थ विज्ञान के रूप में वास्तविक घटनाओं की व्याख्या करता है और उनका यथार्थ रूप में वर्णन करता है।

आदर्शात्मक अर्थशास्त्र—आदर्शात्मक विज्ञान के रूप में अर्थशास्त्र किसी आर्थिक क्रिया अथवा नीति की अच्छाई अथवा बुराई के विषय में नैतिक विचारों पर न्याय करता है। आदर्शात्मक अर्थशास्त्र के अन्तर्गत किसी आर्थिक नीति की वांछनीयता अथवा अवांछनीयता की व्याख्या की जाती है। इस प्रकार अर्थशास्त्र के आदर्शात्मक पहलू का सम्बन्ध 'क्या होना चाहिए' से होता है। वास्तव में अर्थशास्त्र का आदर्शात्मक पहलू ही कल्याणकारी अर्थशास्त्र का आधार है। हाल के वर्षों में कल्याणकारी अर्थशास्त्र का पर्याप्त विकास हुआ है। कल्याणकारी अर्थशास्त्र का विचार **जे० बेन्थम** (J. Bentham) ने उपयोगितावाद (Utilitarianism) के नाम से बहुत पहले ही दिया था किन्तु इसे कल्याणकारी अर्थशास्त्र के रूप में नहीं जाना जाता था। इसके पश्चात् मार्शल, पीगू (Pigou), काल्डोर (Kaldor), हिक्स (Hicks), साइटोवस्की (Scitovsky), पेरेटो, सैमुअल्सन, बर्गसन (Bergson), ग्राफ (Graff), लिटिल (Little), ऐरो (Arrow) एवं रेडर आदि अर्थशास्त्रियों ने कल्याणकारी अर्थशास्त्र के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

प्र.4. पीगू की दशाओं की मान्यताएँ कौन-कौन सी है? संक्षेप में समझाइए।

What are the assumptions of Pigou's conditions? Explain in brief.

उत्तर पीगू की दशाओं की मान्यताएँ निम्नलिखित हैं—

1. उपभोक्ता द्वारा किसी भी वस्तु के क्रय के दौरान मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता स्थिर रहती है।
2. उपयोगिता की अन्त:वैयक्तिक तुलनाएँ की जा सकती हैं।
3. प्रत्येक व्यक्ति विभिन्न वस्तुओं तथा सेवाओं पर किए गए अपने व्यय से अपनी सन्तुष्टि को अधिकतम करने का प्रयत्न करता है। अर्थात् प्रत्येक उपभोक्ता विवेकपूर्ण ढंग से कार्य करता है।
4. उपयोगिता को मुद्रा के रूप में मापा जा सकता है।
5. आय के सम्बन्ध में ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता का नियम (Law of Diminishing Utility) लागू होता है। इसका आशय यह है कि जब आय बढ़ती है तो आय की सीमान्त उपयोगिता कम हो जाती है।
6. अन्तिम मान्यता है सन्तुष्टि के लिए समान क्षमता जिसका अर्थ है कि विभिन्न व्यक्ति समान वास्तविक आय से समान सन्तुष्टि प्राप्त करते हैं।

प्र.5. समाज कल्याण फलन की परिभाषा, विशेषताएँ एवं मान्यताएँ लिखिए।

Write the definition, characteristics and assumptions of social welfare function.

उत्तर समाज कल्याण फलन की परिभाषा—समाज कल्याण फलन उन साधनों को दर्शाता है जिन पर एक समाज का कल्याण निर्भर करता है। **प्रो० बर्गसन** के अनुसार—"या तो समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण का फलन होता है, या फिर समुदाय के प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा उपभोग की गई वस्तुओं तथा प्रदान की गई सेवाओं का फलन है।" इस प्रकार यह वह फलन है जो समाज कल्याण तथा उन सम्भव चरों (Variables) के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है जो कि प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण को प्रभावित करते हैं। यह सामाजिक कल्याण फलन, प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण जो अपने निजी कल्याण एवं समुदाय के सभी सदस्यों के कल्याण-वितरण के मूल्यांकन पर निर्भर करता है, का फलन है। इस प्रकार "समाज कल्याण फलन समाज के कल्याण का क्रमसंख्यात्मक सूचक तथा व्यक्तिगत उपयोगिता का फलन होता है।"

इसको निम्न सूत्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है—

$$W = F(U_1, U_2, ..., U_n)$$

जहाँ, W = कल्याण फलन।

समाज कल्याण फलन की विशेषताएँ—कल्याण फलन की निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएँ हैं—

1. सामाजिक कल्याण फलन स्पष्ट रूप से नैतिक निर्णयों को शामिल करता है और उपयोगिता की अन्त:वैयक्तिक तुलनाओं को स्वीकार करता है। यह उपयोगिता के क्रमवाचक विचार पर आधारित है।
2. यह स्वाभाविक रूप से अत्यधिक सामान्य है। इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का कल्याण वस्तुओं तथा सेवाओं के केवल अपने स्वयं के ही उपभोग पर नहीं अपितु अन्य व्यक्तियों के उपभोग पर निर्भर करता है।
3. यह उन सब तत्त्वों या चरों को बताता है जिन पर समाज के सभी व्यक्तियों का कल्याण निर्भर करता है।

समाज कल्याण फलन की मान्यताएँ—बर्गसन का समाज कल्याण फलन निम्नलिखित मान्यताओं के उपभोग पर भी निर्भर करता है—

1. यह बाह्य मान्यताओं एवं अमितव्ययिताओं तथा उनके परिणामी प्रभावों की उपस्थिति को मानकर चलता है।
2. यह मान लेता है कि कल्याण में नैतिक मूल्यों को स्पष्ट रूप से सम्मिलित कर लेना चाहिए।
3. उपयोगिता की अन्त:वैयक्तिक तुलनाएँ सम्भव हैं।
4. यह उपयोगिता के क्रमवाचन विचार पर आधारित है।
5. सामाजिक कल्याण प्रत्येक व्यक्ति के धन तथा आय पर निर्भर करता है और प्रत्येक व्यक्ति का कल्याण उसकी निजी सम्पत्ति और आय पर समाज के सदस्यों के कल्याण के वितरण पर निर्भर करता है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.6. समाज कल्याण फलन की प्रमुख आलोचनाओं को संक्षेप में लिखिए।

Write the main criticisms of social welfare function in brief.

उत्तर प्रो० सैमुअल्सन के शब्दों में सामाजिक कल्याण फलन "उतना ही व्यापक, रिक्त तथा आवश्यक बन गया, जितनी कि भाषा।" यह कल्याणकारी अर्थशास्त्र में प्रमुख भूमिका निभाता है। **डॉ० लिटिल** (Dr. Little) के अनुसार—"यह कल्याणकारी अर्थशास्त्र की औपचारिक गणितीय व्यवस्था को पूर्ण बनाता है।" साइटोवस्की इसे 'पूर्ण रूप से सामान्य' मानते हैं, परन्तु इसकी कुछ सीमाएँ भी हैं—

1. **डॉ० लिटिल** के मतानुसार व्यवस्था चाहे अधिकेन्द्रित हो चाहे लोकतन्त्रीय सामाजिक कल्याण फलन का यह विचार अव्यावहारिक है।
2. सामाजिक कल्याण फलन प्रत्येक व्यक्ति के अधिमानों का योग होता है, परन्तु कठिनाई यह है कि व्यक्तिगत अधिमानों को समान महत्त्व दिया जाए या भिन्न-भिन्न। इससे समाज कल्याण फलन का निर्माण कठिन हो जाता है।
3. समाज कल्याण फलन को व्यक्त करने वाले सभी समीकरण तथा वक्र मनमाने तथा काल्पनिक होते हैं।
4. **प्रो० ऐरो** के अनुसार कि यदि व्यक्तियों को दो से अधिक विकल्पों में से चुनाव करना पड़े तो क्रमसंख्यात्मक अधिमानों के आधार पर समाज कल्याण फलन के निर्माण से परस्पर विरोधी परिणाम प्राप्त होते हैं।
   इसे नीचे दी गई सारणी द्वारा स्पष्ट किया गया है—

व्यक्ति	वैकल्पिक समाज स्थितियाँ		
	X	Y	Z
A	3	2	1
B	1	3	2
C	2	1	3

   उपरोक्त सारणी के अनुसार व्यक्ति A पसन्द करता है X को Y की अपेक्षा, Y को Z की अपेक्षा और इसलिए X को Z की अपेक्षा।
   व्यक्ति B पसन्द करता है Y को Z की अपेक्षा, Z को X की अपेक्षा और इसलिए Y को X की अपेक्षा।
   व्यक्ति C पसन्द करता है Z को X की अपेक्षा, X को Y की अपेक्षा और इसलिए Z को Y की अपेक्षा।
   यदि व्यक्तिगत पसन्द को बराबर महत्त्व दिया जाए तो बहुमत नियम के आधार पर समाज फलन बनाया जा सकता है, परन्तु इसमें हमें दो परस्पर विरोधी परिणाम प्राप्त होते हैं—
   (i) बहुमत पसन्द करता है X को Y की अपेक्षा और Y को Z की अपेक्षा और इसलिए X को Z की अपेक्षा।
   (i) बहुमत पसन्द करता है Z को X की अपेक्षा।
   इस प्रकार यह विरोधाभास को प्रकट करता है—
5. व्यावहारिक दृष्टि से यह कम महत्त्वपूर्ण है।
6. यह सिद्धान्त अन्त:वैयक्तिक तुलना और नैतिक निर्णय आदि दोषों से युक्त है।
7. यह विचार अत्यन्त औपचारिक है जिसका सामाजिक जीवन और चयन के उपयोगी तथ्यों से बहुत कम सम्बन्ध है।

प्रो० बॉमोल के अनुसार, "समाज कल्याण फलन कल्याणकारी निर्णयों का संग्रह करने के लिए उस सामान तथा आदेशों के सैट से लैस होकर नहीं जाता, जिसकी इसे जरूरत पड़ती है।"

प्र.7. समाज कल्याण एवं व्यक्ति कल्याण की विस्तृत विवेचना कीजिए।

Give a detailed discussion of social welfare and individual welfare.

उत्तर

समाज कल्याण एवं व्यक्ति कल्याण
(Social Welfare and Individual Welfare)

समाज कल्याण से तात्पर्य एक ग्रुप या सोसाइटी का कल्याण है जिसमें सब व्यक्ति सम्मिलित हैं। एक तरह से, वह व्यक्ति-कल्याणों का योग होता है। परन्तु व्यक्ति की भाँति समाज का मन या चेतना नहीं है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति दूसरों से भिन्न रूप से सोचता और काम करता है। इसलिए, समाज का कोई चुनाव-विस्तार सूचक समाज कल्याण को प्रकट नहीं कर

सकता। इस प्रकार समाज कल्याण का कार्य एक समाज के सब व्यक्तियों की सन्तुष्टियों या उपयोगिताओं का समष्टीकरण (aggregation)। समाज कल्याण की माप के सम्बन्ध में दो प्रमुख धारणाएँ हैं।

प्रथम, 'पेरेटो उन्नति अथवा सुधार' (Pareto Improvement) से सम्बन्धित है जिससे समाज कल्याण उस समय बढ़ता है, जब किसी भी व्यक्ति की स्थिति पहले से बुरी हुए बिना समस्त समाज की स्थिति पहले से अच्छी हो जाए। इस प्रस्थापना में यह बात भी शामिल है कि एक या अधिक व्यक्तियों की स्थिति पहले से अच्छी हो जाती है तो सम्भव है कि कुछ व्यक्ति पहले से न तो अच्छी और न ही बुरी स्थिति में हों। यह अन्त:वैयक्तिक तुलनाओं (interpersonal comparisons) से मुक्त है। हिक्स, काल्डोर और साइटोवस्की ने पेरेटो के अर्थ में क्षतिपूर्ति सिद्धान्त द्वारा समाज कल्याण की व्याख्या की है।

दूसरे, समाज कल्याण उस समय बढ़ता है, जब कल्याण का वितरण किसी रूप में पहले से अच्छा हो। समाज में दूसरों की अपेक्षा कुछ व्यक्तियों की स्थिति पहले से अच्छी बना देता है जिससे कल्याण का अपेक्षाकृत अधिक उचित वितरण हो जाता है। परन्तु **डॉ० ग्राफ** ने एक और धारणा का वर्णन किया है जिसे उसने पैतृक धारणा (paternal concept) की संज्ञा दी है। एक राज्य या पैतृक सत्ता अपने ही विचार के अनुसार समाज कल्याण को अधिकतम बनाती है और समाज के व्यक्तियों के विचारों पर कोई ध्यान नहीं देती। अर्थशास्त्री समाज कल्याण के माप के लिए इस धारणा का प्रयोग नहीं करते क्योंकि यह तानाशाही शासन से सम्बद्ध होती है और प्रजातन्त्र के साथ मेल नहीं खाती।

प्रोफेसर पीगू के अनुसार, "एक व्यक्ति का कल्याण उनके मन की स्थिति या चेतना में रहता है, जो कि उसकी सन्तुष्टियों या उपभोगिताओं से बनती है।" परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री अधिमानों के एक दिए हुए पैमाने के रूप में उसकी व्याख्या करते हैं। जब एक व्यक्ति की स्थिति पहले से अच्छी हो जाए, या जब वह समझने लगे कि उसके कल्याण में वृद्धि हो गई है, तब हम उपकल्पना (hypothesis) के रूप में यह कहते हैं कि व्यक्ति का कल्याण बढ़ गया है। परन्तु यह सम्भव नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति से यह पूछा जाए कि उसका कल्याण बढ़ा है या नहीं। जब कभी एक व्यक्ति का अब तक अप्राप्य वस्तुओं का चुनाव सूचक (choice index) विस्तृत हो जाता है तो यह कहा जाता है कि उसका कल्याण बढ़ गया है, बशर्ते कि उसकी रुचियों में परिवर्तन न हुआ हो। इस प्रकार **डॉ० मिशन** (Mishan) चुनाव-विस्तार सूचक का सुझाव देता है।

इस प्रकार आर्थिक कल्याण का अर्थ है वह समाज कल्याण जिससे पेरेटो उन्नति या वितरणात्मक उन्नति या दोनों प्रकार की उन्नति हो।

प्र.8. क्षतिपूर्ति सिद्धान्त की मान्यताएँ कौन-सी हैं? संक्षेप में लिखिए।

What are the assumptions of compensation principle? Write in brief.

उत्तर 'क्षतिपूर्ति सिद्धान्त' कुछ निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है—(1) यह सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि व्यक्तियों के आस्वाद (tastes) स्थिर ही रहते हैं। (2) उत्पादन एवं उपभोग में कोई बाह्य प्रभाव (external effects) नहीं होते। (3) उपयोगिता की कोई गणन-संख्यात्मक माप नहीं होती और न ही आर्थिक कल्याण की कोई अन्त:वैयक्तिक तुलनाएँ ही सम्भव हो सकती हैं। (4) प्रत्येक व्यक्ति की सन्तुष्टियाँ दूसरों से स्वतन्त्र होती हैं जिससे सभी व्यक्ति अपने आर्थिक कल्याण के सर्वोत्तम मूल्यांकन-कर्ता (best judge) होते हैं। (5) यहाँ पर यह मान लिया गया है कि वितरण की समस्या को उत्पादन की समस्या से पृथक् किया जा सकता है।

फलस्वरूप यह विश्लेषण सामाजिक कल्याण पर केवल उत्पादन-परिवर्तनों के पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या करता है।

प्र.9. साइटोवस्की विरोधाभास क्या है? चित्र की सहायता से स्पष्ट कीजिए।

What is Scitovsky Paradox? Make clear with a diagram.

उत्तर **टिबोर साइटोवस्की** ने काल्डोर-हिक्स मापदण्ड में निहित अन्त:विरोध की ओर संकेत करते हुए उसकी आलोचना की है। उनके मतानुसार काल्डोर-हिक्स मापदण्ड के दृष्टिकोण से यह सम्भव है कि Y स्थिति, X स्थिति में श्रेष्ठ हो और इसी सत्य को ध्यान में रखते हुए समाज X स्थिति से निकलकर Y स्थिति में प्रविष्ट हो जाए। यही मानदण्ड यह भी स्पष्ट कर सकता है कि Y स्थिति से पुन: X स्थिति को परिवर्तन भी अधिक सामाजिक कल्याण प्रदर्शित करता है।

इस प्रकार एक समय Y स्थिति, X स्थिति की तुलना में श्रेष्ठतर है तथा किसी अन्य समय में X स्थिति, Y स्थिति की तुलना में श्रेष्ठ सिद्ध होती है, जिसे वास्तव में हीन होना चाहिए। लेकिन एक बार यदि समाज X स्थिति से निकलकर Y स्थिति में

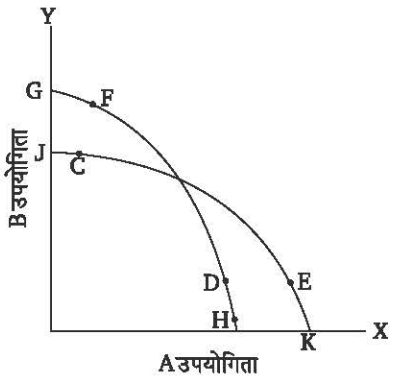

चित्र 1

प्रविष्ट हो जाता है तो साइटोवस्की के मतानुसार वही काल्डोर-हिक्स मापदण्ड कल्याण-वृद्धि के आधार को लेकर Y स्थिति से X स्थिति की ओर समाज की पुन: वापसी का समर्थन करता है। काल्डोर-हिक्स मापदण्ड में निहित इस अन्त:विरोध को अक्सर **'साइटोवस्की विरोधाभास'** की संज्ञा दी जाती है।

साइटोवस्की विरोधाभास की उपयोगिता सम्भावना वक्र द्वारा व्याख्या की जा सकती है। जिसे चित्र 1 में GH तथा JK उपयोगिता सम्भावना वक्र से व्यक्त किया गया है। चित्र में C स्थिति D की अपेक्षा अधिक सामाजिक कल्याण को दर्शाती है लेकिन बिन्दु F बिन्दु C की तुलना में दोनों व्यक्तियों की उपयोगिता में वृद्धि को प्रदर्शित करता है। इसलिए एक बार बिन्दु C स्थिति श्रेष्ठ है तथा दूसरी बार बिन्दु D स्थिति श्रेष्ठ है क्योंकि D बिन्दु GH उपयोगिता सम्भावना वक्र पर है जो बिन्दु F से होकर जाता है। यह स्थिति असंगत है, इसे ही साइटोवस्की विरोधाभास कहते हैं।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. कल्याणकारी अर्थशास्त्र की अवधारणा बताइए तथा वास्तविक एवं कल्याणकारी अर्थशास्त्र में अन्तर लिखिए।
Describe the concept of welfare economics and write the difference between positive and welfare economics.

उत्तर

कल्याणकारी अर्थशास्त्र
(Welfare Economics)

आर्थिक सिद्धान्त की वह महत्त्वपूर्ण शाखा है, जो सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने की दृष्टि से आर्थिक नीतियों का विश्लेषण करती है। कल्याणकारी अर्थशास्त्र की अवधारणा कहलाती है। **प्रो० साइटोवस्की** के शब्दों में, "कल्याणकारी अर्थशास्त्र आर्थिक सिद्धान्त के सामान्य शरीर का वह भाग है जो प्रमुख रूप से नीति से सम्बन्ध रखता है।" वास्तव में, यह एक आदर्शवादी अध्ययन है जो निर्णय तथा सुझाव से सम्बद्ध रहता है। यह कुछ कथनों को भी प्रस्तुत करता है जिनके आधार पर सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने के लिए सिद्धान्तों तथा नीतियों का निर्धारण किया जा सके तथा कुछ ऐसी कसौटियों का प्रतिपादन करता है जिनके आधार पर सरकारी नीतियों के औचित्य का परीक्षण किया जा सके।

इस प्रकार कल्याणकारी अर्थशास्त्र स्वभाव से आदर्शात्मक अध्ययन है। इसका प्रमुख उद्देश्य सामाजिक लाभ को अधिकतम करना है। इस तरह इसका स्वभाव आदर्शात्मक है। इसलिए **डॉ० लिटिल** (I.M.D. Little) ने सत्य ही कहा है, "कल्याणकारी अर्थशास्त्र आदर्शवादी अध्ययन है। साथ ही यह अध्ययन वैज्ञानिक भी है क्योंकि इसमें वांछित लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु निर्मित की जाने वाली नीतियों का अध्ययन किया जाता है। सरकार नीतियों पर वांछनीयता के सिद्धान्त को लागू करने का प्रयास करती है।" **प्रो० ऑस्कर लैंगे** के अनुसार, "कल्याणकारी अर्थशास्त्र उन दशाओं से सम्बन्धित है जो किसी समाज के कल्याण को निर्धारित करती हैं.....कल्याणकारी अर्थशास्त्र व्यवहारों के उन प्रतिमानों को निर्धारित करता है जो आर्थिक क्रियाओं की सामाजिक विवेकशीलता की आवश्यकता को पूरा करते हैं।"

इस प्रकार संक्षेप में, कल्याणकारी अर्थशास्त्र को हम इस प्रकार भी परिभाषित कर सकते हैं, "कल्याणकारी अर्थशास्त्र आर्थिक विश्लेषण की वह शाखा है जिसका सम्बन्ध मुख्यत: ऐसी कसौटियों का प्रतिपादन करना है जिनके आधार पर नीतियों का विकास करके सामाजिक कल्याण को अधिकतम बनाया जा सके।"

वास्तविक अर्थशास्त्र एवं कल्याणकारी अर्थशास्त्र में अन्तर
(Difference between Positive and Welfare Economics)

वास्तविक अर्थशास्त्र एवं कल्याणकारी अर्थशास्त्र में निम्नलिखित अन्तर हैं—

1. **प्रो० ग्राफ** ने इस अन्तर को इन शब्दों में व्यक्त किया है—"कल्याणवादी अर्थशास्त्र में पकवान का असली परिणाम उसे खाने पर ही मिल सकता है। दूसरी ओर, कल्याणकारी केक खाने में इतना सख्त है कि उसे पकाने से पहले हमें उसके उपकरणों के गुणों की जाँच करनी चाहिए।" वास्तविक अर्थशास्त्र में निष्कर्ष अथवा कथन मान्यताओं के एक समूह के आधार पर निकाले जाते हैं। कल्याणकारी अर्थशास्त्र के कथन भी मान्यताओं के एक समूह के आधार पर ही निकाले जाते हैं, लेकिन इनमें एक विशेष अन्तर है—"वास्तविक अर्थशास्त्र में एक सिद्धान्त की जाँच करने का सामान्य तरीका उसके निष्कर्षों की जाँच करना है, जबकि कल्याणकारी अर्थशास्त्र में एक कल्याण कथन की जाँच करने का सामान्य तरीका उसकी मान्यताओं की जाँच करना है।"

2. वास्तविक अर्थशास्त्र किसी आर्थिक घटना तथा कार्य-प्रणाली के कार्यकारण को समझने, व्याख्या करने तथा भविष्यवाणी करने से सम्बन्धित है, जबकि कल्याणकारी अर्थशास्त्र दिए हुए वांछित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए नीति सम्बन्धी सुझावों को बताता है। संक्षेप में, "वास्तविक अर्थशास्त्र का समस्त ढाँचा वैकल्पिक नीतियों से प्राप्त होने वाले परिणामों की भविष्यवाणी करने में सहायक होता है और कल्याणकारी अर्थशास्त्र में इसका प्रयोग किसी दिए हुए विशेष उद्देश्य को अधिकतम रूप में प्राप्त करने के लिए उचित नीति को बनाने में सहायक होता है।"
3. वास्तविक अर्थशास्त्र का कार्य व्याख्या करना है तथा कल्याणकारी अर्थशास्त्र का कार्य सझाव देना है।

प्र.2. सामान्य कल्याण तथा आर्थिक कल्याण से आप क्या समझते हैं? कल्याणकारी अर्थशास्त्र में मूल्य निर्णय को स्पष्ट रूप से समझाइए।

What do you understand by general welfare and economic welfare? Make clear value judgement in economic welfare.

उत्तर

सामान्य कल्याण तथा आर्थिक कल्याण
(General Welfare and Economic Welfare)

सामान्य कल्याण एक बहुत विस्तृत, जटिल तथा अव्यावहारिक धारणा है। सामान्य कल्याण से आशय उन सभी आर्थिक तथा गैर-आर्थिक वस्तुओं तथा सेवाओं से है जो किसी समाज में रह रहे व्यक्तियों को उपयोगिताएँ या सन्तुष्टियाँ प्रदान करती हैं। **पीगू** के शब्दों में, आर्थिक कल्याण सामान्य कल्याण का वह भाग है जो कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मुद्रा के मापदण्ड से सम्बद्ध किया जा सकता है।" सरल शब्दों में, पीगू के दृष्टिकोण से आर्थिक कल्याण का अर्थ है—एक व्यक्ति द्वारा आर्थिक वस्तुओं तथा सेवाओं के प्रयोग से सन्तुष्टि अथवा उपयोगिता प्राप्त करना अथवा उनसे जो मुद्रा में विनिमय की जा सकती हैं।

लेकिन **डॉ० ग्राफ**, पीगू के आर्थिक कल्याण के विचार से दो कारणों से सहमत नहीं हैं। **पहला**, मुद्रा आर्थिक कल्याण के माप के रूप में सन्तोषजनक तथा सही नहीं है क्योंकि कीमत स्तर में परिवर्तनों के साथ मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन होते हैं। **दूसरा**, आर्थिक कल्याण विनिमय-योग्य वस्तुओं तथा सेवाओं पर निर्भर नहीं करता क्योंकि जहाँ तक एक व्यक्ति के मन की स्थिति है, आर्थिक तत्त्वों को गैर-आर्थिक तत्त्वों से अलग करना सम्भव नहीं है।

इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **प्रोफेसर रॉबसन** का मत है कि "कल्याण की धारणा कई मानसिक स्थितियों का समावेश करती है, कुछ केवल 'शारीरिक', कुछ अधिक आध्यात्मिक प्रकृति की और कुछ उद्देश्यों के लिए, उन्हें विभिन्न श्रेणियों में विभाजित करना रोचक हो सकता है। परन्तु 'आर्थिक' श्रेणी उनमें सम्मिलित नहीं होगी। इस विचार से, मन की कोई आर्थिक स्थितियाँ नहीं हैं। परन्तु मन की स्थितियाँ स्वयं आर्थिक नहीं हैं।"

वास्तव में, किसी व्यक्ति का कल्याण आर्थिक तथा गैर-आर्थिक दोनों ही तत्त्वों पर निर्भर होता है। इसका मुख्य कारण है कि गैर-आर्थिक तत्त्वों की गणना सम्भव नहीं है, इसलिए डॉ० ग्राफ का विचार है कि कल्याण सिद्धान्त में गैर-आर्थिक तत्वों को स्थिर मानते हुए केवल आर्थिक तत्त्वों पर ही विचार करना चाहिए। आर्थिक एवं सामान्य कल्याण में पीगू द्वारा किए गए अन्तर को स्वीकार करते हुए, रॉबर्ट्सन आर्थिक कल्याण शब्द के स्थान पर *ecfare* शब्द का प्रयोग करना अधिक अच्छा समझता है। दूसरी ओर, बोल्डिंग आर्थिक कल्याण को विनिमय-योग्य वस्तुओं तथा सेवाओं को अवसर लागत के रूप में परिभाषित करता है। इन सभी परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि सभी अर्थशास्त्री पीगू के आर्थिक विचार से किसी-न-किसी रूप में सहमत हैं।

मूल्य निर्णय
(Value Judgements)

वे सभी नैतिक निर्णय और वक्तव्य—जो सिफारिशी, प्रभावात्मक और मनवाने का कार्य करते हैं, मूल्य निर्णय कहलाते हैं। 'कल्याण' एक नीति-विषयक शब्द है। इसलिए समस्त कल्याण प्रस्थापनाएँ नैतिक होती हैं, जिनमें मूल्य निर्णय पाए जाते हैं। 'सन्तुष्टि', 'उपयोगिता' जैसे शब्दों की प्रकृति भी नैतिक होती है, क्योंकि वे भावोत्तेजक हैं। **डॉ० ब्रैंड** (Brandt) के शब्दों में, "एक निर्णय मूल्य निर्णय होता है यदि वह किसी निर्णय के लिए आवश्यक हो या उसका विरोध करे जिसको साधारण तौर पर निम्नलिखित विषयों में से किसी एक को प्रतिपादित किया जा सके, जैसे 'वह एक अच्छी बात है' अथवा 'सामान्य तौर से आवश्यक है', 'निन्दनीय है', और 'सामान्य तौर से प्रशंसनीय है।' मूल्य निर्णय भावोत्तेजक (emotive) ढंग से तथ्यों का वर्णन करते हैं और लोगों को अपने विश्वासों और रुचियों को बदलने की प्रेरणा देते हैं। 'इस परिवर्तन से आर्थिक कल्याण में वृद्धि होगी', 'आर्थिक विकास तेजी से होना चाहिए', 'आय विषमताओं को कम करने की जरूरत है"—इस प्रकार के सभी वक्तव्य मूल्य निर्णय होते हैं

डॉ० लिटिल के अनुसार, "उन्हें इसलिए अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि कल्याण शब्दावली मूल्य शब्दावली है।" इसी प्रकार, 'आर्थिक' के स्थान पर 'समाज', 'समुदाय' या 'राष्ट्रीय' जैसे अत्यन्त भावोत्तेजक शब्द का प्रयोग भी नैतिक होता है। क्योंकि कल्याण अर्थशास्त्र नीति उपायों से सम्बन्ध रखता है, इसलिए इसमें ऐसी नैतिक शब्दावली रहती है जैसे कि 'समाज कल्याण' या 'समाज लाभ' या 'समाज हित'। इस प्रकार कल्याण अर्थशास्त्र तथा नीतिशास्त्र अलग नहीं किए जा सकते। क्योंकि कल्याण प्रस्थापनाओं में मूल्य निर्णय पाए जाते हैं, इसलिए यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या अर्थशास्त्रियों को अर्थशास्त्र में मूल्य निर्णय करने चाहिए?

रॉबिन्स के मत से सहमत होकर अधिकांश अर्थशास्त्रियों ने अन्त:वैयक्तिक तुलनाओं से बचने के लिए पेरेटो के क्रमसंख्यात्मक माप की विधि को अपना लिया था। काल्डोर, हिक्स तथा साइटोवस्की ने क्षतिपूर्ति सिद्धान्त बनाया, जो मूल्य निर्णयों से मुक्त था। इसके अनुसार, अर्थशास्त्री, दक्षता विचारों (efficiency considerations) के आधार पर, नीति-विषयक सिफारिशें कर सकते हैं। आर्थिक दक्षता का वस्तुपरक परीक्षण (objective test) यह है कि एक परिवर्तन से हानि उठाने वालों की अपेक्षा लाभ उठाने वाले अधिक क्षतिपूर्ति कर सकते हैं। परन्तु बढ़ी हुई दक्षता के इस अर्थ में मूल्य निर्णय निहित हैं क्योंकि एक परिवर्तन से लाभ उठाने वाले हानि उठाने वालों की क्षतिपूर्ति कर सकते हैं। क्षतिपूर्ति के विचार में ही मूल्य सुझाव (value prescriptions) निहित हैं। अत: नये कल्याण अर्थशास्त्र के प्रवर्तक भी मूल्य मुक्त (value free) कल्याण अर्थशास्त्र का निर्माण करने में असफल रहे हैं।

इस विषय पर सभी अर्थशास्त्री एकमत नहीं हैं। उपयोगिता का मापन तथा उपयोगिता की अनिवार्य अन्त:वैयक्तिक तुलनाओं (interpersonal comparisons) से नवक्लासिकी अर्थशास्त्रियों का सम्बन्ध था। सन्तुष्टि के लिए समान क्षमता (equal capacity for satisfaction) के मार्शल के सिद्धान्त पर आधारित पीगू की आय-वितरण नीति का तात्पर्य है कि उपयोगिता की अन्त:वैयक्तिक तुलनाएँ सम्भव थीं। 1932 में प्रोफेसर रॉबिन्स ने इस मत पर सीधा प्रहार किया। उसका विचार था कि यदि अर्थशास्त्र को वास्तविक तथा वैज्ञानिक अध्ययन रहना है तो अर्थशास्त्रियों को चाहिए कि अन्त:वैयक्तिक तुलनाएँ न करें, क्योंकि नीति-विषयक सिफारिशें कुछ लोगों की स्थिति पहले से अच्छी और दूसरों की स्थिति पहले से बुरी बना देती हैं। इसलिए अन्त:वैयक्तिक तुलनाएँ करना सम्भव नहीं अर्थात् एक व्यक्ति के कल्याण की दूसरे व्यक्ति के कल्याण के साथ तुलना नहीं की जा सकती।

प्रोफेसर बर्गसन भी रॉबिन्स के मत से सहमत हैं कि अन्त:वैयक्तिक तुलनाओं में मूल्य निर्णय शामिल होते हैं। परन्तु ऐरो (Arrow) और सैमुअल्सन के साथ-साथ उसका भी यह मत है कि मूल्यवादी निर्णयों का समावेश किए बिना कल्याण अर्थशास्त्र में कोई अर्थपूर्ण स्थापना नहीं की जा सकती। अत: कल्याण अर्थशास्त्र आदर्शवादी अध्ययन बन जाता है, जो किसी भी प्रकार अर्थशास्त्रियों को उसके वैज्ञानिक अध्ययन से नहीं रोकता।

'पेरेटो का इष्टतम' व्यक्ति के कल्याण से सम्बद्ध है। इष्टतम स्थिति प्राप्त करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति अपने कल्याण का उत्तम निर्णायक होता है। यदि साधनों के किसी भी पुनर्विभाजन के द्वारा कम-से-कम एक व्यक्ति की स्थिति पहले से अच्छी हो जाए और दूसरों की स्थिति पहले से बुरी न होने पाए तो कहते हैं कि समाज के कल्याण में वृद्धि हुई है। ये सब निर्णय मूल्य निर्णय हैं जिनसे इस बात के बावजूद, कि उनसे उपयोगिता के क्रमसंख्यात्मक (ordinal) माप की विधि का प्रयोग किया था, पेरेटो बच नहीं पाया। पेरेटो का सामान्य इष्टतम सिद्धान्त भी मूल्य मुक्त नहीं है। वह बताता है कि वह स्थिति इष्टतम होती है जिसमें यह सम्भव नहीं कि साधनों का पुनर्विभाजन करके भी कम-से-कम एक व्यक्ति को पहले से बुरी स्थिति में पहुँचाए बिना प्रत्येक व्यक्ति को पहले से अच्छी स्थिति में लाना सम्भव नहीं होता। इस कल्याण प्रस्थापना में कुछ मूल्य निर्णय वर्तमान हैं।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट निष्कर्ष यह निकलता है कि कल्याण अर्थशास्त्र तथा नीतिशास्त्र अलग नहीं हैं तथा अन्त:वैयक्तिक तुलनाएँ या मूल्य निर्णय भी अर्थशास्त्र से अलग नहीं किए जा सकते हैं। सभी प्रजातन्त्रात्मक देश कल्याणकारी राज्य के आदर्श को अपनाते हैं और इस प्रकार के वैधानिक तरीके, जैसे मुफ्त शिक्षा, शराब पर भारी प्रशुल्क, अनिवार्य राष्ट्रीय बीमा आदि मूल्य निर्णय हैं। अर्थशास्त्रियों से आराम कुर्सी में बैठे रहने वाले विद्वान होने की आशा नहीं की जा सकती। वह आलोचना कर सकता है और दक्षता, वितरण तथा औचित्य के आधार पर नीति विषयक सिफारिशें भी कर सकता है। ऐसी सब सिफारिशों में मूल्य निर्णय निहित रहते हैं परन्तु उनका जनमत के अनुरूप होना आवश्यक है। इस प्रोफेसर साइटोवस्की के इस मत से पूर्णतया सहमत हैं कि "इतना सब होने पर भी, यह काम समाज विज्ञान का है कि मूल्य निर्णय और कल्याण वितरण की सिफारिशें करें और अर्थशास्त्री केवल एक समाज-वैज्ञानिक ही नहीं बल्कि इस विषय का प्रतिपादन करने के लिए सम्भवत: सब समाज-वैज्ञानिकों से योग्यतम है।"

प्र.3. पेरेटो के सामान्य कल्याण की मान्यताएँ लिखिए। इसकी दशाओं पर प्रकाश डालते हुए आलोचनाएँ भी दीजिए।
Write assumptions of Pareto's Optimality Law. Throwing light on its conditions, also criticise it.

उत्तर

पेरेटो के सामान्य कल्याण नियम की मान्यताएँ
(Assumptions of Pareto's Optimality Law)

पेरेटो के सामान्य कल्याण की सीमान्त या प्रथम कोटि की दशाएँ निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित हैं—

1. प्रत्येक व्यक्ति वस्तुओं के विभिन्न संयोगों के मध्य स्वतन्त्र रूप से चुनाव कर सकता है।
2. सभी व्यक्ति अपनी सन्तुष्टि को अधिकतम करने का प्रयत्न करते हैं।
3. प्रत्येक फर्म अपने लाभ को अधिकतम तथा अपनी लागत को न्यूनतम करने का प्रयास करती है।
4. उत्पादन के साधन पूर्णतया गतिशील होते हैं।
5. प्रत्येक उत्पादन इकाई दूसरी इकाई से स्वतन्त्र होती है।
6. प्रत्येक उत्पादक का उत्पादन फलन दिया हुआ है।
7. प्रत्येक वस्तु के उत्पादन में सभी साधन प्रयोग में लाए जाते हैं।
8. प्रत्येक वस्तु विभाज्य होती है।

पेरेटो के सामान्य कल्याण नियम की दशाएँ
(Conditions of Pareto's Optimality Law)

पेरेटो के सामान्य कल्याण नियम की निम्नलिखित दशाएँ हैं—

1. **विशिष्टता की अनुकूलतम मात्रा की दशा**—यह दशा प्रत्येक फर्म द्वारा प्रत्येक वस्तु की अनुकूलतम मात्रा के निर्धारण से सम्बन्धित है। "किन्हीं दो वस्तुओं के बीच रूपान्तरण की सीमान्त दर (*MRT*) किन्हीं भी उन दो फर्मों के लिए समान होनी चाहिए जो कि दोनों वस्तुओं का उत्पादन करती हैं। यदि किन्हीं दो वस्तुओं के बीच *MRT* उन दो फर्मों के लिए समान नहीं है जो कि उन वस्तुओं का उत्पादन करती हैं तो इस बात की सम्भावना रहती है कि दोनों वस्तुओं का संयुक्त उत्पादन बढ़ाया जा सके या बिना किसी दूसरी वस्तु के उत्पादन में कमी किए, एक वस्तु का उत्पादन बढ़ाया जा सके।"
2. **साधन के अनुकूलतम प्रयोग की दशा**—एक वस्तु-विशेष के उत्पादन के लिए एक साधन का सीमान्त उत्पादन दोनों फर्मों के लिए समान होना चाहिए अन्यथा कम उत्पादक प्रयोग से साधन की कुछ मात्रा हटाकर और उसको अधिक उत्पादक प्रयोग में लगाकर कुल उत्पादन की मात्रा में वृद्धि की जा सकती है। अर्थात् किसी साधन या किसी वस्तु के बीच रूपान्तरण की सीमान्त दर उन दो फर्मों के लिए समान होनी चाहिए जो कि उस साधन का प्रयोग करती हैं तथा उस वस्तु का उत्पादन करती हैं।
3. **उत्पादन की अनुकूलतम दशा**—यह दशा आर्थिक कुशलता से सम्बन्धित है जिसका अर्थ है कि विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन इस प्रकार के संयोग में किया जाए जो कि उपभोक्ताओं की पसन्द के अनुकूल हो, अन्यथा वस्तुओं के ऐसे संयोग को उत्पादित करके, जो कि उपभोक्ताओं की पसन्द के साथ अधिक-से-अधिक मेल खाता है, उपभोक्ताओं के कल्याण में वृद्धि की जा सकती है। सरल शब्दों में, "समाज के लिए किन्हीं दो वस्तुओं के बीच रूपान्तरण की सीमान्त दर बराबर या समान होनी चाहिए। उन्हीं दो वस्तुओं के बीच किसी एक उपभोक्ता के लिए प्रतिस्थापन की सीमान्त दर पृथक हो सकती है, जबकि उपभोक्ता उन दोनों वस्तुओं का प्रयोग करता है।"
4. **साधन इकाई के समय के अनुकूलतम वितरण की दशा**—इस दशा का सम्बन्ध किसी एक साधन की एक इकाई के समय के अनुकूलतम वितरण से है, इसका सम्बन्ध कार्य के स्थान पर 'आराम' के प्रतिस्थापन से है। दूसरे शब्दों में, "प्रत्येक साधन (अर्थात मजदूर) के लिए आराम तथा कार्य से प्राप्त वस्तु (या आय) के बीच प्रतिस्थापन की दर वही होनी चाहिए जो कि समस्त समाज के लिए कार्य तथा सामाजिक वस्तु के बीच रूपान्तरण की सीमान्त दर होती है।"
5. **सम्पत्तियों के अन्तःकालीन अनुकूलतम वितरण की दशा**—इस दशा का पूँजी या द्रव्य के उधार लेने या देने से सम्बन्ध है। इसका अर्थ है—"किन्हीं दो समय बिन्दुओं पर भुगतान प्रदान करने वाली सम्पत्तियों या पूँजी के बीच किन्हीं दो व्यक्तियों के लिए प्रतिस्थापन की सीमान्त दर समान होनी चाहिए।" उदाहरण के लिए—यदि एक उत्पादक उधार

लेता है तो इसका अर्थ है कि उधार देने वाले व्यक्ति के लिए ब्याज की दर उधार लेने वाले उत्पादक के लिए द्रव्य की सीमान्त उत्पादकता के बराबर होनी चाहिए।

6. **विनिमय की इष्टतम दशा**—प्रत्येक व्यक्ति के लिए किन्हीं दो वस्तुओं के बीच स्थानापन्नता की सीमान्त दर समान होनी चाहिए, जिसका कि वह उपयोग करता है। दूसरे अर्थात्, दो उपभोक्ता वस्तुओं के बीच स्थानापन्नता की सीमान्त दर (*MRS*) अवश्य उनकी कीमतों के अनुपात के बराबर होनी चाहिए।
7. **साधनों के अनुकूलतम वितरण की दशा**—विभिन्न प्रयोगों में साधनों का वितरण 'अनुकूलतम' होना चाहिए अर्थात् किसी एक वस्तु के उत्पादन हेतु किन्हीं दो साधनों के मध्य तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (*MRTS*) उन दो फर्मों के लिए बरारब होनी चाहिए जो उनको प्रयोग में लाती हैं। यदि यह दशा पूरी नहीं होती है तो इस बात की सम्भावना रहती है कि साधनों को एक फर्म से दूसरी फर्म को हस्तान्तरित करके कुछ उत्पादन में वृद्धि की जा सकेगी।

इस प्रकार उपरोक्त सभी सीमान्त स्थितियों को एक सम्पूर्ण सिद्धान्त के रूप में व्यक्त किया जा सकता है—"किन्हीं दो वस्तुओं और साधनों के बीच स्थानापन्नता की दरें, उनके रूपान्तरण की सीमान्त दरों के बराबर और उनकी कीमतों का अनुपात एक-दूसरे के बराबर होने आवश्यक हैं।"

आलोचना (Criticism)

सीमान्त अथवा प्रथम कोटि की ये दशाएँ अधिकतम कल्याण तक पहुँचने के लिए परमावश्यक हैं लेकिन अधिकतम कल्याण के लिए पर्याप्त नहीं हैं। उसकी अपेक्षा ये वास्तव में न्यूनतम दशा पर भी ले जा सकती हैं। अत: अधिकतम कल्याण प्राप्त करने के लिए प्रथम कोटि की दशाओं के साथ द्वितीय कोटि को सन्तुष्ट करने की आवश्यकता रहती है। द्वितीय कोटि की दशाओं के लिए जरूरी है कि सब उदासीनता वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नतोदर और सब रूपान्तरण वक्र मूल बिन्दु के प्रति नतोदर हों। पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत सभी सीमान्त दशाएँ पूर्ण रूप से सन्तुष्ट होती हैं क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता में ही वस्तु कीमत = सीमान्त लागत और साधन कीमत = साधन की सीमान्त मूल्य उत्पादकता। सीमान्त दशाओं की सन्तुष्टि के लिए पूर्ण प्रतियोगिता की सभी शर्तें आवश्यक हैं इसी कारण अर्थशास्त्री हर प्रतियोगिता मूलक सन्तुलन को पेरेटो इष्टतम और हर पेरेटो इष्टतम को प्रतियोगिता मूलक सन्तुलन बताने लगे हैं। लेकिन पूर्ण प्रतियोगिता की सभी शर्तें कभी पूरी नहीं होती और व्यवहार में अल्पाधिकार, द्वयाधिकार तथा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की स्थिति पायी जाती है। एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत पेरेटो की इष्टतम दशाएँ प्राप्त नहीं हो सकती क्योंकि इस स्थिति में भिन्न-भिन्न उपभोक्ताओं की स्थानापन्नता की सीमान्त दरें समान नहीं होंगी, वस्तुओं और साधनों के बीच स्थानापन्नता की सीमान्त दरें उनके रूपान्तरण की सीमान्त दरों के बराबर नहीं होंगी और न ही उनकी कीमतों के अनुपात समान होंगे। सीमान्त दशाओं के सन्तुष्ट न होने का प्रमुख कारण यह है कि एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के अन्तर्गत कीमत हमेशा सीमान्त लागत से अधिक होती है अर्थात् $P = MC = MR$, जिससे साधनों का कुवितरण हो जाता है।

प्र.4. पीगू की कल्याण की दशाओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
Give a critical evaluation of Pigou's welfare conditions.

उत्तर *'Economics of Welfare'* की रचना प्रो० पीगू ने की थी। उन्होंने अपनी इस पुस्तक में कल्याणकारी अर्थशास्त्र का व्यवस्थित अध्ययन किया है। अर्थशास्त्री प्रो० पीगू को वर्ष कल्याणकारी अर्थशास्त्र का जनक कहा जा सकता है। **डॉ० लिटिल** के अनुसार—"कल्याणकारी अर्थशास्त्र पीगू से आरम्भ हुआ। उससे पहले हमारे पास 'आनन्द अर्थशास्त्र' (Happy Economics) तथा उससे पहले 'धन अर्थशास्त्र' (Wealth Economics) थे।"

किसी व्यक्ति के कल्याण से तात्पर्य उस व्यक्ति की उन सन्तुष्टियों से है जो उसको वस्तुओं और सेवाओं के प्रयोग से प्राप्त होती हैं। अत: कल्याण एक व्यक्तिनिष्ठ (Subjective) विचार है, एक मस्तिष्क की अवस्था है। सामाजिक कल्याण का एक समाज में सभी व्यक्तियों के कल्याण का योग है। चूँकि सामान्य कल्याण (General Welfare) एक बहुत ही विस्तृत, जटिल व अव्यावहारिक अवधारणा है, इसलिए पीगू अपने अध्ययन की सीमा को आर्थिक कल्याण (Economic Welfare) तक सीमित रखते हैं। **प्रो० पीगू** के ही मतानुसार—"आर्थिक कल्याण सामान्य कल्याण का वह भाग है जो कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से

मुद्रारूपी पैमाने के साथ सम्बन्धित किया जा सकता है।'' इस प्रकार आर्थिक कल्याण से अभिप्राय ''एक व्यक्ति द्वारा विनिमय योग्य वस्तुओं और सेवाओं के प्रयोग से प्राप्त सन्तुष्टि या उपयोगिता'' से है।

पीगू की कल्याण दशाएँ—पीगू 'आर्थिक कल्याण' तथा 'राष्ट्रीय आय' को अनिवार्य रूप से सम्बन्धित करता है। उन्होंने स्पष्टत: कहा है कि ''किसी देश के आर्थिक कल्याण प्रत्यक्ष रूप से नहीं, बल्कि आर्थिक कल्याण के उस वस्तुनिष्ठ भाग के निर्माण तथा प्रयोग द्वारा प्रभावित होते हैं, जिसे अर्थशास्त्री राष्ट्रीय आय अथवा राष्ट्रीय लाभांश कहते हैं।'' इस आधार पर वह कल्याण को अधिकतम करने के लिए दो दशाएँ निर्धारित करता है—

1. वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि का अर्थ है, सन्तुष्टि में वृद्धि, जिसका अनिवार्यत: परिणाम होगा 'सामाजिक कल्याण' में वृद्धि। इसके विपरीत, राष्ट्रीय आय में कमी का अर्थ है सन्तुष्टि में कमी जिसका अनिवार्यत: परिणाम होगा 'सामाजिक कल्याण' में कमी।
   इस प्रकार कल्याण उस स्थिति में अधिकतम होगा, जब—
   (i) 'सीमान्त व्यक्तिगत शुद्ध उत्पादन' सीमान्त सामाजिक शुद्ध उत्पादन के समान हो।
   (ii) सभी उद्योगों में 'सीमान्त व्यक्तिगत शुद्ध उत्पादन' समान हो ताकि उत्पादन के साधन एक उद्योग से हटकर दूसरे उद्योग में न जाएँ।
2. यदि राष्ट्रीय आय स्थिर रहती है तो आय का धनिकों से निर्धनों को हस्तान्तरण कल्याण में वृद्धि करेगा। पीगू का यह विचार द्वैध धारणाओं—'सन्तुष्टि के लिए समान क्षमता' तथा 'आय की ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता' पर आधारित है। अत: वास्तविक आय का धनी व्यक्तियों से निर्धन व्यक्तियों को कोई भी हस्तान्तरण निर्धन व्यक्तियों के कल्याण में वृद्धि करेगा और इसलिए सामाजिक कल्याण में वृद्धि होगी। इस प्रकार आर्थिक समानता (Economic equality) ही कल्याण को अधिकतम करेगी।

सामाजिक कल्याण में वृद्धि को जानने हेतु पीगू एक द्वैध मापदण्ड (Dual Criterion) अपनाता है।

पहला, राष्ट्रीय आय में वृद्धि या दूसरी वस्तुओं को कम किए बिना कुछ वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि अथवा साधनों की ऐसी क्रियाओं में स्थानान्तरण जिनमें उनका सामाजिक मूल्य अधिक हो।

दूसरा, अर्थव्यवस्था का कोई भी पुनर्संगठन जो राष्ट्रीय आय को कम किए बिना निर्धनों के हिस्से को बढ़ाता है, सामाजिक कल्याण में वृद्धि माना जाता है।

आलोचना—प्रो० रेडोमिस्लर (Redomysler) के शब्दों, ''प्रो० पीगू अपनी पुस्तक 'Economics of Welfare' में नुस्खे या नीति सुझाव नहीं देते, वे केवल इस बात की व्याख्या करते हैं कि कौन-से कारण आर्थिक कल्याण में वृद्धि करेंगे और अपने विवेचन को यहीं पर अधूरा छोड़ देते हैं।'' पीगू के कल्याण दशाओं की निम्नलिखित आलोचना की गई है—

1. पीगू कल्याण को अधिकतम करने पर बल देता है परन्तु वह 'अधिकतम' (Maximization) की धारणा को स्पष्ट नहीं करता। 'अधिकतम' वास्तव में 'इष्टतम' ही है, परन्तु 'अधिकतम' एक स्थिर बिन्द है जो कि सही नहीं है क्योंकि 'इष्टतम' स्थिर नहीं होता। 'इष्टतम' राष्ट्रीय आय के बढ़ने के साथ बढ़ता है और कम होने के साथ कम होता है।
2. प्रो० रोबिन्स के अनुसार 'सन्तुष्टि के लिए समान क्षमता' की मान्यता नीति-विषयक सिद्धान्त पर निर्भर करती है न कि वैज्ञानिक प्रदर्शन पर यह मूल्य का निर्णय है।
3. पीगू कल्याणकारी अर्थशास्त्र व नीतिशास्त्र के पारस्परिक सम्बन्ध को स्पष्ट नहीं करता।
4. पीगू कल्याण को उपयोगिता या सन्तुष्टि के द्वारा मापते हैं, परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार उपयोगिता का परिमाणात्मक माप सम्भव नहीं है।
5. पीगू की कल्याण की दशाएँ राष्ट्रीय आय से सम्बद्ध हैं। इस सम्बन्ध में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं—
   (i) राष्ट्रीय आय से कल्याण का सही आगणन करना कठिन है,
   (ii) राष्ट्रीय आय कल्याण का सही मापदण्ड नहीं है।

कल्याणकारी अर्थशास्त्र के क्षेत्र में प्रो० पीगू के महत्त्वपूर्ण योगदान की उपेक्षा नहीं की जा सकती। **प्रो० दत्ता** ने ठीक लिखा है—''पीगू ने वह प्राप्त किया है जिसे मार्शल अपने लिखित कार्यों से प्राप्त नहीं कर सके अर्थात् आदर्शवादी समस्याओं का वास्तविक समस्याओं के साथ समन्वय तथा एक दृढ़ सैद्धान्तिक विश्लेषण का निर्माण जो आर्थिक नीति के वैज्ञानिक सिद्धान्त के रूप में सहायक हो सके।''

प्र.5. नव कल्याणकारी अर्थशास्त्र की मान्यताओं पर प्रकाश डालते हुए क्षतिपूर्ति सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

Throwing light on the assumptions of new welfare economics, give a critical explanation of compensation principle.

उत्तर

नव कल्याणकारी अर्थशास्त्र की मान्यताएँ
(Assumptions of New Welfare Economics)

नव कल्याणकारी अर्थशास्त्र की मान्यताएँ निम्नलिखित हैं—

1. प्रत्येक व्यक्ति की सन्तुष्टि दूसरे व्यक्तियों की सन्तुष्टि से स्वतन्त्र होती है। इस कारण प्रत्येक व्यक्ति अपने कल्याण का सर्वोत्तम निर्णायक होता है।
2. प्रत्येक व्यक्ति की रुचियाँ स्थिर हैं।
3. उत्पादन एवं उपभोग में बाह्य प्रभावों का अभाव रहता है।
4. उत्पादन एवं विनिमय की समस्याओं को वितरण की समस्याओं से पृथक् किया जा सकता है।
5. यह मान लिया जाता है कि उपयोगिता की माप क्रम-संख्यात्मक होती है और अन्त:वैयक्तिक तुलनाएँ सम्भव हैं।

क्षतिपूर्ति सिद्धान्त
(Compensation Principle)

कल्याण के क्षतिपूर्ति सिद्धान्त की दो भागों में विवेचना की जाती है—

1. **काल्डोर-हिक्स की कसौटी**—प्रसिद्ध अर्थशास्त्री काल्डोर (Kaldor) की मान्यता है सामाजिक कल्याण में वृद्धि की कसौटी यह है कि यदि कुछ व्यक्ति पहले से अच्छी और दूसरे से बुरी स्थिति में आ जाते हैं तो परिवर्तन से लाभ प्राप्त करने वाले हानि प्राप्त करने वालों की अपेक्षा अधिक क्षतिपूर्ति कर सकते हैं और फिर भी स्वयं पहले से अच्छी स्थिति में हो सकते हैं। **काल्डोर** के अनुसार—"ऐसे सभी मामलों में जहाँ एक निश्चित नीति मौलिक उत्पादकता को बढ़ाती है और इस प्रकार सकल राष्ट्रीय आय में वृद्धि करती है।"""यह सम्भव है कि पहले की तुलना में कुछ लोग अधिक अच्छी स्थिति में आ जाएँ अथवा किसी अन्य व्यक्ति की स्थिति को बदतर किए बिना, कुछ लोगों की स्थिति अच्छी हो जाए ''' यह बताने के लिए काफी है, चाहे हानि पर रहने वाले लोगों की पूर्णतया क्षतिपूर्ति कर दी जाए, समुदाय के शेष सदस्य पहले की तुलना में अधिक अच्छी स्थिति में होंगे।"

   इसी सिद्धान्त को थोड़े भिन्न रूप में हिक्स ने व्यक्त किया है—"यदि किसी व्यक्ति A की स्थिति में इतना सुधार होता है कि वह दूसरे व्यक्ति B के नुकसान की क्षतिपूर्ति कर सकता है और फिर भी इसके पास कुछ बचा रहता है तो इस तरह का परिवर्तन निश्चित रूप से एक सुधार है।"

   इस प्रकार काल्डोर-हिक्स की कसौटी का अभिप्राय यह है कि एक आर्थिक परिवर्तन के कारण अपेक्षाकृत अधिक वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन होता है तो उनका इस ढंग से वितरण किया जा सकता है कि कुछ व्यक्तियों की स्थिति पहले से अच्छी हो जाए, लेकिन किसी भी व्यक्ति की स्थिति पहले से खराब न हो। चूँकि यह विषय राजनीतिक अथवा नैतिक है; अत: वास्तविक पुनर्वितरण जरूरी नहीं है। इतना ही काफी है कि परिवर्तन के कारण ऐसी स्थिति पैदा हो जाए कि धन का पुनर्वितरण किया जा सके।

   इस कसौटी को सैमअल्सन के उपयोगिता सम्भाव्यता वक्र की सहायता से समझाया जा सकता है। मान लीजिए, A और B दो व्यक्ति हैं जिनकी उपयोगिता सम्भाव्य रेखाएँ उनके उपयोगिता स्तर के भिन्न-भिन्न संयोगों को बताती हैं। प्रत्येक वक्र वस्तुओं के दिए हुए निश्चित समूह से सम्बन्धित रखता है और प्रत्येक वक्र पर भिन्न-भिन्न बिन्दु स्थिर सामाजिक धन के पुन: वितरण द्वारा प्राप्त किए जा सकते हैं।

   दिए चित्र 1 में उत्पादन स्तर B_1 से सम्बन्धित उपयोगिता सम्भावना रेखा B_1A_1 एवं उत्पादन स्तर B_2 से सम्बन्धित उपयोगिता सम्भावना रेखा B_2A_2 है। ये रेखाएँ एक-दूसरे को बिन्दु L पर काटती हैं। मान लीजिए हमारा प्रारम्भिक बिन्दु Q_2 है, जिससे C, D अथवा E किसी भी बिन्द का चलन पेरेटो सुधार है। लेकिन Q_2 से Q_1 पर गति पेरेटो मापदण्ड से नहीं आँकी जा सकती है इससे A की स्थिति में सुधार तथा B की स्थिति में गिरावट होती है। Q_2 से Q_1 पर गति को

काल्डोर-हिक्स की कसौटी के आधार पर आँका जा सकता है। काल्डोर-हिक्स की कसौटी के अनुसार बिन्दु Q_2 से Q_1 को गति कल्याण में वृद्धि करने वाली है क्योंकि बिन्दु Q_2 उस उपयोगिता सम्भाव्य रेखा B_1A_1 के नीचे है जो बिन्दु Q_1 से होकर गुजरती है। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है—धन के पुन:वितरण के परिणामस्वरूप बिन्दु Q_1 से उसी उपयोगिता सम्भाव्य रेखा B_1A_1 पर गति एक बिन्दु D तक ले जाती है और बिन्दु D निश्चित रूप से Q_2 से बेहतर है। इसलिए बिन्दु Q_1 जो कि बिन्दु D की स्थिति को पैदा कर सकता है, बिन्दु Q_2 से श्रेष्ठ है।

2. **साइटोवस्की की दोहरी कसौटी—प्रो० साइटोवस्की** के शब्दों में, प्रो० काल्डोर-हिक्स की कसौटी विरोधाभास को उत्पन्न करती है। उनके अनुसार काल्डोर-हिक्स की कसौटी के आधार पर यदि एक परिवर्तन वांछनीय है और क्षतिपूर्ति का वास्तव में भुगतान नहीं किया जाता है तो परिवर्तन के बाद आय का एक ऐसा पुन:वितरण हो सकता है कि वापस स्थिति को वापस चलन हो जाए और यह वापस चलन काल्डोर-हिक्स की कसौटी के आधार पर ही वांछनीय हो सकता है। काल्डोर-हिक्स की इस विपरीत स्थिति को 'साइटोवस्की का विरोधाभास' (Scitovosky's Paradox) कहते हैं। संलग्न चित्र-1 में ही Q_2 से Q_1 को चलन, काल्डोर-हिक्स की कसौटी के अनुसार एक सुधार है क्योंकि बिन्दु Q_2 उस उपयोगिता सम्भाव्य रेखा B_1A_1 से नीचे है जो कि बिन्दु Q_1 से गुजरती है। इस कसौटी के आधार पर बिन्दु Q_1 से Q_2 को वापस चलन भी एक सुधार है क्योंकि बिन्दु Q_1 उस उपयोगिता सम्भाव्य रेखा B_2A_2 से नीचे है जो बिन्दु Q_2 से गुजरती है। वास्तव में, यह विरोधाभास इसलिए उत्पन्न होता है क्योंकि दोनों उपयोगिता सम्भाव्य रेखाएँ एक-दूसरे को काटती हैं।

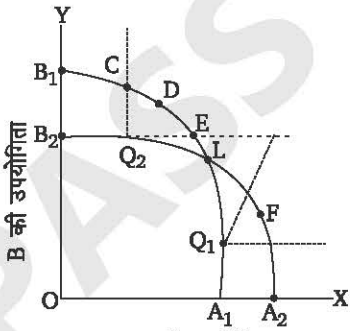

चित्र 1

इस प्रकार इस विरोधाभास को उत्पन्न न होने देने एवं किसी नीति की वांछनीयता का मूल्यांकन करने के लिए साइटोवस्की ने एक कड़ी कसौटी बताई है, जिसके दो भाग हैं—

(i) क्या प्रारम्भिक स्थिति से नई स्थिति को चलन एक सुधार है?

(ii) क्या पुरानी स्थिति से नई स्थिति को चलन एक सुधार है?

अत: साइटोवस्की के अनुसार यदि कोई परिवर्तन अथवा चलन इस दोहरी कसौटी पर सही उतरता है. तब और केवल तब ही वह परिवर्तन अथवा चलन एक सुधार होगा।

आलोचना (Criticism)

1. डॉ० लिटिल के शब्दों में, "काल्डोर-हिक्स का क्षतिपूर्ति सिद्धान्त कल्याण में वृद्धि की कसौटी नहीं अपितु परिभाषा मात्र है क्योंकि वह आय वितरण पर ध्यान नहीं देता।"
2. काल्डोर-हिक्स कसौटी उत्पादन तथा वितरण को अलग करने का प्रयत्न करती है। वास्तविक कल्याण केवल वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन पर ही नहीं बल्कि उनके वितरण पर भी निर्भर करता है, लेकिन क्षतिपूर्ति सिद्धान्त आय के वितरणात्मक पक्ष की उपेक्षा करता है।
3. काल्डोर-हिक्स कसौटी की कोई सार्वभौमिक सत्यता नहीं है।
4. काल्डोर-हिक्स-साइटोवस्की की कसौटी—(अ) इस छिपी हुई मान्यता पर आधारित है कि सभी व्यक्तियों के लिए द्रव्य की सीमान्त उपयोगिता समान होती है तथा (ब) यह कसौटी एक छिपे हुए और अमान्य नैतिक निर्णय पर आधारित है जिसके अनुसार वे परिवर्तन वांछनीय हैं जो कि लाभ प्राप्तकर्ताओं की क्षतिपूर्ति कर सकें, यह बात स्वयं में एक नैतिक निर्णय है।
5. प्रो० बॉमोल का विचार है कि जब दो या दो से अधिक वस्तुओं का प्रश्न हो तो इष्टतम उत्पादन सम्भव नहीं होता जब तक कि भिन्न-भिन्न वस्तुओं की माप करने के लिए मूल्यों का कोई सामान्य पैमाना न हो। ऐसा पैमाना आय वितरण पर निर्भर करता है जिसकी यह सिद्धान्त उपेक्षा करता है।
6. क्षतिपूर्ति सिद्धान्त बाह्य प्रभावों की उपेक्षा करता है एवं यह मान लेता है कि एक व्यक्ति का कल्याण उसकी अपनी ही आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है और दूसरे व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति से मुक्त रहता है, लेकिन यह मान्यता वास्तविक नहीं है।

TOUCH 'n PASS

7. डॉ० लिटिल के अनुसार काल्डोर-हिक्स-साइटोवस्की मापदण्ड कल्याण के सन्तोषजनक मापदण्ड नहीं हैं।
8. साइटोवस्की की दोहरी कसौटी उस समय अपर्याप्त होती है जब दो से अधिक स्थितियों में किसी एक का चुनाव तथा मूल्यांकन करना पड़ता है।
9. यह सिद्धान्त वास्तविक क्षतिपूर्ति के भुगतान पर विचार नहीं करता। यह तो केवल सम्भावित क्षतिपूर्ति को मान्यता देता है जिसके द्वारा कल्याण में वास्तविक वृद्धि की माप नहीं हो सकती।

इस प्रकार क्षतिपूर्ति सिद्धान्त एक ऐसी कल्याण कसौटी नहीं दे सका है जो सार्वभौमिक रूप से सत्य हो।

प्र.6. उच्चतम उपयोगिता सम्भावना सीमा से क्या अभिप्राय है? उच्चतम उपयोगिता सम्भावना वक्र एवं अधिकतम सामाजिक कल्याण की व्याख्या कीजिए।

What do you mean by grand utility possibility frontier? Explain grand utility possibility curve and maximum social welfare.

उत्तर

उत्पादन उपयोगिता सम्भावना सीमा
(Grand Utility Possibility Frontier)

पेरेटो के अनुकूलतम सिद्धान्त में वस्तुओं के उत्पादन, व्यक्तियों के वितरण तथा वस्तु उत्पादन की संरचना के विषय में कोई एक निश्चित अनुकूलतम हल नहीं होता जो कि अधिकतम सामाजिक कल्याण को व्यक्त करता हो। परन्तु सामाजिक कल्याण फलन की सहायता से हम अधिकतम सामाजिक कल्याण का हल प्राप्त कर सकते हैं। अत: साधनों के संयोग, उत्पादन के वितरण तथा कुल उत्पादन में विभिन्न वस्तुओं की मात्रा से सम्बन्धित एक विशेष समाधान प्राप्त कर सकते हैं। इसका अध्ययन दो व्यक्तियों, दो साधनों तथा दो वस्तुओं की सहायता से आधुनिक धारणा उच्चतम उपयोगिता सीमा के निर्माण से कर सकते हैं।

संलग्न चित्र-1 में उच्चतम उपयोगिता सम्भावना सीमा को व्यक्त किया गया है, जिसमें दो वस्तुओं के बीच रूपान्तरण की सीमान्त दर (*MRT*), प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (*MRS*) बराबर है।

उपर्युक्त चित्र में उत्पादन साधनों की मात्रा एवं तकनीक के दिए होने पर *PP'* वक्र दो वस्तुओं *X* एवं *Y* का उच्चतम उत्पादन सम्भावना वक्र है जिसे रूपान्तरण वक्र भी कहते हैं। *PP'* वक्र के बिन्दु *Q* पर दो वस्तुओं *X* एवं *Y* की विशिष्ट मात्राओं को दिखाया है। वस्तु *X* एवं *Y* की क्रमश: OX_1 एवं OY_1 मात्राएँ दी हुई होने पर उनका एक एजवर्थ बॉक्स बनाया जा सकता है जिसमें बिन्दु *O* व्यक्ति *A* का मूल बिन्दु होगा और बिन्दु *Q* व्यक्ति *B* का मूल बिन्दु होगा। इस एजवर्थ बॉक्स में दो व्यक्तियों के अनधिमान वक्रों के स्पर्श बिन्दुओं को मिलाने से एक प्रसंविदा वक्र (contract curve) *OQ* बनाया गया है जो वस्तु *X* एवं *Y* वस्तु की उपलब्ध मात्राओं के अनुकूलतम विनिमय को व्यक्त करता है जिस पर दो व्यक्तियों की वस्तु *X* एवं *Y* में प्रतिस्थापन दर (*MRS*) समान है। लेकिन वस्तु उत्पादन में रूपान्तरण की सीमान्त दर (*MRT*) समान नहीं होगी इसलिए प्रसंविदा वक्र *Q* के ऐसे बिन्दु का चयन किया जाना चाहिए जिस पर दो व्यक्तियों की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (*MRS*) बिन्दु *Q* पर रूपान्तरण की सीमान्त दर (*MRT*) के बराबर हो। यह तब बराबर होगी जब बिन्दु *Q* पर दो व्यक्तियों में वस्तुओं की दी हुई मात्रा का वितरण होगा।

Q के सापेक्ष उपयोगिता वक्र को चित्र-2 में U_1, U_2 के रूप में अंकित किया गया है। बिन्दु E_1 निकालने का तरीका इस प्रकार है। यदि वक्र A_1 की उपयोगिता 100 इकाइयाँ तथा B_3 वक्र की उपयोगिता 450 इकाइयाँ हों और क्षैतिज अक्ष *A* की उपयोगिता को और अनुलम्ब अक्ष *B* की उपयोगिता को व्यक्त करें तो बिन्दु E_1 निकल आता है। F_1 बिन्दु A_2, B_2 वक्रों पर, बिन्दु *F* के समरूप है और G_1 बिन्दु A_3, B_1 वक्रों पर बिन्दु *G* के समरूप है। इन बिन्दुओं को मिलाने से उपयोगिता सम्भावना वक्र U_1U_2 प्राप्त हो जाता है जैसा कि चित्र-2 में दिखाया गया है। यह वक्र *B* की किसी भी अन्य स्तर पर उपयोगिता के लिए *A* की अधिकतम उपयोगिता के बिन्दुओं का पथ है।

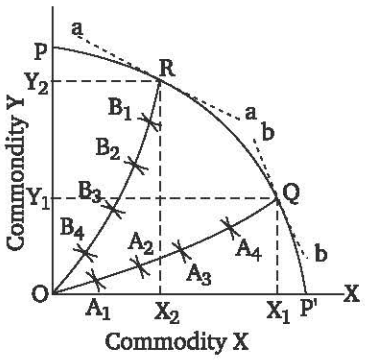

चित्र 1

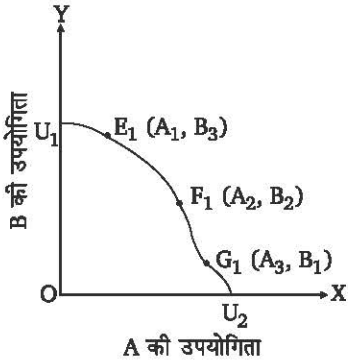

चित्र 2

कल्याण अधिकतमीकरण की शर्त के आधार पर विनिमय तथा उत्पादन का एक साथ सामान्य सन्तुलन होना चाहिए। इस शर्त का अर्थ यह है कि X एवं Y की स्थानापन्नता की सीमान्त दर अवश्य ही दोनों के बीच रूपान्तरण की सीमान्त दर के समान हो। पर उपयोगिता सम्भावना वक्र के अनेक बिन्दुओं में से केवल एक बिन्दु ही ऐसा है जो इस शर्त को पूरा करता है। यह बिन्दु चित्र-2 में U_1U_2 वक्र पर F_1 बिन्दु है। बिन्दु Q पर इस टेंजेंट की ढलान X एवं Y के बीच रूपान्तरण की सीमान्त दर को दर्शाती है। बक्साकार आरेख में बिन्दु Q पर टेंजेंट bb की ढलान A एवं B व्यक्तियों द्वारा X तथा Y की स्थानापन्नता की सीमान्त दर को दर्शाती है। क्योंकि दोनों टेंजेंट aa तथा bb एक दूसरी के समान्तर हैं, इसलिए चित्र-1 में बिन्दु Q और चित्र-3 में बिन्दु Q विनिमय एवं उत्पादन के एक साथ सामान्य सन्तुलन की शर्त को पूरा करते हैं अर्थात् ${}_A MRS_{XY} = {}_B MRS_{XY} = MRT_{XY}$.

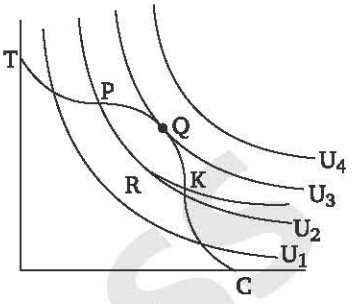

चित्र 3

उत्पादन सम्भावना वक्र TC पर कोई भी एवं बिन्दु P अथवा R लेकर हम एक एजवर्थ का बक्साकार आरेख और उपभोक्ता संविदा वक्र निर्मित कर सकते हैं। इससे एक एवं उपयोगिता सम्भावना वक्र खींचा जा सकता है और विनिमय एवं उत्पादन की पेरेटो इष्टतमता का एक तथा बिन्दु निकाला जा सकता है। मान लीजिए कि ऐसा उपयोगिता सम्भावना वक्र U_3U_4 है जिस पर समानुरूपी बिन्दु K है, जैसा कि चित्र-4 में दिखाया गया है। चित्र-1 का उपयोगिता सम्भावना वक्र U_1U_2, जिस पर पेरेटो इष्टतमता बिन्दु Q है, भी इस चित्र में खींचा गया है। Q तथा K बिन्दुओं को मिलाकर, हम उच्चतम उपयोगिता सम्भावना वक्र TC व्युत्पन्न करते हैं। उच्चतम उपयोगिता सम्भावना वक्र विनिमय एवं उत्पादन के पेरेटो इष्टतमता बिन्दुओं का रेखापथ है।

उच्चतम उपयोगिता सम्भावना वक्र के सीमित आनन्द बिन्दु तक
(From the Grand Utility Possibility Curve to the Point of Constrained Bliss)

उच्चतम उपयोगिता सम्भावना वक्र पर पेरेटो इष्टतमता बिन्दुओं में से कौन-सा बिन्दु अधिकतम सामाजिक कल्याण को व्यक्त करता है, का पता लगाने के लिए हमें सामाजिक कल्याण फलन खींचना होगा। चित्र-4 में तीन सामाजिक कल्याण फलनों के रूप में, अथवा समाज के सामाजिक उदासीनता वक्रों के रूप में, W, W_1 और W_2 दर्शाए गए हैं। प्रत्येक सामाजिक कल्याण फलन A की उपयोगिता B की उपयोगिता के उन विविध संयोगों को दर्शाता है जो सन्तुष्टि का एक समान स्तर प्रदान करते हैं। लेकिन सामाजिक कल्याण फलन पर गति से एक व्यक्ति की स्थिति बेहतर तथा दूसरे की स्थिति बदतर हो जाती है। इस प्रकार सामाजिक कल्याण फलन में उपयोगिता की अन्तर्वैयक्तिक तुलनाएँ पायी जाती हैं।

यदि ऐसा माना जाए कि W, W_1 तथा W_2 ऐसे सामाजिक कल्याण फलन हैं जो समाज के लिए वर्तमान हैं तो सामाजिक कल्याण उस स्थल पर अधिकतम होगा जहाँ उच्चतम उपयोगिता सम्भावना वक्र किसी सामाजिक कल्याण वक्र को स्पर्श करेगा। नीचे दिए चित्र-4 में अधिकतम सामाजिक कल्याण का बिन्दु F है जो वक्र W_1 एवं वक्र GU की टेंजेंट से निर्धारित हुआ है। इसे सीमित आनन्द का बिन्दु कहते हैं क्योंकि यदि GU वक्र पर बिन्दु F से परे गति होगी तो कुल सामाजिक कल्याण घट जाएगा। उच्चतम सम्भावना वक्र GU पर बिन्दु P या R ले लीजिए। ये बिन्दु कल्याण के अपेक्षाकृत नीचे स्तर को व्यक्त करते हैं क्योंकि वे अपेक्षाकृत नीचे सामाजिक कल्याण वक्र W पर स्थित हैं। जो बिन्दु सीमित आनन्द के बिन्दु F के नीचे स्थित हैं वे सभी गैर-पेरेटो इष्टतमता के बिन्दु हैं। और जो बिन्दु इस बिन्दु से ऊपर स्थित हैं जैसे कि W_2 वक्र पर बिन्दु C वे सभी बिन्दु दी हुई साधन सम्पन्नताओं तथा प्रौद्योगिकी के कारण समाज की पहुँच के बाहर हैं। इस प्रकार बिन्दु F अधिकतम सामाजिक कल्याण का वह बिन्दु है जहाँ उत्पादन, विनिमय और उत्पादन तथा विनिमय के सामान्य सन्तुलन की शर्तें एक साथ पूरी हो जाती हैं।

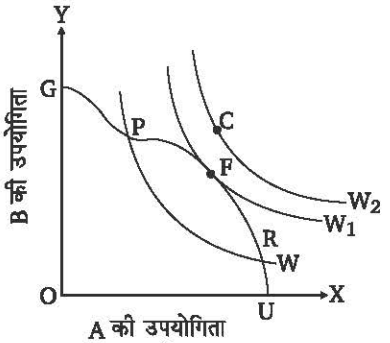

चित्र 4

❑

मॉडल पेपर

सूक्ष्म अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

B.A.-I (SEM-I) [पूर्णांक : 75

नोट—सभी खण्डों को निर्देशानुसार हल कीजिए।

खण्ड-अ : अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश**—सभी **पाँच** प्रश्नों के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **3 अंक** का है। अधिकतम 75 शब्दों में अतिलघु उत्तर अपेक्षित है।* **(3 × 5 = 15)**

1. माँग वक्र के सरकने एवं माँग वक्र पर चलन में अन्तर कीजिए।
2. अवसर लागत को परिभाषित कीजिए।
3. बाजार असफलता से आप क्या समझते हैं?
4. वस्तु विभेद की व्याख्या कीजिए।
5. उत्पादन के साधन की माँग किस प्रकार वस्तु की माँग से भिन्न होती है?

खण्ड-ब : लघु उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश**—निम्नलिखित तीन प्रश्नों में से किन्हीं **दो** प्रश्नों के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **7.5 अंक** का है। अधिकतम 200 शब्दों में लघु उत्तर अपेक्षित है।* **(7.5 × 2 = 15)**

6. पूर्ति के नियम से आप क्या समझते हैं? पूर्ति को प्रभावित करने वाले तत्त्वों की व्याख्या कीजिए।
7. पैमाने के वृद्धिमान प्रतिफल की ओर ले जाने वाले कारक कौन-से हैं? व्याख्या कीजिए।
8. समसंतुष्टि वक्र की व्याख्या कीजिए। समसंतुष्टि वक्र विश्लेषण में उपभोक्ता के सन्तुलन की क्या शर्तें हैं?

खण्ड-स : विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश**—निम्नलिखित पाँच प्रश्नों में से किन्हीं **तीन** प्रश्नों के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **15 अंक** का है। अधिकतम 500-800 शब्दों में विस्तृत उत्तर अपेक्षित है।* **(15 × 3 = 45)**

9. उपयोगिता की अवधारणा का वर्णन कीजिए। ह्रासमान सीमान्त उपयोगिता के नियम से आप क्या समझते हैं?
10. उत्पादकों के बीच प्रतिस्पर्धा के आधार पर विभिन्न प्रकार के बाजारों का वर्णन कीजिए। एक बाजार में एक उत्पादक के अधिकतम लाभ की क्या शर्तें हैं?
11. परेटो अनुकूलतम की शर्तों का वर्णन कीजिए।
12. लोच की अवधारणा का वर्णन कीजिए। इसका मापन कैसे होता है? माँग की कीमत लोच के प्रकारों का वर्णन कीजिए।
13. उत्पादन के सभी कारकों द्वारा अर्जित सामान्यीकृत अधिशेष के रूप में लगान पर एक टिप्पणी लिखिए।

❑

- यद्यपि इस पुस्तक को यथासम्भव शुद्ध एवं त्रुटिरहित प्रस्तुत करने का भरसक प्रयास किया गया है, तथापि इसमें कोई कमी अथवा त्रुटि अनिच्छाकृत ढंग से रह गई हो तो उससे कारित क्षति अथवा सन्ताप के लिए लेखक, प्रकाशक तथा मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा। सभी विवादित मामलों का न्यायक्षेत्र मेरठ न्यायालय के अधीन होगा।
- इस पुस्तक में समाहित सम्पूर्ण पाठ्य-सामग्री (रेखा व छायाचित्रों सहित) के सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन हैं। अतः कोई भी व्यक्ति इस पुस्तक का नाम, टाइटिल-डिजाइन तथा पाठ्य-सामग्री आदि को आंशिक या पूर्ण रूप से तोड़-मरोड़कर प्रकाशित करने का प्रयास न करें, अन्यथा कानूनी तौर पर हर्जे-खर्चे व हानि के जिम्मेदार होंगे।
- इस पुस्तक में रह गई तथ्यात्मक त्रुटियों तथा अन्य किसी भी कमी के लिए विद्वत् पाठकगण से भूल-सुधार/सुझाव एवं टिप्पणियाँ सादर आमन्त्रित हैं। प्राप्त सुझावों अथवा त्रुटियों का समायोजन आगामी संस्करण में कर दिया जाएगा। किसी भी प्रकार के भूल-सुधार/सुझाव आप info@vidyauniversitypress.com पर भी ई-मेल कर सकते हैं।